

KÂVYAMÂLÂ.



THE

GÂTHÂSAPTAS'ATI

BY

SÂTAVÂHANA.

With the Commentary of Gangâdharabhatta.

Second Edition

EDITED BY

PANDITA DURGÂPRASÂD

AND

WÂSUDEVA LAXMANA SHÂSTRÎ PAÑASHÎKAR.



PUBLISHED BY

TUKÂRÂM JÂVAJÎ,

PROPRIETOR "NIRNAYA-SÂGAR" PRESS, 23, KOLHÂT LANE,

BOMBAY.

1911.

Price 1½ Rupees.



(Registered according to Act XXV of 1867.)
All Rights Reserved

PRINTED BY B. R. GHANEKAR,
AT THE "NIRNAYA-SAGARA" PRESS, 23, KOLBHAT LANE, BOMBAY.

काव्यमाला. २१.

श्रीसातवाहनविरचिता

गाथासप्तशती ।

गङ्गाधरभट्टविरचितया टीकया समेता ।



जयपुरमहाराजाश्रितेन महामहोपाध्यायपण्डितदुर्गाप्रसादतनयेन
पण्डितकेदारनाथेन, मुम्बापुरवासिपणशीकरोपाह-
लक्ष्मणात्मजवासुदेवशर्मणा च संशोधिता ।

(द्वितीयावृत्तिः)

मुंचय्यां

तुकाराम जावजी

इत्येतैः स्त्रीये निर्णयसागरालययन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शाकः १८३३, सिसान्द १९११.

(अस्य ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणादिमिषये सर्वेषां निर्णयसागरमुद्रादयन्त्रालयाधिपते-
रैवाधिकारः ।)

मूल्यं सार्धं रूप्यकः ।

गाथानुक्रमणिका ।



अइ उज्जुए ण	७७७	अज्जाइ णीलकमुजे	११५०
अइकोवणा वि सासु	५१९३	अज्जाएँ णवण	(केसवस्तस) ११५०
अइ दिअर किं ण	६७०	अणुऊल विअ वोत्तु	६१२३
अइदी हराई बहुए	७७४	अणुणअपसा	(विण्णस्स) ३१७७
अउलीगो दोमुइ	३१५३	अणुदिअइ	(परकमस्स) ३१६६
अकअणुअ घणवण	६१९९	अणुमरणपत्थिआए	७१३३
अकअणुअ तुज्ज	५१४५	अणुवत्तण	(हालस्स) ३१६५
अकखडइ पिआ	(रइराअस्स) ११४४	अणुहुत्तो करकसो	७१५७
अगणिअजणाववाअ	५१८४	अणुगगामपउत्था	७१८७
अगणिअसेस	(गितलज्जिअस्स) ११५७	अणुणण कुसुम	(अणुराअस्स) २१३९
अगघाइ छिवइ	७१३९	अणुणमहिला	(अणिइअस्स) ११४८
अग्राण तणुआरअ	(मिहरस्स) ४१४८	अणु पि किं पि	६१९
अधासणुणविवाहे	७१५५	अणुणइ ण सीरइ	(अणवरथस्स) ४१४९
अच्छउ ता जणवाओ (वाइवस्स?)	३११	अणुणार्णे वि होन्ति	५१७०
अच्छउ दाव मणहरं	२१६८	अणुणावराइकुविओ	५१८८
अच्छीहिं ता थइस्स (नस्सीहस्स)	४११४	अणुणासआई	(मअरदअस्स) ११२३
अच्छेरे व णिहिं	(रामस्स) २१२५	अणुणेसु पहिअ	७१२९
अच्छोहिअवत्थ	(गुणअस्स) २१६०	अणुणो को वि	५१३०
अज्जअ णाह	(मिअज्जस्स) २१८४	अणुणोणकडवख	७१९९
अज्ज कइमो वि	(हालस्स) २१९९	अत्ता तइ रमणिज्ज	(कुमारिलस्स) ११८
अज्ज गओत्ति अज्ज	(पवरसेणस्स) ३१८	अत्यकरुण	७१७५
अज्ज मए गतव्व	(सुअरिअस्स) ३१४९	अइसणेण पुत्तअ	(बहुरसस्स) ३१३६
अज्ज मए तेण	(कैल्लाणस्स) ११२९	अइसणेण पेम्म	(सामिअस्स) ११८१
अज्ज पि ताव एक	६१२	अइसणेण महिला	(सामिअस्स) ११८२
अज्ज मोहणमुहिअ (जणुणन्दसारस्स)	४१६०	अइच्छिपेच्छिअ	(मअरदस्स) ३१२५
अज्ज णि हासिआ	(हालस्स) ३१६४	अन्तो हुत्त अज्जइ	(णाइअस्स) ४१७३
अज्ज वि बालो	(विधिपिग्गहस्स) २११२	अअअरबोरपत्ता	(अणुराअस्स) ३१४०
अज्ज व्वेअ पउत्थो अज्ज (अमीअस्स)	२१९०	अपहुप्पन्त	(उअहिस्स) ५१११
अज्ज व्वेअ पउत्थो उज्जा (असरिअस्स)	११५८	अण्णच्छ दपहाविर	(पवरसेणस्स) ३१२
अज्ज सहि केण	(केसवस्स) ४१८१		

अप्पत्तपत्तभ	(मउहस्स?) ३।४१	अहरमहुपाण	७।६१
अप्पत्तमणुदुक्खो	(.....) २।५७	अह्व गुणव्विअ	(चन्दहदिस्स) ३।३
अप्पाहेइ मरन्तो	७।३२	अह सम्भाविअमग्गो	(मोज्जअस्स) १।३२
अम्मन्तरसरत्ताओ	७।२३	अहसरसदन्त	(अहअस्स) ३।१००
अमअमअ	(हालस्स) १।१६	अह सा तहिं तहिं	४।१८
अमिअ पाउअक्खव	१।२	अह सो विलक्खहि	(हालस्स) ५।२०
अम्बवणे भमरउळ	६।४३	अहिआअमाणिओ	(चुल्लोगस्स) १।३८
अम्हे उज्जुअसीला	७।६४	अहिणवपाउससि	६।५९
अलिअपमुत्त	(चन्दसामिणो) १।२०	अहिलेन्ति सुर	(वसन्तस्स) ४।६६
अलिअपमुत्तव	७।४६	आअण्णाअट्ठि	६।९४
अलिहिज्जइ पड्डअले	७।९०	आअण्णेइ अउअणा	(मइज्जस्स) ४।६५
अवमाणिओ वि (अवन्तिवम्मस्स)	४।२०	आअम्बन्तकवोल	२।९२
अवरउज्जमु	(माउराअस्स) ४।७६	आअम्बलोअणाण	५।७३
अवरह्मागअजामा	७।८३	आअरपणामिओट्ठं	(वत्तविआरस्स) १।२२
अवराहेहिं वि	(जअराअस्स) ४।५३	आअस्स किं शु	१२।८७
अवलम्बइ मा	(हुद्धस्स) ४।८६	आउच्छणविच्छाअ	५।१००
अवलम्बिअमाण	(रेवाए) १।८७	आउच्छगि सिरेहिं	७।८०
अवहत्थिऊण	(देवस्स) २।५८	आक्खेवआई	३।४२
अविअट्ठेक्खणिज्जेण	(वज्जस्स) १।९३	आणत्त तेण तुमं	७।८५
अविअट्ठेक्खणिज्ज	(धिरिसत्तिअस्स) १।९९	आम असइ द्वा	(पालितस्स) ५।१७
अविरलपडन्तणव	५।३६	आमजरो मे मन्दो	(कालस्स) १।५१
अविहत्तसधिवग्गं	७।१३	आम बइला वणाली	६।७८
अविहवलक्खणवलअ	६।३९	आरम्भन्तस्स धुअ	(वज्जहस्स) १।४२
अव्वो अणुणअ	(सीहस्स) ४।६	आरुहइ जुण्णअ	६।३४
अव्वो हुक्कर	(सरलस्स) ३।७३	आलोअन्त दिसाओ	६।४६
असमत्तगुहअक्खे	६।३७	आलोअन्ति पुलिन्दा	(हैलिअस्स) २।१६
असमत्तमण्डणा	(कौलिराअस्स) १।२१	आवण्णाई कुलइ	५।६७
असरिसचित्ते	(मैण्डहिबस्स?) १।५९	आसण्णविआहदिणे	५।७९
अह अद्दा आअदो	(अहअस्स) ४।१	आसासेइ परिअणं	(अलकारस्स) ३।८३
अहअ लब्बा	२।२७	इअरो जणो ण	(वाइवरामस्स) ३।११
अहअ विओअतणुई	५।८६	इअ चिरिहाल	७।१०१

१. 'मकरन्दस्' घे. २. 'कलिराजस्' घे. ३. 'मुग्धदीपस्' घे. ४. 'शालिवाहनस्' घे. ५. 'हालिकस्' घे.

ईसं जनेन्ति	(माहवसेनस्स)	४१२७	एक धिअ रुअगुणं	६१९२
ईसामच्छररहिएहि		६१६	एक पहरुविण्णं	(पैहईए) ११८६
ईसाल्लओ पई	(अरिकेसरिस्स)	२१५९	एकल्लमभो दिग्गीअ	७१९८
उअअ लहिउण		५१९०	एकेकभवइवेठण	(अरिकेसरिणो) ३१२०
उअ ओळ्ळिअइ		७१४०	एकेण वि वड्ढी	७१७०
उअगअचवत्थि		७१४४	एको पडुअइ यणो	(हालस्स) ५१९
उअ णिचल	(बोदितस्स)	११४	एको वि कालसारो	(कालसारस्स) ११२५
उअ भोम्मराअ		११७५	एहिं वारेइ जणो	(सिरिसुन्दरस्स) ७१९६
उअरि हरदिद	(पवरसेनस्स)	११६४	एत्ताइधिअ मोहं	(मोजअस्स) ५१९०
उअ सममविविखत्तं		५१६१	एत्थ चउत्थं विरमइ	४१९०१
उअ सिन्धवपण्वअ		७१७९	एत्थ णिमच्चइ	७१६७
उअह तरुओडराओ		६१६२	एत्थ मएरमिअव्वं	(गुणमन्दिअस्स) ४१५८
उअह पडलन्तरो	(पालितस्स)	११६३	एदहमेत्तमि जए	(सिरिराअस्स) ४१३
उक्खिअप्पइ	(हालस्स)	२१२०	एदहमेत्ते गामे	६१५३
उअगरअरुसाइअ		५१८२	एसो मामि जुवाणो	(मन्दसुअअस्स) ३१९४
उअअरए ण तूसइ		५१७६	एह इमीअ णिअच्छइ	६१७९
उअसि पिआइ	(ईसाणस्स)	३१७५	एहइ सो वि पउत्थो	(सिरिधम्मअस्स) १११७
उअन्तमहारम्भे	(मत्तगइन्दस्स)	४१८२	एहि ति वाहरन्तम्मि	६१३
उअइ नीससन्तो	(अणत्तस्स)	११३३	एहियि तुमं ति	(अल्लस्स) ४१८५
उअच्छो पिअइ	(भाइअस्स)	२१६१	ओसरइ धुणइ साहं	६१३१
उअपणत्थे कजे	(माणइन्दस्स)	३११४	ओसहिअजणो	(मन्दरस्स) ४१४६
उअपहपहाविहजणो		६१३५	ओ हिअअ ओहि	५१३७
उअपाइअद्व्याणं	(पालितस्स)	३१४८	ओ हिअअ मडइ	(महाएवस्स) २१५
उअपेक्खागअ	(विस[म]सेणस्स)	४१३९	ओहिदिअहागमा	(पुण्णमोजअस्स) ३१६
उअफुल्लिआइ	(वच्छस्स)	२१९६	अण्डन्तेण अकण्डं	७१६३
उअमूलेन्ति व	(विजयगइणो)	२१४६	अण्डुअआ	(अअलीहरस्स) ४१५२
उअअवन्तेण ण होइ		६१३६	अत्थ मअं रइविम्वं	५१३५
उअअवो मा दिअउ		६११४	अं तुअयणु	(पालितस्स) ३१५६
उअवहइ णवतण		६१७७	अमल सुअन्त	७१४१
एएण धिअ	(कड्डिअस्स)	५१४	अमलाअरा ण	(मिअअस्स) २१९०
एअकअमपणिरक्खण		७११	अरमरि कीअ ण	६१२७
एअकअमसदेसा	(.....)	४१४२	अरिमरि अअल	(अअरन्दस्स) ११५५

धुरणाहो विव	५१४३	सैन्धुरिगणा	११७७
कलहन्तरे वि (हालस्स)	४१२१	खरपवणरअगल	६१८३
वाल किर खर (निपटस्स)	११४६	खरसिप्पिर (पसणस्स)	४१३०
कस्स करो बहु	६१७५	खाणेण अ पाणेण	७१६२
कस्स भरिसि ति (सुरहिवच्छस्स)	४१८९	खिण्णस्स उरे (अवन्तिवम्मस्स)	३१९९
कहँ णाम तीअ (सवरसत्तिस्स)?	३१६८	खिप्पइ हारो	५१२९
कहँ मे परिणइआले	६१६८	खेम कन्तो खेम	५१९९
कहँ सा णिव्व (पव्वअकुमारस्स)	३१७१	गअकलहकुम्म (कइराअस्स)	३१५८
कहँ सा सोहग्गयुण	५१५२	गअगण्डत्थल (गन्धराअस्स)	२१२१
कहँ सो ण (सङ्करस्स)	५११३	गअवहुवेहव्वअरो	७१३०
कह तपि तु इण (सेहणाअस्स)	७१९७	गज्ज मह चिअ	६१६६
कारिममाणन्दवड	५१५७	गन्ध अग्घाअन्तअ	६१६५
कि किं दे (गअसिंहस्स)	१११५	गन्धेण अप्पणो (विअहस्स)	३१८१
किं ण भणिओ सिं (बहुसहस्स)	४१७०	गम्मिहिंति तस्स	७१७
किं दाव कभा (रिवाए)	११९०	गरअल्लुहाउलि	४१८३
कि भणह म सहीओ	७११७	गहवद गओ (विअङ्कइन्दस्स)	३१९७
किं रुअसि (महिन्दस्स)	११९	गहवदणा (सच्चसामिणो)	२१७२
किं रुवति किं अ	६११६	गहवइसुओ (हालस्स)	४१५९
कीरन्ती विव (सरस्स)	३१७२	गामङ्गणणिअडि	६१५६
कीरमुहसच्छ (सूरणस्स)	४१८	गामणिधरम्मि अत्ता	५१६९
कुसुममभा वि (हालस्स)	४१२६	गामणिणो सव्वासु	५१४९
के उव्वरिआ के	५१७४	गामतरणीओ	६१४५
केण मणे भग (मिअहस्स)	२१११	गामवडस्स (खण्डस्स)	३१९५
केत्तिअमेत्तं होहिइ	६१८१	गिअन्ते मज्जल	७१४२
केलीअ वि रुसे (पावच्छीलस्स)	२१९५	गिओ देवगि (वैद्वावहीए?)	११७०
केसररअ	४१८७	गिरसोत्तो ति	६१५१
कैअवरहिअ (रामस्स)	२१२४	गेअच्छेण (अहअस्स)	४१३४
कोरव जअम्मि (विलासस्स)	४१६४	गेह पलोअह (हरितउस्स)	२११००
कोसम्बक्सिल (गजस्स)	१११९	गेह व वित्तइहिअ	७१९
खणभहुणे येम्मेण	५१२३	गोतवखलण सोऊण	५१९६
खणमेत्तं पि ण (हालस्स)	२१८३	गोलाअडिअ (अविअकणस्स)	२१७

१. 'लम्पस्स' वे. २. 'विनयायितस्स' वे. ३. 'अनुरागस्स' वे. ४. 'अलि-
कस्स' वे.

गोलाणइए	(णरवाइणस्स) २।७१	ज ज पुलएमि दिस्	६।३०
गोलाविसमो	२।९३	ज जं सो णिज्झा (वैसन्तअस्स)	१।७३
घरिणिघणत्थण	(हुविह्वअस्स) ३।६१	ज तणुआअइ सा	७।११
घरिणीए	(हालस्स) १।१३	जन्तिअ गुल	६।५४
घेत्तूण चुण्ण	(कान्तफरस्स) ४।१२	ज तुज्ज सइ (अणुलच्छीए)	३।२८
चधुपुडाइअवि	७।६६	जम्मन्तरे वि चलणं	५।४१
चत्तरघरिणी	(भेदिलस्स) १।३६	जस्स जह विअ (अद्धराअस्स)	३।३४
चन्दमुहि	(गगगाअस्स) ३।५२	जह चिन्तेइ परि	७।२८
चन्दसरिस	(वाहवराअस्स) ३।१३	जह जह उण्वइइ (... ..)	३।९२
चलणोआसणि	(भमरस्स) २।८	जह जह जरा (पोटिस्स)	३।९३
चावो सहावसरल	५।२४	जह जह वाएइ (ससिण्णहाए)	४।४
चिक्खिण्डसुत्त	(चुत्तोहस्स) ४।२४	जाएज वणुदेशे (असमसाइस्स)	३।३०
चित्ताणिअइ	(वैण्डहिक्खम ^१) १।६०	जाओ सो वि (चन्दस्स)	४।५१
चिरडिं पि अ	(पावच्छीलस्स) २।९१	जाणइ जाणावेउं (गौमउज्जस्स)	१।८८
चोराणें कामुआणें	७।९८	जाणि घअणाणि	७।४९
चोरा सभअसतणइ	६।७६	जारमसणसमुच्चव (हालस्स)	५।८
चोरिअरअसद्धाउइ (यम्हअन्तस्स)	५।१५	जाव ण बोसवि	५।४४
छन्नइ पडुस्स	(सुन्दरस्स) ३।४३	जिविअ असागअ (हालस्स)	३।४७
छिज्जन्तेहिं	(माणिकराअस्स) ४।४७	जिविअसेसाइ (अवज्ञाज्जस्स)	२।४९
जइ बोत्तिओ	७।७२	जीहाइ झुण्णि	६।४१
जइ चिक्खल	(वैदुराअस्स ^२) १।६७	जुज्जचवेडामोडि	७।८४
जइ जूरइ जूरउ	७।८	जे.जे गुणिणो	७।७१
जइ ण छिवसि	५।८१	जेण विणा (रोहाएँ)	२।६३
जइ भमसि भमसु	५।४७	जे णीलभमर	५।२२
जइ लोकणिन्दिअ	५।८०	जेत्तिअमेत्त (सुद्धसीलस्स)	१।७१
जइ सो ण पल्लहो (सुसीलस्स)	४।४३	जेत्तिअमेत्ता (पालितस्स)	४।९३
जइ होसि ण (सुद्धराअस्स)	१।६५	जे सँमुहागअ (वाहवराअस्स)	३।१०
जं जं आलिहइ	७।५६	जो कइ वि (वैलाइचस्स)	२।४४
जं जं करेसि ज जं (कलणसीइस्स)	४।७८	जो जस्स विहव (वाहवराअस्स)	३।१२
ज ज से ण मुहाअइ	७।१५	जो सीए अहर (दामोअरस्स)	२।६
ज ज पिहुल (कुलउत्तस्स)	४।९	जो वि ण आणइ	५।३८

१. 'मल्लोअव' वे. २. 'सुग्घदीपस्स' वे. ३. 'धीरस्स' वे. ४. 'वसलक्ख' वे. ५. 'ग्रामकूटस्स' वे. ६. 'वलइपितस्स' वे.

ओ सीसमिम	४१७२	गिअववखारोवि	७१४२
सञ्ज्ञावाउत्तिणिअघर (जअसेणस्स)	२१७०	गिक्कण्ड दुरारोह	५१६८
सञ्ज्ञावाउत्तिणिए (राअहत्थिणो)	४११५	गिक्कमाहिं (पुण्डरीअस्स)	२१६९
ठाणम्भट्ठा परि	७१५२	गिक्किव जाआ (हिरिआल्स्स)	११३०
उज्जसि उज्जसु (हालस्स)	५११	गिइ लहन्ति कहिअ (देवएवस्स)	५११८
ण अ दिट्ठि नेइ	७१४५	गिहामज्जो (हालस्स)	४१७४
णअणम्भन्तर (हालस्स)	४१७१	गिहालस (हालस्स)	२१४८
णइऊरस (पैवणराअस्स)	११४५	गिप्पच्छिमाइ (तिरिवलस्स)	२१४
ण कुणन्तो ज्विअ (अद्वराअस्स)	११२६	गिप्पण्णसस्सरि	७१८९
णअखक्खुडिअ (महाराअस्स)	४१३१	गिब्बुत्तरआ (सहुणकलसस्स)	२१५५
ण गुणेण (समरिणसस्स)	४११०	गिहुअणसिप्प	६१८९
णअणसलाहणणि (गुवरस्स ?)	२११४	णीआइ अअ (धणजअस्स)	४१२८
ण छिवइ हत्थेण	६१३२	णीलपडपाठअणी	६१२०
णन्दन्तु मुरअमुह (हालस्स)	२१५६	णीसासुक्कम्पिअ (रोएवस्स)	४१६१
ण मुअन्ति (हालस्स)	२१४७	णूण हिअअ (महाएवस्स)	४१३७
णलणीमु भमसि	७११९	णूमेन्ति जे पटुत्त (मौथवीए)	११९१
णवक्कणिण	७१९२	णेउरकोडि (अणजस्स)	२१८८
णवपण्व विसण्णा	६१८५	णोहलिअमप्पणो (मअरन्दसेनस्स)	११६
णवल अपहरं (पेणामस्स)	११२८	तइआ कअग्घ (माअजस्स)	११९२
णववहुपेम्म (कणउत्तस्स)	२१२२	तइ बोलन्ते (हालस्स)	३१२३
ण विणा सन्मावेण (भोजअस्स)	३१८६	तइ सुइअ (मणोरहस्स)	४१३८
ण वि तह अइ गरुण	५१८३	तइविणिहिअग्ग (हालस्स)	४१९१
ण वि तह अणालवन्ती	६१६४	तइसठिअ (माणस्स)	११२
ण वि तह छेअ (अणुलच्छीए)	३१७४	तणुएण वि (भाउल्स्स)	४१६२
ण वि तह पडम (भाणुससिणो)	३१९	तं णमह जस्स (गिर्कलज्जस्स)	२१५१
णै वि तह विएस	११७६	तत्तो अिअ होन्ति	७१४८
णास व सा कवोडे (सौमिअस्स)	११९६	तं मित्तं काअव्वं (पालितस्स)	३११७
णाह दइं ण (अमुलद्धीए) ?	२१७८	तम्मिरपसरिअहु	६१८८
णिअअणुमाण (केल्यस्स)	४१४५	तस्स अ सोहग्ग (मअरद्धअस्स)	३१३१
णिअधणिअ	६१८२	तस्स कइाक्कण्डइए	७१५९

१. 'प्रवरराजस' चे. २. 'पुरस्स (१)' चे. ३. 'प्राणामस्स' चे. ४. 'भीमवि-
क्रमस्स' चे. ५. 'स्तिरसाहसस्स' चे. ६. 'शालिक्कस्स' चे. ७. 'गजरेवस्स' चे.
८. 'कलहस्स' चे.

तद् तस्स माण	(हालस्स) ५१३१	दइअकरग्गइल्लिओ	६१४४
तद् तेणवि सा	७१२५	दक्खिण्णेण वि (आइवराइस्स)	११८५
तद् परिमल्लिआ	७१३७	दहूण उण्णमन्ते	६१३८
तद् माणो	(साळिअस्स) २१२९	दहूण तरुणसुरअ	६१४७
तद् सोण्हाइ	(सुन्दअस्स) ३१५४	दहूण रुन्दतुण्ड	(विग्गहस्स) ५१२
ता किं करेउ	(वम्हआरिणो) ३१२१	दहूण हरिअदीह	७१९३
ता मज्झिमो विअ	(हालस्स) ३१२४	दहरोस	(अवन्तिवम्मस्स) ४११९
ता दण्णं जा	(विरसत्तिस्स) २१४१	दरफुडिअ	(वम्हराअस्स) ११६२
तात्तरममा	(अवट्ठस्स) ११३७	दरवेविरोहजुअलासु	७११४
तावचिअ रइ	(कुलोइस्स) ११५	दिअरस्स	(हालस्स) ११३५
तावमवणैइ	(हरिउद्धस्स) ३१८८	दिअहं खुडक्किआ	(विच्छमस्स) ३१२६
ताविज्जन्ति	(पवाराअस्स) ११७	दिअहे दिअहे	७१९१
तामुहअविलम्भ	७१२	दिहा चआ	(कौन्तकधरस्स) ११९७
तीअ मुहाहिं	(हालस्स) २१७९	दिढमण्णु	(मोत्ताइलस्स) ११७४
तुक्काणै विसेस	५१२७	दिढमूलयन्ध	(अणुलच्छीए) ३१७६
तुहो धिअ	(माउराअस्स) ३१८४	दीसइ ण पूअ	६१४२
तुज्झक्कराअ	२१८९	दीसन्तो णअणमुहो (राअरसिअस्स)	५१२१
तुज्झ यखइ	(मुदस्स) ११४०	दीसन्तो दिदिमुहो	७१११
तुट्ठपाण्णा	(अलकस्स) ३१८९	दीसखि पिआणि	५१८९
तुद दंसणेण जणिओ	७११०	दीहुक्कपउर	२१८५
तुद दंसणे सअहा	६१५	दुक्खं देन्तो (सिरिसत्तिअस्स)	१११००
तुद मुहसारिच्छ	(राहहम्धिणो) ३१७	दुक्खेहिं लम्मइ	४१५
तुद विरहुत्तागरओ	५१८७	दुग्गअकुट्टम्भ	(सिरिधम्मअस्स) १११८
तुद विरहे	(अणत्तस्स) ११२४	दुग्गअपरमि	५१७२
ते अ जुआणा ता	६११७	दुग्गिअखेवअ	(साहिअस्स) २११४
तेण ण मरामि	४१७५	दुम्मेन्ति देन्ति	(वसन्तवम्मस्स) ४१२५
ते विरत्ता सणु	(इन्दस्स) २११३	दुरिसत्तिअवरअ	७१२७
ते बोळिआ	(निदधमस्स) ३१३२	दइ तुमं विअ	(आइवसत्तिणो) २१८१
धणज्झणणिअ	(सच्चसेणस्स) ३१३३	दूरन्तरिए वि पिए	७१५८
धोअ पि ण	(दुरभिवसस्स) ११४९	देव्वम्मि पराहुत्ते	(अन्धस्स) ३१४५
धोरेमुएहिं दण्णं	६१२८	देव्वाअत्तम्मि	(भीवएवस्स) ३१७९

१. 'त्रिलोक्य' धे. २. 'मुदस्स' धे. ३. 'दूरभिवत्सलस्स' धे. ४. 'स्थिरका-
दयस्स' धे. ५. 'पउत्तिन्यस्स' धे.

दे सुभणु पत्तिअ	५१६६	परिमलणसुहा	५१२८
दोअहुलअकवाल	७१२०	परिरद्धकणअ	४१९८
धण्णा सा मदि (मलअसेहरस्स)	४१९७	परिहूएण	(विकमराअस्स) २१३४
धण्णा बहिरा	७१९५	पत्तिअ पिए	(कुविन्दस्स) ४१८४
धण्णा वसन्ति	७१३५	पसुवदणो	(हालस्स) १११
धरिओ धरिओ (माणस्स)	२११	पहरवणमग्ग	(अहराअस्स) ११३१
धवलो जिअइ	७१३८	पहिअवहु विवरन्तर	६१४०
धवलो सि जइ	७१६५	पहिउद्धरण	(अहराअस्स) २१६६
धाराधुव्वन्तमुहा	६१६३	पाअडिअ सोहरगं	५१६०
धावइ पुरओ पासेसु	५१५६	पाअडिअणेह	(मणिराअस्स) २१९९
धावइ विअलिअ (माऊराअस्स)	३१९१	पाअपडणार्णे मुदे	५१६५
धीरावलम्बिरीअ (वाहवस्स)	४१६७	पाअपडिअं	(हालस्स) ४१९०
धुअइ व्व (विसमराअस्स)	३१८०	पाअपडिअस्स	(दुग्गसाभिणो) ११११
धूलिमहलो वि	६१२६	पाअपडिओ ण	५१३२
पइपुरओ विअ (मल्लसेणस्स)	३१३७	पाणउडीअ वि	(हालस्स) ३१२७
पउरजुवणो (हालस्स)	२१९७	पाणिग्गइणे	(अणुराअस्स) ११६९
पइमइलेण छीरेक्क	६१६७	पासासट्ठी	(भोजअस्स) ३१५
पच्चग्गप्फुल्ल	६१९०	पिअदसण	(वसन्तसेणस्स) ४१२३
पच्चसमजहावलि	७१४	पिअसभरण	(वम्हआरिणो) ३१२३
पच्चसागअ रजित	७१५३	पिअविरहो	(वैसुआरिणो) ११२४
पअरसारि अत्ता ण	६१५२	पुच्छिअन्ती ण	७१४७
पडिवक्ख (उद्धवस्स)	३१६०	पिअइ कण्णअ	७१७६
पढम वामणविहिणा	५१२५	पुट्ठि पुससु	(पण्डिणो) ४११३
पढमणिलीणमहुर	५१९५	पुणरुत्तकरप्फालण	६१४८
पणअकुविआर्णे (कुमारस्स)	११२७	पिसुणेन्ति कामिणीणं	६१५८
पत्तणिअम्भप्फसा	६१५५	पुसइ खण धुवइ	५१३३
पत्तिअ ण पत्तिअन्ति (पवरसेणस्स)	३११६	पुसउ मुहं ता	७१८१
पत्तो छणो ण (कालइवस्स)	११६८	पुसिआ अण्णा	(कलसगन्धस्स) ४१२
पप्फुद्धघणकलम्भा	७१३६	पेच्छइ अलद्ध	(विअट्ठइन्दस्स) ३१९६
परिओसवि (जीअएवस्स)	४१४१	पेच्छन्ति अपिमिस	(सुरहिक्कस्स) ४१८८
परिओससुन्दराइं	७१६८	पेम्मस्स विरो	(वैम्मइस्स) ११५३

१. 'कालाधिपस्य' चे. २. 'सिरिराअस्स' चे. ३. 'ब्रह्मचारिण.' चे. ४. 'म-
म्भपस्य' चे.

पोटपडिहँ	(कलहलीलस)	१८३	मगं चिअ	७१६९	
पोट भरन्ति	(अलकस)	३८५	मज्झकपत्थिअस्स (मङ्गलकलसस)	४१९९	
फग्गुच्छण	(सूरस)	४१६९	मज्झे पअणुअ	७१८२	
फलसपत्तीअ	(अवलअस)	३८२	मज्झो पिओ	६१९७	
फलहीवाहण	(कहिलस)	२१६५	मण्णेआअण्णन्ता	७१४३	
फालेइ अच्छमन्न	(कालसीहस)	२१९	मण्णे आसाओ चिअ	६१९३	
फुट्ठेण वि	(राअवग्गस)	३१४	मन्द पि ण आणइ	६१९००	
फुरिए वामच्छि	(सत्तिहम्विस्स)	२१३७	मरगअसूरे	(पालितस)	४१९४
बलिणो याआवन्धे	(भोजअस)	५१६	मसिण चहम्मन्ती	५१६३	
बहलतमा	(अहअस)	४१३५	महमइइ मलअवाओ	५१९७	
बहुआइ गइ	(अद्वराअस)	३१९८	महिलाण चिअ	६१८६	
बहुपुप्फमरोणा	(माणस)	२१३	महिलासहस	(हालस)	२१८२
बहुवज्जहस	(अल[भ]स)	११७२	महिसक्खन्धवि	६१६०	
बहुविहविनासरसिए		५१७७	महुमच्छिआइ	५१३४	
बहुसो वि	(सुरद्विबसेस)	२१९८	महुमासमारुआ	(सालिअस)	२१२८
बालअ तुमाइ दिण्ण	(तुगअस)	५१९९	मा पुण पडिवक्ख	(माअअस)	२१५२
बालअ तुमाहि	(हालस)	३१९५	मा जूर दिआ	(अअस)	४१५४
बालअ दे वच्च लहुं		६१८७	माणदुमपहस	४१४४	
भग्गपिअसगम		५१९९	माणम्मत्ताइ मए	६१२२	
भजन्तस्स वि	(हालस)	२१६७	माणोसइ व	(वाहवस)	३१७०
भण को ण	(महोद्विअस)	४१९००	मामि सरसक्खराणं	५१५०	
भण्णन्तीअ	(अत्यस?)	४१७९	मामि हिअअ	(वीलएवस?)	३१४६
भमइ पलित्तइ जूरइ		५१५४	मारेसि क ण मुद्धे	६१४	
भम धम्मिअ	(.....)	२१७५	मालइकुमुमाई	५१२६	
भरणमिअणील		७१६०	मालारीए वेइहल	६१९८	
भरिउधरन्त	(विसेसरसीहस)	४१७७	मालारी ललिउ	६१९६	
भरिमो से गहिआहर		११७८	मा वच्च पुक्क	(णन्दणस)	४१५५
भरिमो से सअण	(उच्छेउस)	४१६८	मा वच्च वीसम्म	७१८६	
भिच्छाअरो	(ससिराअस)	२१६२	मामपसूअ	(कइराअस)	३१५९
मुज्जमु ज साहीण	(तिलोअणरस)	४१९६	मुद्धे अपत्तिअन्ती	७१७८	
भोइणि दिण्ण पहेण		७१३	मुहपुण्डरीअछाआइ	७१२४	
मअणगिणो ध्व		६१७२	मुहपेच्छओ पइ	५१९८	

मुहमादण	(वेदिसस्य) ११८९	वम्पडणा	(कणस्य) ११५४
मुहविग्नवि	(वम्पएवस्य) ४१३३	वगदवमति	(हालस्य) २११७
मेहमदिसस्य	६१८४	वणअघअलिप्पमुट्ठि	६१९९
रद्वेडिदिअणि	५१५५	वणअमरदिअस्य	७११२
रद्विरमअविआओ	५१५९	वणन्तीट्ठि सुद	(सहरसतिस्य) ४१५०
रफसेइ पुत्तअं	७१२१	वणवसिए विअरयवि	५१७८
रण्णाउ तण	(अवणअरस्य) ३१८७	वन्दीअ गिहअ	(हालस्य) २११८
रत्तापडण	(हालस्य) २१४०	वसइ अट्ठि	(कितिराअरस्य) २१३५
रन्धणअम्मणि	(भोमसामिणो) १११४	वसणम्मि	(प्रणालस्य) ४१८०
रमिऊण पअ	(मकरन्दस्य) ११९८	वाआइ किं भणिअउ	६१७१
रसिअजण	(हालस्य) १११०१	वाउअअसिअअ	६१७
रसिअजण	(हालस्य) २११०१	वाउलिआपरि	७१२६
रसिअजण	(हालस्य) ३११०१	वाउव्वेळ्ळिअसाउलि	७१५
रसिअजण	५११०१	वाएरिएण	(पालितस्य) २१७६
रसिअजण	६११०१	वावारविसेवाअ	७११६
रसिअ विअउ	(वद्मभारिणो) ५१५	वासारतो उणअ	५१३४
राअविहदं	(वहुलस्य) ४१९६	वाहरउ मं	(कुंमुमराअस्य) २१३१
रुन्दारविन्दमन्दिर	६१७४	वाहिता पडिवअण	(रोलएवस्य) ५११६
रुअ अच्छीसु	(वद्मगतिणो) २१३२	वाहिअव वेअ	(वामएवस्य) ४१६३
रुअं सिउ विअ	६१७३	वादीहभरिअ	६११८
रेहइ गालन्तकेस	५१४६	विअिणइ माह	(हालस्य) ३१३८
रेहन्ति कुमुअदल	६१६१	विआविअइ	(अणुराअस्य) ५१७
रोवन्ति व्व अरण्णे	५१९४	विअसादहणालाव	७१३१
रुहालआणें	(अणुराअस्य) ४१११	विण्णाणगुण	(सवरसतिस्य) ३१६७
रुआ चत्ता सील	६१२४	विरहकरवत्त	(साहिअस्य) २१५३
रुहुअन्ति	(मोविन्दसामिस्य) ३१५५	विरहाणलो	(अमिअस्य) ११४३
रुम्बीओ अज्जण	(वत्तस्य) ४१२२	विरहेण म-दरेण	५१७५
रोओ जूरइ जूरउ	६१२९	विरहे विस व	(हालस्य) ३१३५
वअणे वअणम्मि	(असोअस्य) ४१५६	विवरीअसुरअलेहल	७१५४
वइविवर	(उरुवस्य) ३१५७	विसमदिअपिके	६१९५
वईं ओ पुलइ	(मेहणाअस्य) २१६४	वीसत्यहसिअपरि	७१६
वइविअपेच्छि	(वप्पसामिणो) २१७४	वेविरसिण	(अण्वस्य) ३१४४

नेसोसि जीअ	६११०	सहि ईरिसि	(भैलअस्स) १११०
बोडसुणओ विअण्णो	६१४९	सहि दुम्मेन्ति	(असुलद्धीए?) २१७७
बोलीणालक्खिअ (पवरराअस्स)	४१४०	सहि साहसु सन्ना	५१५३
सवाट्ठसुहरस	५१६४	सा आम सुहअ	६१११
सैअणे चिन्ता	२१३३	सा तुइ सहअथ	२१९४
सकअगहैरह	६१५०	सा तुज्ज वट्ठहा	(उज्जअस्स) २१२६
सकैत्रिओ व (हालस्स)	७१९४	सा तुह कएण	(दुव्विअद्वस्स) ३१६२
सच कलहे कलहे	६१२१	सामाइ गरुअ	५१३९
सच जाणइ (दुग्गसाभिणो)	१११२	सामाइ सामलि	(..) २१८०
सच भणामि बालअ (देवराअस्स)	३१३९	सालोए विअ	(हालस्स) २१३०
सच भणामि भरणे (विअद्वस्स)	३१३९	साहीणपिअअमो	६११५
सच साहसु	७१८८	साहीणे वि पिअ	(रैविराअस्स) ११३९
सजोवणोसह (विद्वलस्स)	४१३६	सिकरिअमणिअ	(नन्दिउद्धस्स) ४१९२
सज्ञागहिअजलज्जलि	७११००	सिहिपिच्छल्लुटिअ	(वैसैरस्स) ११५२
सज्ञाराओत्यइओ	६१६९	सिहिपेहुणावअसा	(पोटिसस्स) २१७३
सज्ञासमए जलपू	५१४८	सुअणपउरम्मि	(देवराअस्स) २१३८
सणिअ सणिअ	५१५८	सुअणु वअण	(णीलस्स) ३१६९
सत्त सताइ (हालस्स)	११३	सुअणो ज देस	(हैरकुन्तस्स) ११९४
सन्तमसन्त दुक्ख	६११२	सुअणो ण कुप्पइ	(अज्जुणस्स) ३१५०
संभावणेह (हौलस्स)	११४१	सुअखन्तवहल्लकहम	५११४
सव्माव सुच्छन्ती (सअस्स)	४१५७	सुन्दरजुआणजण	५१९२
समविसमणिवि	७१७३	सुप्पउ तइओ वि	(सिरिसत्तिस्स) ५११२
समसोकसदुक्ख (वसुरहस्स?)	२१४२	सुप्प उट्ठ चणआ	६१५७
सरए महइदाण (विग्गहराअस्स)	२१८६	सुइउच्छअ जण	(सगवम्मस्स) ११५०
सरए सरम्मि	७१२२	सुहपुच्छिआइ	(तिलोअणस्स) ४११७
सरसा वि सूसइ	६१३३	सुइच्चइ हेम	(अण्हअस्स) ४१२९
संवत्यदिसा (कमलस्स)	२१५५	सुइवेहे सुखल	६११
सव्वसम्मि वि दद्धे (भेच्छलस्स)	३१२९	सूरच्छलेण	(विग्गहराअस्स) ४१३२
सव्वाअरेण मग्गइ	७१५०	सेअच्छलेण	(हालस्स) ३१७८
सहइ सहइ ति (कुसुमाउहस्स)	११५६	सेअजिअसव्वही	५१४०
सहिआहि (बलाइवस्स)	२१४५	सो अत्यो जो	(हालस्स) ३१५१

१. 'ब्रह्मगते' चे. २. 'नापाया' चे. ३. 'अनीकस्य' चे. ४. 'उजयस्य' चे.
 ५. 'कविराजस्य' चे. ६. 'वेशारस्य' चे. ७. 'हारउत्थस्य' चे.

सो को वि गुणाद्	६१९१	हासाविओ जणो	(अणुराअस्स) २१२३
सो नाम संभरिअइ (वैप्यइराअस्स)	११९५	हिअवं हिअए	५१८५
सो तुज्ज कए (ईसाणस्स)	११८४	हिअअ चेअ	(विकिरस्स) ३१९०
हंसेहिँ व तुइ	५१७१	हिअअट्ठिअस्स	(सच्चसेणस्स) ३१९८
हत्थप्फंसेण जरगवी	५१६२	हिअअण्णएहिँ	(मैण्डहिअस्स) ११६१
हत्थाहत्थिअ अद्दमह	६१८०	हिअअम्मि वसत्ति	६१८
हत्थेसु अ	(पालितस्स) ४१७	हिअआहिन्तो पसरन्ति	४१५१
हरिहिइ पिअ	(वट्ठरइस्स) २१४३	हेमन्तिआसु	(कैन्तेसरस्स) ११६६
हल्लफल्लाण	(कैटिलस्स) ११७९	हेलाकरगअट्ठिअ	(पोटिअस्स) ५१३
हसिअ अदिट्ठदन्तं	६१२५	होन्तपहिअस्स	(सिहस्स) ११४७
हसिअ सहत्थ	(अणुलच्छीए) ३१६३	होन्ती वि निप्फल	(कुन्दपुत्तस्स) २१३६
हसिएहिँ उवाल्मभा	६११३	हाणहलिहा	(मअरन्दस्स) ११८०

सातवाहनः ।

दीपकर्णिसूनुः सातवाहनो नाम कश्चन विद्वान्महोपतिः प्रतिष्ठानपुरे बभूव, यस्सर्मा वृहत्कथाप्रणेत्तुगुणाव्य-कालापव्याकरणकर्तृशर्ववर्मप्रभृतयो भूयांसो विद्वांसो मण्ड्या-चकुरिति कथासरित्सागरपद्यतरङ्गस्थितकथातः प्रतीयते. 'सोऽहं दक्षिणे वित्तार्थी प्रयातो दक्षिणापथम् । प्राप्तः पुरं प्रतिष्ठानं नरसिंहस्य भूपतेः ॥' (३८१०८) इत्यादि-कथासरित्सागरस्थश्लोकेभ्य एव दक्षिणापथे प्रतिष्ठानपुरमस्तीत्यप्यवगम्यते. तच्चाधुना 'पैठण'नाम्ना प्रसिद्धमस्ति. 'वर्तयां कुन्तलः शतकर्णः. शतवाहनो महादेवी मलय-वती [जघान]' इति वात्स्यायनप्रणीतकामसूत्रस्य द्वादशाध्यायोपान्ते समुपलभ्यते. डॉक्टर्पीटर्सनेन बुन्दीनगराधीशपुस्तकालयादानीते गाथासप्तशतीपुस्तके 'राएण विरइआए कुन्तलजणवअइणेण हालेण । सत्तसई अ समत्त सत्तममउत्तासअ एअम् ॥ इति सप्तम शतकम् । इति श्रीमत्कुन्तलजनपदेश्वर-प्रतिष्ठानपत्तनाधीश-शतकर्णोप-नामक-द्वीपि(दीप)कर्णोत्तमज-मलयवतीप्राणप्रिय-कालापप्रवर्तकशर्ववर्मधीसस-मलय-वत्युपदेशपण्डितीभूत-स्वकभाषाप्रयस्वीकृतपैशाचिकपण्डितराजगुणाव्यनिर्मितभस्मीभ-षट्पद्वत्कथावशिष्टसप्तमांशावलोकनप्राकृतादिवाक्यप्रसक्त (१)प्रीत-कविवत्सल-हालायुपना-मक-श्रीसातवाहननरेन्द्रनिर्मिता विविधान्योक्तिमयप्राकृतगीर्णुष्किता शुचिरसप्रधाना काव्योत्तमा सप्तशत्यवसानमगात् ॥' एवं समाप्तिश्च वर्तते. एतद्विलोकनेन वात्स्यायन-स्मृत. कथासरित्सागरदर्शितश्च सातवाहन एक एव तेनैवेय गाथासप्तशती प्राचीन-ग्रन्थेभ्य. सञ्चलिता. स च त्रिस्तोत्रस्य प्रथमशतक आसीदित्याधुनिमाना विद्वद्-राणां निश्चयः. युक्तं चैतत्. यत्. शकप्रवर्तक-शालिवाहन एव सातवाहन इति निर्वि-

१. राजशेखरसूरिप्रणीते प्रबन्धकोषे सातवाहनप्रबन्धे 'अधुना तु दक्षिणदेशस्थित प्रतिष्ठानपुरे ध्रुवकप्रामतुल्यं वर्तते ।' इत्यस्ति. २. डॉक्टर्पीटर्सनस्य तृतीये पोर्टा-हयपुस्तके ३४९ पृष्ठे द्रष्टव्यम्. ३. 'कामगिरि समारम्भ द्वारकान्तं महेश्वरि । धीकु-न्तलाभिधो देशो ह्युदेशं ऽणु प्रिये ॥' इति शक्तिसंगमतन्त्रम्. तस्मिन्समये च गुर्जर-देशोऽपि सातवाहनस्यैव प्रभुत्वमासीत्, यतस्तेन सद्युष्टेन स्वसचिवाय शर्ववर्मणे अहकच्छ- (मरोच)देशप्रभुत्वं दत्तमिति 'राजाहंरजनचिचयंरय शर्ववर्मा तेनार्चितो गुरुरिति प्रण-तेन राजा । स्वामी कृतश्च विपद्ये अहकच्छनाम्नि कूलोपकण्ठविनिवेशिनि नर्मदायाः ॥' अस्मात्कथासरित्सागरपद्यतरङ्गस्थश्लोकाज्ज्ञायते. ४. अनन्तराज-कलशदेव-द्वयदे-वालयः कश्मीरमहीपाला अपि सातवाहनकुलोत्पन्ना आसन्निति कुरुनराजतरङ्गिणीतः कथासरित्सागरसमाप्तिस्थितप्रशंसितश्च प्रतीयते. साऽपि सातवाहनः कदाचिदय-मेव स्यात्.

बादैव प्रथमशतके तस्य स्थितिः । अयं गायत्रिसप्तहृक्तां सातवाहनोऽन्यैः प्रज्ञविभिरप्यभिहितः यथा—‘अविनाशिनमप्राम्यमकरोत्सातवाहनः । विशुद्धतातिभिः कोप रञ्जितैव सुभाषितैः ॥’ इति हर्षचरितारम्भे षाण् कोपत्रयायमेव गायत्रिसप्तहृको षाण्स्य विवक्षितः ‘जगत्या प्रथिता गायत्रा सातवाहनभूभुजा । व्यधुर्धृतेस्तु विस्तारमहो चित्रपरम्परा ॥’ अयं श्लोकः केषुचित्सूक्तिमुक्तावलीपुस्तकेषु राणशेखरनाम्ना समुद्धृतो दृश्यते ‘सच्च भण गोदावरि पुष्पसमुद्गेण साहियासन्ती । सालाहणकुलसरिचं जइ ते वूले कुल अस्थि ॥ उत्तरओ हिमवन्तो दाहिणओ सालवाहणो राथा । समभारभरकन्ता तेष न पण्ठथ पुहवी ॥’ एतद्गाथाद्वयं राणशेखरसूरिप्रणीते प्रवन्धकोप सातवाहनप्रवन्धे समुपलभ्यते

शतानन्दसुनुमहाकविध्रीमदभिनन्दप्रणीतरामचरिताख्यमहाकाव्यस्य सप्तमसर्गांते पञ्चदशसर्गांते च ‘नमः श्रीहजारवर्षाय येन ह्यालानन्दन्तरम् । स्वकोपः कविकोपाणामाविर्भावाय सञ्चतः ॥’ अयं श्लोकः, द्वात्रिंशत्सर्गसमाप्तौ च ‘हालेनोत्तमपूजया कवित्वं श्रीपालितो रालिख रयति कामपि कालिदासकवयो नीता शकारातिना । श्रीहर्षा विततार गद्यवज्ज्ये षाणाय वाणीफलं सद्यः सक्रिययाभिनन्दमपि च श्रीहजारवर्षोऽग्रहीत् ॥’ अयं श्लोकः समुपलभ्यते एतेन श्रीपादितकविनैव धनलिप्या स्वप्रभोर्हालस्य नाम्नाय गायत्रिसप्तहृक्तां सगृहीतं स्वादित्यप्यनुमीयते सातवाहनस्यैव हालः, शालः, सातवाहनः, एते पर्यायाः सन्तीति हैमकोपादिषु सुव्यक्तमेव

१ प्रवन्धकोपे तु ‘महावीरस्वामिनि मोक्ष गते ४७० वर्षानन्तरं विक्रमादित्यः । तत्समकालीन एवायं सातवाहनः । काटिकाचार्यसमकालीनोऽपि कथनं सातवाहनः, सोऽस्मादर्वाचीनः ।’ इत्यस्ति २ ‘शालो हाले मत्स्यभेदे’ इति, ‘हाः सातवाहनपाथिवे’ इति च हैमानेकाथः “शलति शालः । इति वा । ‘श्यामादया-’ इति लः । हाः सातवाहननृपः । तत्र यथा—‘जज्ञे शाःमहीशलः प्रतिष्ठानपुरे पुरा ।’ इति, “यथा—दिवः गते हालवमुधराधिपे ।’ इति च तटीका अनेकार्थैरवाकरकांमुदी ‘हालः सातवाहनः’ इति हैमनाममालाः ‘हालवराणिहृदयः हालः । ज्वलादिवाक् । सातः दत्तमुखः वाहनमस्य सातवाहनः । सालवाहनोऽपि ।’ इति तटीका अभिधानचिन्तामणिः ‘सालाहणमिहालो’ इति देशीनाममात्रं ‘हालः सातवाहनः’ इति तटीकाः ‘शालो हालनृपेऽपि च’ इति त्रिकाण्डशेषानेकार्थं कथासरित्सागरे तु सा तेन यस्माद्बुद्धोऽभूत्सातः सातवाहनम् । नाम्ना चकार कालेन राज्ये चैनं न्यवेशयत् ॥’ इति सातवाहनपदस्य निरुक्तिरुपस्थितिः सातो नाम कथनं यक्ष कुबेरशापेन सिंहता प्राप्तः तेनायं स्वरूपेऽधिरोपितः इति कथापि तत्रैवास्ति वात्स्यायनीयकामसूत्रे तु ‘सातवाहनः’ इति तालव्यादि समुपलभ्यते वायु-मातस्य विष्णु-पुराणेषु भाग्यते च हात्महीपतेर्नाम समुपलभ्यते इति विद्वद्भरणशरकोपाह्व-रामनृणशर्मभिः प्रणीते

सप्रहृरूपेऽस्मिन्ग्रन्थे काधन गाथा हालप्रणीता अपि सन्ति यत कचिरपुस्तके चतुर्थगाथामारभ्य द्वादशगाथापर्यन्त प्रतिगाथाप्रे तत्तद्गाथारतुंणां 'हालस्स (हालस्य), बोटिसस्स, जुणेहस्स, मअरन्दसेणस्स (मकरन्दसेनस्य), अमरराअस्स (अमरराजस्य), कुमारिलस्स (कुमारिलस्य), विरिराअस्स (वीराजस्य), भीमस्सामिणो (भीमस्सामिन), हालस्स, एतानि पद्यन्तानि नामानि समुपलभ्यन्ते अग्रे च ऐत्यक्प्रमादेन गलितानीति भाति. एतद्ग्रन्थान्तर्गता गाथा ध्वन्यालोके, तल्लोचने, सरस्वतीकण्ठाभरणे, काव्यप्रकाशे चोदाहृता सन्ति कुलबालदेवनिर्मिता गङ्गाधरभट्टनिर्मिता चास्य टीका समुपलभ्यते, तत्र गङ्गाधरभट्टनिमित्तैव समीचीना टीकाकर्त्रोर्दशकालौ चानिश्चितावैव.



जर्मनीदेशे टीकारहितोऽयं ग्रन्थो रोमनलिप्या वेबरपण्डितेन मुद्रितः . स च तोदेशीयानामेवोपकारक इति गङ्गाधरभट्टप्रणीतटीकासमेतोऽस्माभिर्मुद्रयितुमारब्ध भविष्यति चायमतिप्रबो मनोहरश्च ग्रन्थो रसिकानां हृदयावर्जन इति दृढमाशास्महे.

अस्मन्मुद्रणाधारभूतपुस्तकानि त्वेतानि—

१. प्रथमं जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालाया न्यायशास्त्राध्यापकाना ओझोपनामरु-ध्रीजीयनाथशर्मणा गङ्गाधरभट्टटीकासमेतं प्राय शुद्ध 'नेत्ररामाङ्गभूषाके (१६३२), लिखित क-संज्ञकम्.

२. द्वितीयमप्येतदशमेव अलवरमहाराजाश्रितश्रीभवानन्दोदयानन्दरामचन्द्रपण्डिताना नवीन नातिशुद्ध च रा विहितम्

३. तृतीय कुलबालदेवप्रणीतटीकासमेतमस्मदीयं नात्यशुद्धं रा विहितम् तच्च डॉक्टरपीटर्सनेन कोटानगरादानीतस्य पुस्तकस्य प्रतिलिखकम्.

४. चतुर्थं जयपुरराजगुरुपर्वणीकरोपाह्वनारायणभट्टाना केवलं संस्कृतच्छायामात्र प्राय शुद्ध नातिनवीनं च घ-विहितम्

एतत्पुस्तकाधारेणात्रास्माभि शुद्धान्येव पाठा-न्तराणि गृहीतानि सन्ति.

दक्षिणप्राचीनेतिहासनाम्नि पुस्तके २५ पृष्ठे विलोकनीयम् शातकर्णे सातवाहनस्य विस्तरेण वर्णनं च तत् एवावधार्यम्.

१. पुस्तकान्तरे 'कुलनाथदेव' इत्यपि नाम दृष्टमस्ति.

काव्यमाला ।

हालापराख्यमहाकविश्रीसातवाहनसंकलिता

गाथासप्तशती ।

श्रीगङ्गाधरभट्टप्रणीतया भावलेशप्रवाशिकाख्यया टीकया संवलितया ।

नत्वा दुण्डिपदान्न गङ्गाधरभट्टनिर्मिता टीका ।

सप्तशतभावलेशप्रकाशिका शोभ्यता विज्ञैः ॥

अथ तत्रभवान्प्राकृतकविषुमुदकुमुदिनीनायकः शालिवाहनश्चिद्विद्वितगाथाकोपस्या-
पेन्नपरिसमाप्तये कृतं मङ्गलं श्रोतुं हितार्थमुपनिबध्नाति—

पशुपदो रोसारुणपट्टिमासंकन्तगौरिमुखचन्द्रम् ।

गृहीतार्घपङ्कजं विअ संज्ञासलिलज्जलि नमह ॥ १ ॥

[पशुपते रोसारुणप्रतिमासंकान्तगौरीमुखचन्द्रम् ।

गृहीतार्घपङ्कजमिव संज्ञासलिलाञ्जलिं नमत ॥]

पशुपद इति । मामुपेक्ष्य कथमयमन्यां ध्यायतीति रोपेणारुण प्रतिमया संक्रान्त
प्राकृते पूर्वनिपातानियमासंकान्तप्रतिमं वा यद्रौरीमुख तदेव चन्द्रो यत्र तं पशुपतेः
संज्ञासलिलाञ्जलिं नमतेत्यन्वयः । रक्तमुखप्रतिविम्बच्छलेन गृहीतार्घोचितरक्तपङ्कज-
मिवेत्युत्प्रेक्षा । यद्वा मानिन्यां प्रणयरोपमसहमानं नायकं प्रति दृष्ट्वा लक्षिरियम्—
'अनभिज्ञोऽसि प्रेमव्यवहाराणां यस्त्व प्रियाप्रणयरोपलक्षणे हर्षस्थाने कुप्यसि । न पश्यसि
किं देव्याः संज्ञासलिलाञ्जलावपि प्रणयरोपम्' इति ॥

गाथाकोपविरचनप्रयोजनमाह—

अमिअं पाउअकव्वं पडिअं सोअं अ जे ण आणन्ति ।

कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कैइ ण लज्जन्ति ॥ २ ॥

१. 'पङ्कजमिव' इति ख ग-पुस्तकयोः पाठः. २. 'अमअ' इति ख-ग-पाठः. ३. 'कहं'
इत्यस्मिन्पदे 'इ' इति गुर्वक्षरस्यापि छन्दोभङ्गभयाल्लक्ष्यक्षरवदुच्चारण विधेयम्, इत्यत्र प्रमाणं
प्राकृतपिण्डले यथा—'अइ दीहो वि अ वण्णो लहु जीहा पवइ होइ सो वि लहु । वण्णो

[अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति ।

कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते ॥]

अमिअमिति । शृङ्गाररसनिर्भरत्वेनाङ्गादकत्वादमृतमिवामृतं प्राकृतकाव्यमवसरे पठितुं परपठितं च श्रोतुं बोधुं ये न जानन्ति, अथ च-कामस्य तत्त्वचिन्तां तन्त्रवातां वा कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्त इत्यर्थः । कामशास्त्रव्युत्पत्तिविधुरं प्रति विदग्धनायिकोक्तिर्वा ॥

प्रेक्षावत्प्रवृत्तये स्वप्नस्य सकृत्तता साररूपता चाह—

सप्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।

हालेण विरइआइं सालंकाराणं गाहाणम् ॥ ३ ॥

[सप्त शतानि कविरत्सलेन कोटेर्मध्ये ।

हालेन विरचितानि सालंकाराणां गाथानाम् ॥]

‘सत्तेति । मज्झआरो मध्यः । कविगाथासमूहेन तत्कीर्तिस्थापनात्कविरत्सलेन हा-लेन शालियाहनेन सालकाराणां गाथानां कोटेर्मध्ये सप्त शतानि विरचितानि । संगृही-तानीत्यर्थः । गायालक्षणं तु—‘पढमं बारह मत्ता बीए अद्वारएहिं’ सजुत्ता । अह पढम तह तीअं दहपयविहुंसिआ गाहा ॥’ इति पित्रलोचनं बोध्यम् ॥

‘कैलेलिनीकाननकदरादां दुःखाद्ये चार्पितचित्तवृत्तिः । मृदुवमारम्भमभिधैर्य-श्रयोऽपि दीर्घं रमते रतेषु ॥’ इत्यादि कामशास्त्रादीर्घरमणार्थं नायकस्यान्यचित्ततां कुर्वती वाचिदाह—

उअ निमलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ बलाभा ।

णिम्मलमरगअभाअणपेरिट्ठिदा सद्धसुत्ति ज्व ॥ ४ ॥

वि तुरिअपडिओ दोतिणि वि एक्क जणैहु ॥’ इति ‘यदि दीर्घमपि वर्णं लघुवृत्त्या जिह्वा पठति तदा सोऽपि वर्णो लघुरेव भवति । द्वौ वर्णौ त्रयो वा वर्णास्तवरितपठितास्ता-नेक एव वर्ण इति जानीत ।’ इत्येतद्विधा. एवं ‘इ’ ‘हिं’ इति वर्णद्वयम्, ‘ए’ ‘ऊ’ इति वर्णद्वयं शुद्धम्, जवर्ण(अन्यवर्ण)मिलितं वा विकल्पेन लघु भवति, तथा रकारयुक्ते हकारयुक्ते वा व्यञ्जने परे पूर्वाक्षरे विकल्पेन लघु भवति, इत्यादि नियमाः शोदा-हरणा. प्राकृतपित्रले दृष्टव्याः. अस्माभिरप्यत्र यस्य गुणेश्वरस्य लक्ष्मणवदुच्चारणं भवति तदुपरि ‘एतादृशमर्थवन्नाच्चारं विहं स्थापितमस्ति. १. ‘कोट्यामध्ये’ इति अ-पुस्तके, ‘कोटिमप्यात्’ इति ग-पुस्तके पाठः. २. ‘शालवाहनेन’ इति, ‘शालियाह-नेन’ इति च ग घ पुस्तकयोः पाठौ. ३. अयं श्लोकः कुकोकप्रणीते रतिरहस्ये (५।३) वर्तते. ४. ‘परिट्ठिआ’ इति ख-ग-पाठः.

- [पश्य निश्चलनि.स्पन्दा विसिनीपत्रे राजते बलाका ।

निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥]

उभ गिचलेति । निश्चलोऽचलस्तद्वन्नि.स्पन्दा वेगविधारणप्रयत्नवशात् । निश्चलेति पुरुषसंबोधनं वा । शङ्खपटिता शुक्तिः शङ्खशुक्तिः । तथा च यदि वेगविधारणपरोऽस्ति तदैनां बलाकां पश्यन्नन्यमनस्कतया चिरं रमस्वेति भावः । यद्वा नि स्पन्दत्वेनाश्व-
स्तरवम्, तेन च जनरहितत्वम्, तेन च सकेतस्थानमिति कयाचित्कचित्प्रति व्यज्यते । अ-
थवा मिथ्या वदति । न त्वमत्रागतोऽभूरेति व्यज्यते ॥

विपरीतरत्नप्रसङ्गे सदर्पां काचिदुद्दिश्य कथिदाह—

तावच्चिअ रइसमए महिलाणं विव्रममा विराजन्ति ।

जाव ण कुवलयदलसेछआइँ मँउलेन्ति णअणाइ ॥ ५ ॥

[तावदेव रतिसमये महिलानां विव्रमा विराजन्ते ।

यावन्न कुवलयदलसंछायानि मुकुलीभवन्ति नयनानि ॥]

तावेति । यद्वा सुरतावसानोपचारायनभिज्ञतया रतान्तेऽपि कटाक्षभुजप्रक्षेपादि-
विव्रमं कुर्वन्ती नायिकां प्रति सहयाः शिक्षोक्तिरियम् । रतिसमये स्त्रीणां विव्रमस्ता-
वदेव विराजन्ते पुरुषाणां हृदयहारिणो भवन्ति यावत्पुरुषाणां नयनानि रतिप्राप्त्या
मुकुलितानि न भवन्ति । अतस्तथाविधं नायकमुपलभ्याप्राप्तरतिमुख्यापि प्रप्तरतिमु-
खावेव तच्छिविव्रमया त्वया भवितव्यमिति ॥

स्वकीशेषवनरोपितस्य पुष्पफलरहितस्य कुरवकर्तरोर्दोहदमन्वेपयन्तं नायकं प्रति
नायिकायाः सखी वदति—

णोहँलिअमप्पणो किं ण मग्गसे मग्गसे कुरवअरस ।

एअं तुह सुहग हसइ वलिआणणपङ्कअं जाआ ॥ ६ ॥

[दोहँदमात्मनः किं न मृगयसे मृगयसे कुरवकस्य ।

एवं तव सुमग हसति चलिताननपङ्कजं जाया ॥]

णोहलिअमिति । यद्वा णोहलिअं नवफलोद्गममित्यर्थः । मदालिङ्गनेन कुरवकस्य
फलोद्गमं प्रार्थयसे आत्मनः पुष्परूपं फलं किमिति न प्रार्थयसे । अहो ते जाव्य-
मित्यभिप्रायः ॥

१. 'तावच्चिअ' इति क-पाठः. २. 'जावण्ण' इति ग-पाठः. ३. 'दलसछआइँ' इति
ग-पाठः. ४. 'मउलेन्ति' इति क-पाठ. ५. 'सदशानि' इति ग-घ-पाठः. ६. 'मुकुला-
यन्ते' इति, 'मुकुलन्ति' इति ग-घ-पाठौ. ७. 'दोहलिअ' इति ग-पाठः. ८. 'एवं छु
तुह' इति छन्दोभङ्गयुक्तः क-ख-पाठः. ९. 'नवदोहदमात्मनः' इति घ-पाठः. १०. 'मार्ग-
से मार्गसे' इति ग-पाठ. ११. 'एवं सल्ल सुमग त्वा' इति क-ख-घ-पाठः, 'इयं त्वा सु-
मग' इति ग-पाठः.

वसन्तसमये गमनोद्यन नायक प्रति कान्ताया सखी गमनाक्षेपार्थमाह—

ताविज्जन्ति असोएहिं लड्डवणिआओ दइहविरहम्मि ।

किं सहइ को वि कस्स वि पाअपहार पहुप्पन्तो ॥ ७ ॥

[ताप्यन्ते अशोकैर्विदेग्धवनिता दयितविरहे ।

किं सहते कोऽपि कस्यापि पादप्रहारं प्रभवन् ॥]

ताविज्जन्तीति । अशोकैरननुभूतशोकत्वात्परपोढानिर्दये । अन्योऽपि न सहते किं पुनरशोक । प्रभवन्नित्यवसरप्राप्त्या समर्थो भवन् । कातसंनिधौ तु सामर्थ्याभावात् ताप्यन्त इत्याशयः । तथा च वरस्त्रीचरणताडनरूप दोहद त्वयैव कारितेय मत्सखी त्वद्विरहे लज्ज्यावसरैः सानुशयैरशोकैस्ताप्यमाना जीवितमेव जह्यादिति भावः । प्रोषितभर्तृकाया कान्तं प्रति तत्सख्या लेसगायेयमिति कथितम् ॥

कस्याचित्केनचित्समुक्तेन तिलवाटिका संकेतस्थानमासीत् । ततः पक्षेपु तिलेषु संकेतस्थानात्तरं जारं प्रति धावयन्ती श्वधू प्रत्याश्रयंकथनव्याजेनाह—

अत्ता तह रमणिज्ज अह्म गामस्स मण्डणीहूमम् ।

लुअतिलवाडिसरिच्छ सिसिरेण कअ भिसिणिसण्डम् ॥ ८ ॥

[श्वधू तथा रमणीयमस्त्राक ग्रामस्य मण्डनीभूतम् ।

लूनतिलवाटीसदृश शिशिरेण वृत्त भित्तिनीषण्डम् ॥]

अस्तेति । हिमदग्धपत्रतया दण्डमात्रशेष-वाहूनतिलवाटीसदृशम् । तथा च पूर्वं पञ्चायाहरणार्थं जनानां तत्र गतागतमासीत्, तदपीदानीं नास्तीति विजनव तस्य देशस्य सूचितम् । 'तिलक्षेत्रपद्मसरं प्रवृत्ति-संकेतस्थानान्तराभावाद्गृहमेव संकेतस्थानमित्यर्थः' इति कथितम् ॥

कस्याचित्केनचित्समं शालिक्षेत्रं संकेतस्थानमासीत् । ततः शालिपाके तदपगमं दृष्ट्वा रुदन्ती तामुद्दिश्य संकेतस्थानान्तरं सूचयन्ती सखी आह—

किं रुअसि ओणअमुही धवलाअन्तेसु सालिछेत्तेसु ।

हरिआलमण्डितमुही णडि व्व सणधाडिआ जाआ ॥ ९ ॥

[किं रोदिष्यवन्तमुखी धवलायमानेषु शालिक्षेत्रेषु ।

हरितालमण्डितमुखी नदीव शणवाटिका जाता ॥]

किमिति । हरितालेन धातुविशेषण मण्डितमुखी नदीव । शणवाटिकापक्षे—पीतकुसु-

१ 'असो इहिं' इति ग पाठ २ 'मनोहरस्त्रिय' इति ग पाठ, 'ललितवनिता' इति घ पाठ ३ 'पुष्पित' इति ग पाठ ४ 'गामस्स' इति ख-पाठ ५ 'लुअ-तिलवाडिसरिस्स' इति ख-पाठ ६ 'हे मातस्तथा' इति ग पाठ

मस्तयकनिकरनिविडशिखरशणतदनियहनिरन्तरतया हरितालमण्डितमुखोवेत्युपमा । अथ च हरीणां मर्कटानां जालेन मण्डितं मुखं प्रवेशमार्गो यस्या इति निर्जनता व्यज्यते । अथवा पाकाभिमुखेषु शालिक्षेत्रेषु हर्षस्थानेष्वपि रुदितलक्षितशालिक्षेत्राभिसारा कापि कयापि परिहासशीलया एवमुपहस्यते ॥

कलहान्तरितां नायिका कान्तानुवृत्त्यभिमुखी कर्तुं सखी आह—

सहि ईरिसिन्धिव गई मा रुव्वसु तंसेवलिअमुहअन्दम् ।

एआणं बालबालुक्कितन्तुकुडिलाणं पेम्माणम् ॥ १० ॥

[सखि ईदृश्येव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्बलितमुखचन्द्रम् ।

एतेषां बालककटीतन्तुकुडिलानां प्रेम्णाम् ॥]

सहीति । ईदृश्येवेति सनिहितमेवानुवर्तन्ते । वेष्टितमेव वेष्टयन्ति । मनागाकृष्ट्यापि नुव्रन्ति । सथावदन्यत्र दृढानुबन्धो न भवति तावदेव मानं विहाय कान्तमनुवर्तस्वेति सहायामुपदेशः । तत्कान्ते च विरहविपुरेयं मानिनी तदेनामनुनयस्वेति व्यङ्ग्योऽर्थः ॥

गृहीतमानायाः कस्याधिदनुनयार्थं चरणपतितस्य पत्युः पृष्ठमारुढ पुत्रं दृष्ट्वा बन्ध-
विशेषस्मरणात्तस्या हास्योद्गमो जात इति काचित्सखीमाह । यद्वा कृतकलहयोर्दपत्यो
रात्रिवृत्तान्तमनुवंधायागता सपत्नी सपत्न्या पृष्टा तामाह—

पाअपडिअस्स पइणो पुट्ठिं पुत्ते समारुहत्तम्मि ।

दढमण्णुदुंणिआएँ वि हासो चरिणीएँ णेक्कन्तो ॥ ११ ॥

[पादपतितस्य पत्युः पृष्ठं पुत्रे समारुहति ।

दृढमन्युदूनाया अपि हासो गृहिण्या निष्कान्तः ॥]

पाएति । पत्युः स्वामिनः । न तु बल्लभस्येत्यर्थः । पुत्रे समारुहतीत्यनेन पुत्रवत्तया
गलितयौवनायामप्यनुरक्त इति व्यज्यते । गृहिण्या गृहस्वामिन्याः । अस्मादादीना-
मौदासीन्यादिति भावः । दढमन्युदूनाया इत्यनेन रोषोपशमाभावप्रतिपादनेन स्वाधीन-
भर्तृकायाः सौभाग्यगर्वात्पतिविषयेऽनादरः, पत्युश्च तादृशमपि क्षेहातिशयः प्रकटितः ॥

प्रियविश्लेषोपतप्तया कयाचिरश्रेयिता निस्त्रयार्थो दूती नायकमुत्कर्षयन्ती भग्न्या स्वस-
खीमरण सूचयन्ती आह—

सेसं जाणइ दहुं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जए रीओ । -

मरुण ण तुमं भणिस्सं मरणं वि सल्लाहणिजं से ॥ १२ ॥

१. 'तिरिअवलिअ-' इति ग-पाठः. २. 'दूणिआए' इति ख-पाठः ; 'दुम्मिआइ'
इति ग-पाठः. ३. 'समारुहमाणे' इति ग-पाठः. ४. 'दढमन्युदुर्मनस्काया.' इति ग-
पाठः. ५. ख-ग-पुस्तकयोरस्या अग्निमायाय गाथाया व्यत्ययोऽस्ति. ६. 'राओ' इति
ख-ग-पाठः.

[सत्यं जानाति द्रष्टुं सदृशे जने युज्यते रागः ।

म्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीयं तैस्साः ॥]

सधमिति । यतोऽनन्यरूपश्लाघिनी स्वद्रूपमेव बहु मन्यत इत्याशयः । सदृशे जने युज्यते राग इत्यनेन रूपाभिजनादिभिरनुरूपे त्वमि तस्याः समागमौत्सुक्यं युक्तमेवेति नायिकायाः सुललितरागाभ्यां नायकप्रोत्साहनम् । म्रियतामित्यनेन नायकस्यानभ्युपगमे स्त्रीवधपातकम्, आत्मनश्च प्रार्थनामङ्गमीकृतं दर्शितम् । मरणमपीत्यादिना चानुरूपानुष्ठानात्त्वद्गतचित्ताया मरणे अन्मान्तरे त्वत्प्राप्तिर्धर्मवो व्यज्यते ॥

वैखादिमालिन्यशब्दया गृहकृत्यपराङ्मुखी सखी प्रबोधयितुं काविदाह—

घरिणीं महाणसकम्मल्लगामसिमैलिहण हत्येण ।

छित्तं मुहं हसिज्जइ चन्दावत्थं गअं पइणा ॥ १३ ॥

[गृहिण्या महानसकर्मलमपीमलिनितेन हत्येन ।

रूष्टं मुखं हसते चन्द्रावत्त्वं गतं पत्या ॥]

वरीति । यस्य यदुचितं कर्म तच्छील्यतो वैरूप्यमप्यलंकारायैव भवति । यतो लममपीकालिमापि मुखं पत्या सपरिहासं चन्द्रेणोपमीयते । अतः कुलस्त्रीणां गृहकृत्यपराङ्मुखत्वमनुचितमिति भावः ॥

कृतकारमाहतेनान्यप्रज्वलत्समी कुण्ठन्ती काचित्स्वामिलापं प्रकाशयन्माह—

रन्धणकम्मणिउणिण मां जूरसु रत्तपाडलसुअन्धम् ।

मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥ १४ ॥

[रन्धनकर्मणिपुणिके मां कुण्ठस्व रत्तपाटलसुगन्धम् ।

मुखमारुतं पिबन्धूमायते शिखी न प्रज्वलति ॥]

रन्धणेति । रन्धनपरतया स्वदबलोक्नकीतुकोपगतमपि मां नाबलोकयसीति भावः । मा इति । तवापरकृतेऽभिपूजोचितस्य रत्तपाटलाकुसुमस्यैव सुरभिशीतलो गन्धो यस्य तम् । मुखेति । दोषादणत्वन्मुखदिदृक्षयैव धूमोद्गमचादुमाचरति । लन्मुखमाहृतपा-
नेच्छवैकार्यं न प्रज्वलति । ज्वलितस्य तत्प्राप्त्यसंभवादिति भावः ॥

१. 'अस्साः' इति ग-पाठः. २. 'कापि मलिनत्वाशब्दया स्वामिसमाहितगृहकृत्यपराङ्मुखी' इति ख-पाठः. ३. 'मलिहण' इति ख-ग-पाठः. ४. 'कीऽपि युवा कायुकधर्ममयी समाधाय स्वामिप्राप्यं प्रकाशयन्माहतेनाप्रज्वलत्समी कुण्ठन्ती नायिका-माह' इति ख-पाठः. ५. 'खिदल' इति ग-पाठः. ॥

नवोढायाः कन्याधिभूतनगर्भयोगिन्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं प्रतिपादयः
काचिदाह—

• किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआएँ मुद्दाए ।

पढमुग्गअदोहणीए णवरं दइअं गआ दिट्ठी ॥ १५ ॥

• [किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृथाया मुग्धायाः ।

प्रथमोद्गतदोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः ॥]

किमिति । प्रतिभासते रोचते । दयितेऽभिलाषमेव सूचितवतीत्यर्थः । यद्वा सपत्नीं प्र
सासूयस्य सपत्नीजनस्योपालम्भवादोऽयम् । मुग्धाया इति मोहाद्गर्भायासमप्यग
यन्त्याः । प्रथमेति । बहुप्रसूताश्च गर्भखेदखिन्नाः मुरतायासं परिहरन्ति । इयं त्वननु
तप्रसूतिखेदा प्रियसंभोगमेव परमभिलषतीति भावः ॥

प्रोषितपतिका काचिद्विरहदाहदुःसहत्वं व्यञ्जयन्ती कान्तसमागमविषये सखीञ्च
स्वरयितुं चन्द्राभ्यर्थनं च्छलेनाह—

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहत्तिलअ चन्द दे छिवसु ।

छित्तो जेहिँ पिअअमो ममं पि तेहिँ विअ-करेहिँ ॥ १६ ॥

• [अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृश ।

स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ॥]

अमएति । देशचन्द्रः सानुनयसंबोधने । अमृतमयेत्यनेन जगज्जीवनहेतुत्वम्, गगनरं
खरेत्यनेनाखिललोकलोचनानन्दकारित्वम्, रजनीमुखतिलकेत्यनेनावलज्जनपक्षपातित्वम्
चन्द्रेत्यनेनाहादकत्वं व्यज्यते । एवमिधोऽपि मां निर्दयं दहसि, मत्कान्तं पुनरमृतशिशिः
करैः स्पृशसीत्यतोऽद्यापि नायातीति भावः ॥

सखि मुञ्च खेदम् । अद्य श्रो वा तवागमिष्यति कान्तः । किं त्वागतोऽप्यसौ त्वयः
सप्रणयरोपमुपालम्भैः खेदवितज्य इति सखीभिरुक्ता प्रोषितमर्तुका आह—

ऐहइ सो वि पउत्थो अहं अ कुप्पेज्ज सो वि अणुणेज्ज ।

इअ कस्स वि फलइ मणोरहाणं माला पिअअमम्मि ॥ १७ ॥

• [ऐष्यति सोऽपि प्रोषितो अहं च कुपिष्यामि सोऽप्यनुनेष्यति ।

इति कस्या अपि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

१. 'दोहलिणीए' इति ग-पाठः; 'दोहलिणी' इति ख-पाठः. २. 'एहिइ' इति
ख-पाठः. ३. 'अणुणेज्ज' इति ग-पाठः. ४. 'अगमिष्याति' इति ग-पाठः.
५. 'अथाह' इति ग-पाठः.

एहइति । कान्तस्य निरनुकोशत्वात्, आत्मनश्च कान्तावधीरणभीरुत्वात्, इयच्चिरे
प्रेमानुबन्धस्यासंभाव्यमानत्वाच्च सर्वमेतन्मनोरथमात्रमित्याशयेनाह—इतीति । कस्यापि
धन्यजनस्य एतत्संपत्ते । मम तु मन्दभाग्यायाः कृत एतदिति भावः ॥

कथमधुना दुर्बलोऽसीति मित्रेण पृष्ठस्य कान्तस्य बहुमद्विलाकृष्टिं कापि सेव्योपाल-
म्भमन्यापदेशेनाह—

दुग्गमकुटुम्बअट्टी कहँ णु मए धोइएण सोढव्वा ।
दसिओसरन्तसलिलेण उअह रुण्णं व पडएण ॥ १८ ॥

[दुर्गतकुटुम्बाकृष्टिः कथं नु मया धौतेन सोढव्या ।

दशापसरत्सलिलेन पश्यत रुदितमिव पटकेन ॥]

दुग्गमएति । सोढव्वेल्लनन्तरं इति शङ्कया इति शेषः । तया चैवंविधशङ्कामानेन
खेदादशागलज्वलच्छलेनाचेतनोऽपि पटो रोदिति, अयं तु विदग्धो महिष्ठाण्डानुवृत्त्या
कथं न खिन्नः स्यादिति भावः । यद्वा कापि वेश्या धनदानेन विना बहूनां ग्रामप्रधा-
नानामाकर्षणादुद्वेगं कृत्वा प्रति सूचयन्तीत्यं कथयति ॥

कोऽप्यात्मनः पराधीनवृत्तित्वमनुरागातिशयं च नायिकां प्रति ह्यापयन्नायिकागृह-
गामिवत्समन्यापदेशेनाह—

कोसम्बकिसलजवणअ तण्णअ उण्णामिएहिँ कण्णेहिँ ।
हिअअट्टिअँ घरँ वञ्चमाण धवलत्तणं पाव ॥ १९ ॥

[कोशाग्रविसलयवर्णं तर्णकं उन्नामिताभ्यां कर्णाम्याम् ।

हृदयस्थितं गृहं व्रजन्धवलत्वं प्राप्नुहि ॥]

कोसम्बेति । धवलत्वं श्रेष्ठतां पण्डितं वा । स्वेच्छाचारितामिति यावत् । अहमिव पराधी-
नवृत्तिर्मा भूतिरिति भावः । अथवा या वृद्धा कामयते तस्यास्त्वं तर्णक इवेति कथावित्क-
चित्प्रसूच्यते ॥

कापि भावजिज्ञासार्थं कृतकतिशानिमीलिताक्षं कपोलचुम्बनपुलकिताग्रस्वेन विदित-
मिभ्यास्त्रापं कान्तमाह—

अलिअपसुत्तअविणिमीलिअच्छ दे सुहअ मज्झ ओआसम् ।
गण्डपरिउम्बणापुलइअङ्ग ण पुँणो चिराइस्सम् ॥ २० ॥

[अलीकप्रसुप्तविविनिमीलिताक्ष हे सुमग ममावकाशम् ।

गण्डपरिचुम्बनापुलकिताङ्ग न पुनश्चिरैरिष्यामि ॥]

१. 'कुटुम्बकृष्टिः' इति घ-पाठः. २. 'हृदयेस्थितं' इति ग-घ-पाठः. ३. 'उणो'
इति ग-पाठः. ४. 'ददस्व सुमग ममावकाशम्' इति ग-पाठः. ५. 'चिरयिष्ये' इति
ग-घ-पाठः.

अलिपति । हे सुभग, ममावकाशं देहीति शेषः । 'देसु धअ मज्झ' इति कचित्पाठः ।
अत्र हे धव, ममावकाशं देहीति योज्यम् । केचित्तु—'देसु हअमज्झ इति पदच्छे-
दः । हतमप्य अङ्गविन्यासरुद्धमप्य देहि अवकाशम् । अर्यान्मम ।' इत्याहुः । गण्डेति ।
एतेन नायिकाया इक्षितज्ञानमन्योन्यानुरागश्च यूनोर्दक्षितः ॥

चेर्याङ्गानार्थमागते नायकमित्रे गृहीतान्यभुजंगमाच्छादयन्ती चेरयामाता इहि-
तरमाह—

असमत्तमण्डणाविअ वध धरं से सकोडहल्लस्स ।

वोलाविअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लग्गिहिसि ॥ २१ ॥

[असमाप्तमण्डनैः व्रज गृहं तैस् सकौतूहलस्य ।

व्यतिक्रान्तीत्सुक्यस्य पुत्रि चित्ते न लगिष्यसि ॥]

असममेति । मण्डनकरणेनास्या विलम्बो नान्यप्रसङ्गेति भावः ॥

• कश्चिन्नागरिकः कामिनीजनचित्तहरणार्थं रजस्रलामुखचुम्बनेनात्मनः कामुकत्वा-
तिशयं प्रकटयन्नाह—

आअरपणामिओट्टं अघडिअणासं अंसहअणिडालम् ।

वण्णविअटुप्पमुहिए तीए परिउम्बणं भरिमो ॥ २२ ॥

[आदरप्रणामितौष्ठमघटितनासमसंहतललाटम् ।

वर्णचूतलिप्तमुख्यालसाः परिचुम्बनं कैरामः ॥]

आअरेति । हरिद्रादिवर्णप्रधानं घृतं वणेषूतम् । देशविशेषे रजस्रलामुखं चिद्दार्थं वर्ण-
भूतेन लिप्यत इत्याचारः । तस्या या मया त्वयि प्राकथितसौन्दर्या । परि सर्वतः
कपोलादौ । यद्वा प्रोषितः कश्चिद्विषयायाः स्पृष्टक नामानुरागातिशयसूचकमालिङ्गनं
स्मरन्नात्मानं विनोदयतीति गाथार्थः ॥

जनसन्वाधेऽपि प्रिय प्रत्युद्भूतभावा सखी शिक्षयितुं वापि अच्छन्नममुकोकं कुल-
जायां गाम्भीर्यगुणमाह—

अण्णासआइं देन्ती तह सुरए हरिसविअसिअकवोला ।

गोसे वि ओणअमुही अहं सेत्ति पिआं ण संहधिमो ॥ २३ ॥

१. 'मण्डणे विअ' इति ग-पाठः . २. 'अस्स' इति ग-पाठः . ३. 'व्यतिक्रान्तर-
णरणस्य' इति ग-पाठः ; 'व्यतिक्रान्तहलहलकस्य' इति घ-पाठः . 'हलहलक कामौ-
त्सुन्यमिति देशी' इति कुलबालदेव . ४. 'असघअलिलाडम्' इति ग-पाठः . ५. 'तु-
प्पशब्दे देशी लिप्ते वर्तते' इति कुलबालदेव . ६ 'निटिलम्' इति घ पाठः .
७. 'स्सरामि' इति ग पाठः . ८. 'सहसेत्ति पिआ' इति ग-पाठः ; 'अहसेत्ति पिआ'
इति कचित्पाठः । अह इयमर्थः । इय सा प्रियेति तदर्थः . १. 'सहधिमो' इति ग-पाठः .

[आज्ञाशतानि ददती तथा सुरते हर्षविकसितकपोला ।

प्रातरप्यवनतमुखी ईर्यं सेति प्रियां न अहम्. ॥]

१. अण्णेति । हर्षविकसितकपोला सती । तथा आज्ञाशतानि गृहाणाधरं मुखं चिकुरमि-
त्यादीनि ददती । गोप्ते प्रातः । अह इयं सेयमिति । प्रथमैव न भवतीत्यर्थः । लोकसमक्षं
गूढाकारतैव नायकप्रीतिहेतुः, न तु धार्ष्ट्यमिति भावः ॥

वाचित्पत्युरन्यस्यामनुरागमात्मनि चाननुरागं कुलीनतानमस्कारच्छलेनाह—

पिअविरहो अप्पिअदंसणं अ गरुआइँ दो वि दुक्खाइँ ।

जीएँ तुमं कैरिज्जसि तीएँ णमो आहिजाइँए ॥ २४ ॥

[प्रियविरहोऽप्रियदर्शनं च गुरुके द्वे अपि दुःखे ।

यया त्वं कार्यसे तस्यै नम आभिजात्यै ॥]

२. पिएति । करोतिरत्रानुभवार्थकः । अतएव देवदत्तो दुःखमनुभवतीत्यर्थे दुःखं करो-
मीति प्रयोगः । आभिजात्यै कुलीनतायै । ऋतुस्नानादौ बन्धुजनाभ्यर्थना धर्मं वानुबन्धानः
कुलीनतया मानुषागतोऽपि, न तु स्नेहेनेत्याशयः ॥

कथमयं गमनाय कृतारम्भोऽपि न प्रस्थित इति कस्यचित्प्रश्ने तद्वयस्यः सपरि-
हासमाह—

एँको वि कैलसारो ण देइ गन्तुं पैआहिणवलन्तो ।

किं उण वाहाउलिअं लोअणजुअलं पिअअमाए ॥ २५ ॥

[एकोऽपि कृष्णसारो न ईदृशं गन्तुं प्रदक्षिणं बलम् ।

किं पुनर्बाष्पाकुलितं लोचनयुगलं प्रियतमायाः ॥]

एक इति । पक्षे व्याधाकुलितम् । किं पुनरिति । लोचनयुगलमपि यतः कृष्णसार-
मिति भावः । एतेन वान्ताग्नेहनिगडबद्धोऽयं न गच्छतीति सूचितम् ॥

अनुनीयमानमप्यनुनयमगृह्णन्तं प्रणयिनी सप्रेमदण्डमाह—

ण कुणन्तो विअ माणं णिसासु सुहमुत्तदरविबुद्धाणम् ।

सुण्णइअपासपेरिमुसणवेअणँ जइ सिजाणन्तो ॥ २६ ॥ ।

१. 'सहसा प्रियेति न' इति ग-पाठः. 'असौ सेति' इति घ-पाठः. २. 'कारिज्ज' इति क-पाठः. ३. 'अभिजात्यै' इति ग-पाठः. ४. 'एको वि' इति क-पाठः. ५. 'किष्णसारो' इति ख. पाठः. ६. 'पाहिणवलन्तो' इति क-पुस्तके, 'दवाहिण-
वलन्तो' इति च ख पुस्तके पाठः. ७. 'बलम्' इति ग घ-पाठः. ८. 'नयनयुगलं' इति घ-पाठः. ९. 'परिमुसण' इति ख-ग-पाठः.

[नाकरिष्य एव मानं निशामु सुखसुप्तदरविशुद्धाम् ।

शून्यीकृतपार्श्वपरिमोषणवेदनां यच्चज्ञासः ॥]

नेति । निशामु स्वकान्तया सह सुखसुप्तानां किञ्चिद्विबुद्धानां ततोऽन्याभिसारिण्या
तया शून्यीकृतेन पार्श्वेन यन्परिमोषणवद्यन तेन या वेदना ता यच्चज्ञासः सा वेदना यदि
त्वया ज्ञाता भवेत्तदा त्व मानं नाकरिष्य एवेति संबन्धः । समैवायं दोषः । यद्यहं पति-
व्रता न स्या तदा किं त्वमेव करोषीति भावः ॥

कृतकलहशोर्दपलो रानिहृताकलनार्थमागता प्रियसखी प्रणयरोपभद्रार्थमाह—

पणअकुविआणं दोहं वि अलिअपसुत्ताणं माणइह्माणम् ।

णिच्चलणिरुद्धणीसासर्दिण्णकण्णणं को मल्लो ॥ २७ ॥

[प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतो ।

निश्चलनिरुद्धनिःश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः ॥]

पणएति । निश्चरेति । प्रयत्नवृत्तिनि श्वासत्वेन कृतकप्रसुप्तम्, तथाविधनि श्वासारुर्ण-
तत्परतया चाभिलाषित्व सूचितम् । को मल्ल इत्युपालम्भप्रश्नः । न कोऽपीत्यर्थः । परस्पर-
रावधीरणासमर्थौ वृथैव युवामात्मानं खेदयथ इति भावः ॥

काविहूती नायिकाया देवरात्रुरक्तत्वेनासाध्यत्व सूचयन्ती जारं प्रत्याह—

णवलअपहरं अहे जहिं जहिं महइ देवरो दाउम् ।

रोमभ्वदण्डराई तहिं तहिं दीसइ बहूए ॥ २८ ॥

[नवलताप्रहारमहे यत्र यत्रेच्छति देवरो दातुम् ।

रोमाश्वदण्डराजिस्तत्र तत्र दृश्यते बन्धाः ॥]

प्रोषितभर्तृका प्राणेशसमीपगामिनमध्वगं सखीजनं वा तदानयनत्वरार्यमाह—

अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाई संभरन्तीए ।

अहिणवमेहाणं रवो णिसामिओ वज्जपडहो व्व ॥ २९ ॥

१. 'न पुवेन्त्येव' इति घ-पाठः. २. 'विषयज्ञानम्' इति घ-पाठः. ३. 'परि-
मोषण' इति ग घ-पाठः. ४. 'यदि हि जानन्ति' इति घ-पाठः. ५. 'दोष वि'
इति ख-पाठः. ६. 'दिह' इति ग-पाठः. ७. 'मानान्विनयो' इति ग-पाठः. ८. 'ण-
वलरूपप्रहारमहे' इति ख-पाठः. ९. 'देवरो दातु' इति ख-पाठः. १०. 'यस्मिन्-
स्मिन्महति' इति ग-पाठः. ११. 'तस्मिन् तस्मिन्' इति ग-पाठः. १२. 'अनुभू-
तमुत्त' इति घ-पाठः.

[अथ मया तेन विना अनुभूतमुखानि संस्मरन्त्या ।

अभिनवमेघानां रघो नितामिती वप्यपटह इव ॥]

अग्नेति । गर्जितप्रवणाद्रघोस्वनुभूतमुखानि संस्मरन्त्या मया मेघानां चन्द्रो वप्यप-
टह इव वप्यस्थानं गीयमानस्य दोषयोः पापटहप्यभिरिव धृत इत्यर्थः । एतेन वयोक्षणा-
नप्यटति तस्मिन्पटुर्गर्जनं मे मरणमित्यवगम्य यत्पुत्रं तद्विधीयतामिति सूचितम् ॥

मामपालपुत्रं प्रति वृत्ती कन्याधित्संगमायोऽन्धाहमिनुं सोपालम्भमाह—

‘निष्क्रियं जायामीरकं दुर्दशनं निम्बकीडं सागिच्छ ॥’

गामो गामिणिनन्दनं तुङ्गं एकं तद् वि तनुमाह ॥ ३० ॥

[निष्क्रियं जायामीरकं दुर्दशनं निम्बकीडं सेंदृश ।

मामो गामिनीनन्दनं तव वृत्ते तथापि तनुकायते ॥]

निष्क्रियेति । अनुरक्तहृदिनीजनवैमुन्याभिप्रेतम् । ‘निष्क्रिय’ इति पाठे निष्क्रिय
क्रियाशून्य । जायामीरकं भार्यापरतन्त्रं । अत एवास्वच्छन्दप्रचारत्वादुर्दशनं दुर्लभद-
शनं । निम्बकीडसदृश, विषदचित्वादनुन्दरमहिलानुरागाद्य । अभव्यदयितया द्वयोः
साम्यम् । गामिनीनन्दनेति भयशून्यताप्रदर्शनपरं सवोधनम् । मामो गामिनिवासिभिला-
सिनीजनः कथं त्वासंगमः । भ्यादिति चिन्तया तनुकायते दुर्बलायत इति गामिनीजनानु-
रागवधनेन वमनीयत्वं धर्मितम् ॥

कमपि सुभटयोपदिदभिलाषिणं विगृह्यगारिणमुत्साहयितुं तस्याः पत्यावनिच्छया सु-
संसाध्यतां पुरस्स च सुगन्निर्गमप्रयेततया निरपायतां वृत्तीं सुभटमुत्थित्वालेनाह—

पट्टवधनमग्गविस्समे जाआ किञ्छेण लद्धइ से णिहम् ।

गामणिउत्तस्स उरे पल्ली उणं सो सुहं मुचइ ॥ ३१ ॥

[प्रहारमणमार्गविषमे जाया वृच्छेण लभते तस्य निद्राम् ।

गामिणीपुत्रस्योरसि पल्ली पुनः सो सुखं सपिति ॥]

पहरेति । उरे इति उरसि पुरे वा । प्रहारमणकिर्णविषमे निद्रोपतककंशे तस्योरसि
जाया वृच्छेण निद्रां लभते । अनिच्छन्त्यपि भयात्तमाच्छिन्नं स्वपितीत्यर्थः । पुरपक्षे
तु—प्रहारमणमार्गविषमे प्रहारमण्यो यो वनमार्गस्तेन विषमे दुर्गमे । पल्ली, रक्षणया पल्ली-

१. ‘निष्क्रिय’ इति ग-पाठः. २. ‘दुर्दशनं’ इति ग-पाठः. ३. ‘निष्क्रिय’
इति घ-पाठः. ४. ‘निम्बकीड’ इति ख-पाठः. ५. ‘सदृश’ इति ग-घ-पाठः.
६. ‘तनुमयति’ इति ग-घ-पाठः. ७. ‘से’ इति क-ख-पाठः. ८. ‘मुचइ’ इति ख-
पाठः. ९. ‘तस्य’ इति घ-पाठः.

निवासी जन , सुखं स्वपिति । न कोऽपि जग्गार्तात्ययः । जाया पुन कृच्छ्रेण । बहुव-
ल्लभत्वात्तस्य तज्जाया सावसरेव । अतस्तत्र गच्छेति जारं प्रति इतीवच ॥

अन्यनायिकानाम्ना संयोध्यानुयन्त खण्डिता सविनयोपालम्भमाह—

अह सभाविअमग्गो सुहअ तुए जेव्व णवरँ णिव्वुहो ।

एहिँ हिअए अण्णं अण्ण वाआइ लोअस्स ॥ ३२ ॥

[अय समावितमार्गः सुमग त्वयैव केवल निर्व्यूढ ।

इदानीं हृदयेऽन्यदन्यद्वाचि लोकस ॥]

अहेति । इदानीं लोकस्य हृदयेऽन्यत् वाच्यन्यत् । तव तु यदेव हृदये तदेव वाचि ।
यतो मा प्रति हृदयवाद्येनापि प्रियवचसा संवानुनीता, न त्वदमिति भावः ॥

प्रणयकुपिता काचित्पृष्ठाभिमुखमुत्त कान्तमाह—

उह्माँ णीससन्तो किँति मह परम्मुहीएँ सअण्णे ।

हिअअ पलीविअ वि अणुसएण पुट्ठि पलीवेसि ॥ ३३ ॥

[उष्णानि नि श्वसन्किमिति मम पराङ्मुख्या शयनार्थे ।

हृदय प्रदीप्याप्यनुशयेन पृष्ठ प्रदीपयसि ॥]

उह्माँ इति । शयनैकदेशे पराङ्मुख्यास्त्वक्षितामकुर्वन्त्या इति भावः । मम हृदयम-
नुशयेन सपत्नीसमुत्कर्षजनितेन प्रदीप्योष्णैर्नि श्वासैर्मम पृष्ठ किं प्रदीपयसि । तामेव
वल्लभासुपगच्छ । अलीकदाक्षिण्येन मामाश्रितान च किं खेदयसीति भावः ॥

इती कस्याधिविरहिण्या अवस्था नायक प्रत्याह—

तुह विरहे चिरआरअ तिण्णा णिवडन्तवाहमइलेण ।

रइरइसिहरधएण व मुहेण छाहि विअ ण पत्ता ॥ ३४ ॥

[तव विरहे चिरकारक तस्या निपतद्वाप्यमल्लिनेन ।

रविरथशिखरध्वजेनेव मुखेन च्छायैव न प्राप्ता ॥]

तुहेति । चिरकारक, अवधिदिवसलहनात् । छाया काप्तिरातपाभावश्च । 'छाया
सूर्यप्रभा कान्ति प्रतिबिम्बमनात्प' इत्यमरः । तदेव विरहविधुराभनुकम्पस्वेत्याशयः ॥

नववधू प्रति सतीवृत्तशिक्षायै कापि बन्धुवधूराह—

दिअरस्स असुद्धमणस्स कुल्लवहू णिअअकुड्डलिहिआइ ।

दिअइ कहेइ रामाणुल्लगसोमिस्तिचरिआइ ॥ ३५ ॥

१ 'वेअ' इति ख-ग पाठ २ 'णिव्वुहो' इति ख पाठ ३ 'एहिँ' इति ख-
पाठ ४ 'असो' इति घ पाठ ५ 'वीस' इति ख पाठ ६ 'पलीविअ विअ' इति
क पाठ, 'पलीअ वि उ' इति ख-पाठ ७ 'तिस्सा' इति क ख पाठ ८ 'कुलव-
हुआ' इति क पाठ ९ 'णिअकुड्ड' इति क ख पाठ

[देवरसाशुद्धमनसः कुलवधूर्निजकुक्ष्यलिखितानि ।

दिवसं कथयति रामानुलससौमित्रिचरितानि ॥]

दिभरस्तेति । अयमाशयः—कुलस्त्रिया रामायणवृत्तान्तं गृहभित्तौ विलिख्य तत्र विमानृजेऽपि रामे सभायेंऽनुलसमानि लक्ष्मणस्य चरित्राणि कथयित्वा दुष्टहृदयो देवरः प्रत्याख्येयः, न तु प्रकटम् । कुटुम्बविषटनादिभयादिति भावः ॥

सतां सलपि विनाशकारणे विनाशो न भवतीत्यसती स्वदोषप्रच्छादनार्थमाह—

चत्तरर्घरिणी पिअदंसणा अ तरुणी पडत्थपइआ अ ।

असईसैपज्जिआ दुग्गआ अ ण हु रण्हिअं सीलम् ॥ ३६ ॥

[चत्वरगृहिणी प्रियदर्शना च तरुणी प्रोषितपतिका च ।

असतीप्रैतिवेशिनी दुर्गता च न खलु खण्डितं सीलम् ॥]

चत्तरेति । चत्तरे राजमार्गे गृह यस्याः । प्रियदर्शना सुन्दरी । अस्याः कुलटायाः प्रतिवेशिनी । अत्र चत्वरगृहिणीत्वादे शीलखण्डनकारणस्य सत्त्वेऽपि तदभावाद्विशेषोक्तिरलङ्कारः—‘विशेषोक्तिरसण्डेषु कारणेषु फलावचः’ इति तद्वक्षणात् ॥

नदीतटकदम्बनिकुञ्जदत्तसंकेतेन कान्तेन विप्रलब्धा नायिका ‘तत्राहं गता, खं तु नागतः’ इति तं श्रावयन्ती सखीजनमाह—

ताल्लरभमाडलखुडिअकेसरो गिरिणईएँ पूरेण ।

दरबुडुवुडुणिबुडुमहुअरो हीरइ कलम्बो ॥ ३७ ॥

[जलावर्तभ्रमाकुलखण्डितकेसरो गिरिनद्याः पूरेण ।

दरमग्नोन्मग्ननिमग्नमधुकरो हियते कदम्बः ॥]

ताल्लरेति । ताल्लरो जलावर्त इति देशी । जलावर्तानां भ्रमो भ्रमणं तेनाकुलः । अत एव खण्डितकेसरः । अत्र भ्रष्टकेसरतया गलितमकरन्देऽपि कदम्बे भ्रमरह्वयेयमीदृशी दृढस्येहता । तव तु अस्तु तावत्प्रेम्णधिरानुबन्धः, संप्रत्येवाहं त्वया उल्लितेति सरोव उपालम्भः ॥

दूती कामुकं प्रति कस्याधित्पतिप्रताया धनायसाध्यतां प्रतिपादयन्ती आह—

अहिआअमाणिणो दुग्गअस्स छाहिँ पँअस्स रक्खन्ती ।

णिअबन्धवाणँ जूरइ घरिणी विह्वेण एत्ताणम् ॥ ३८ ॥

१. ‘घरणी’ इति क-पाठः. २. ‘सहज्जिआ’ इति क-पुस्तके, ‘सअज्जिआ’ इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. ‘सहवासिनी’ इति ग-पाठः. ४. ‘भ्रमाखण्डित’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्फुटितकेसरो’ इति घ-पाठः. ६. ‘दरमग्नमग्नोन्मग्न-’ इति ग-पुस्तके, ‘दरमग्नोन्मग्ननिमग्नमधुकरो’ इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. ‘पइअस्स’ इति क-पुस्तके, ‘पिअस्स’ इति च ग-पुस्तके पाठः.

[आभिजात्यमानिनो दुर्गतस्य छायां पत्यु रक्षन्ती ।

निजैवान्धवेभ्यः कुप्यति गृहिणी विमनेनौगच्छन्त्यः ॥]

अहिआएति । 'पत्ताणम्' इति पाठे प्राप्तेभ्य इत्यर्थः । छायां महत्त्वम् । पति-
वित्तानुदत्त्यर्थं बन्धुजनस्याप्युपहारे न बहु मन्यते । किं पुनः कामिजनस्येति भावः ॥

कामुकजनाभियोगनिरासार्थं दूती स्वाधीनपतिकायाः सुवरितमाह—

साहीणे वि पिअअमे पत्ते वि रणे ण मण्डिओ अप्पा ।

दुग्गअपउत्थवइअं सअजिअं सण्ठवन्तीए ॥ ३९ ॥

[स्वाधीनेऽपि प्रियतमे प्राप्तेऽपि क्षणे न मण्डित आत्मा ।

दुर्गतप्रोपितपतिकां प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या ॥]

साहीण इति । क्षणे मदनमहोत्सवादी प्राप्तेऽपि प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या अनुद्विमां
कुर्वन्त्या । कदाचित्कृतमण्डनं मामवलोकयेयमुद्विमा खण्डितचरित्रा स्यात् इत्याशङ्क्या
या आत्मानं न मण्डयति तस्या दूरे स्थूलखण्डनसाहस इति भावः । अथवा प्रतिवे-
शिनीस्थापनार्थमनया मण्डनं न कृतम्, न तु कामुकान्तरविरहलिङ्गयेति सपीदोप-
च्छादनार्थं सख्या वचनमिदमिति ॥

नायिकानुरागकथनेन दूती नायकमनुकूलयितुमाह—

तुम्ह वैसइ त्ति हिअअं इमेहिं दिट्ठो तुमं ति अंछीहिं ।

तुह विरहे किर्सिआइं तिए अङ्गाइं वि पिआइं ॥ ४० ॥

[तव वसतिरिति हृदयमाभ्यां दृष्टस्त्वमित्यक्षिणी ।

तव विरहे कंशितानीति तस्या अङ्गान्यपि प्रियाणि ॥]

काचित्खण्डिता बहुधा कृतञ्चलौकमनुनयन्तं नायकमाह—

सब्भावणेहभरिए रत्ते रज्जिअइ त्ति जुत्तमिणम् ।

अणहिअए उण हिअअं जं दिज्जइ तं जणो असह ॥ ४१ ॥

१. 'अभिजाति' इति ग-घ-पाठः. २. 'निजवान्धवान्निन्दति' इति ग-पाठः.
३. 'आगच्छतः' इति ग-पुस्तके, 'गच्छन्त्यः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'उत्सवे'
इति ग-पाठः. ५. 'स्थापयन्त्या' इति घ-पाठः. ६. 'वसतिरिति' इति क-पाठः.
७. 'अच्छिद्यम्' इति ख-क-पाठः. ८. 'किञ्चित्' इति क-पाठः. ९. 'कंशितानीति'
इति ग-पुस्तके, 'कृशानीति' इति घ-पुस्तके पाठः.

रहस्यमुपायं पृच्छन्ती । अनेन अस्तु तावद्विरहः, तव गमनसमय एव मुग्धाया जीवि-
तांशा सदिग्धेति ध्वनितम् ॥

वाचित्स्वाधीनभर्तृका पत्युरनन्यपरताकथनेनान्यकाभिन्यवकाशनिरासाय स्वसौमा-
ग्यमाह—

अण्णमहिलाप्रसङ्गं दे देवं करेसु अम्ह दइअस्स ।

पुरिसा एकन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति ॥ ४८ ॥

[अन्यमहिलाप्रसङ्गं हे देव कुर्वन्माकं दधितस ।

पुरुषा एकान्तरसा न खलु दोषगुणौ विजानन्ति ॥]

अण्णेति । देशब्दः सानुनयसंबोधने । हे देव, अस्माकं दधितस्यान्यमहिलाप्रसङ्गं
कुरु । खलु यस्मात् पुरुषा एकान्तरसा गुणदोषौ न जानन्ति । अन्तश्चन्दः स्वरूपवाची ।
एकरसा इत्यर्थः । यद्वा पत्युरन्यासङ्गप्रार्थनेनावसरमिच्छन्त्या प्रच्छन्नरताभिलाषो जारं
प्रति सूच्यते ॥

स्वयं दूती पथिकमाह—

थोअं पि ण पीसरई मज्झण्णे उइ सरीरतल्लुका ।

आअवभएण छाही वि पहिअ ता किं ण बीसमसि ॥ ४९ ॥

[स्तोकमपि न नि सरति मध्याह्ने पश्य शरीरतल्लीना ।

आतपभयेन छायापि पथिक तत्किं न विश्राम्यसि ॥]

थोअमिति । आतपखिन्नाः पथिका यस्यां छायायां विश्राम्यन्ति, सा अचेतना
छायाप्यातपभयेन बहिर्न निष्कामति, किं पुनश्चेतन इति । ततश्च मध्याह्ने कोऽपि
बहिर्न निर्यातीति विविक्तनिरपायमध्याह्नाभिसारमुखमनुभवाव इत्याशयः ॥

विरहोत्कण्ठिता ज्वरश्चाद्याच्छलेन चिरागतकान्तोपालम्भमाह—

सुहउच्छअं जणं दुहहं पि दूरादि अम्ह आणन्त ।

उअआरअ जर जीअं पि णेन्त ण कआवराहोऽसि ॥ ५० ॥

[मुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयन् ।

उपकारकं ज्वर जीवमपि नैयञ्ज कृतापराधोऽसि ॥]

१. 'देव्य' इति क-ख-पाठः. २. 'विजानन्ति' इति क-पाठः. ३. 'अन्यस्त्रीप्रसङ्गं'
इति ग-पाठः. ४. 'कुठ्वास्माकं' इति घ-पुस्तके, 'कुठ्वास्माद्' इति च ग-पुस्तके
पाठः. ५. 'एकरसा' इति ग-पाठः. ६. 'उव सरीरतल' इति क-पाठः. ७.
'आणेत' इति ग-पाठः. ८. 'उवभारअ' इति क-पाठः. ९. 'दूरान्मम इते' इति
ग-पाठः. १०. 'एरुअ' इति ग-पाठः.

सुहेति । सुहृउच्छअशब्दोऽस्वास्थ्यवार्ताकारके । तेन लोकभयादागतम्, न तु
 ज्ञेहादिति भावः । अस्माकं दुर्लभमपि दूरादानयन् । अत एव दुर्लभप्रियानयनादुप-
 कारकं ज्वर, जीवमपि नयन् कृतापराधोऽसि । एवं मां प्रत्यज्ञेहे त्वयि मम, मरणमेव
 श्रेयः । तच्च त्वदर्शनेपूर्वकं साधयता ज्वरेण ममोपकार एव कृतो न त्वपकार इति भावः ॥

सगिडता काचित्सुखप्रश्रयमानत कान्तं प्रति सेष्यमाह—

आमजरो मे मन्दो अह्व ण मन्दो जणस्स का तन्ती ।

सुहृउच्छअ सुहअ सुअन्धअन्ध मा अन्धिअं छिवसु ॥ ५१ ॥

[आमज्वरो मे मन्दोऽथवा न मन्दो जनस्य का चिन्ता ।

सुखपृच्छकं सुभगं सुगन्धगन्धं मा गन्धितां स्पृश ॥]

आमेति । अजीर्णोत्पन्नो ज्वर आमज्वरः । त्वयि क्रोधेन रात्रौ जागरणादिति
 भावः । आमशब्दः सेष्यानुमताविति केचित् । जनस्योदासीनस्य महुःखाददु खितस्य
 भवतः किमनेन प्रश्नेनेति भावः । हे सुखपृच्छक अस्वास्थ्यवार्ताकारक, बहुवल्लभत्वा-
 त्सुभग, प्रियाङ्गसङ्गसकान्तपरिमलत्वात्सुगन्धगन्ध, गन्धितां संजातज्वरगन्धां मां मा
 स्पृश । मदङ्गस्पर्शसंकान्तज्वरगन्धः सन् प्रेयस्याः कृतापराधो मा भूरित्याशयः ॥

रतिरभसात्कान्तमाक्षिप्यारब्धपुरुषायितां सौकुमार्यादल्पयासेनैव श्रान्तां कान्तः
 सहासमाह—

सिद्धिपिच्छलुल्लिअकेसे वेवन्तोह विणिमीलिअद्धच्छि ।

दरपुरिस्ताइरि विसुमरि जाणसु पुरिसाणं जं दुःखम् ॥ ५२ ॥

[सिद्धिपिच्छलुल्लितकेशो वेपमानोह विनिमीलितार्धाक्षि ।

ईषैत्पुरुषायिते विश्रामशीले जानीहि पुरुषाणां यदुःखम् ॥]

पूर्वं निष्कासितस्य पुनरुपाजितवैभयस्य भुजंगस्य समागमाय प्रेरयन्तीं जननीं प्रति
 वेश्याह—

पेम्मस्स विरोहिअसंधिअस्स पच्चक्खदिट्ठविल्लिअस्स ।

उअअस्स वै ताविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ॥ ५३ ॥

[प्रेम्णो विरोधितसंधितस्य प्रत्यक्षदृष्ट्यलीकस्य ।

उदकस्यैव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति ॥]

१. 'गन्धिरि' इति क-ख-पाठः. २. 'गन्धशीला' इति घ-पाठः. ३. 'दरपुर्या-
 यिते' इति ग-पुस्तके, 'दरपुर्यायितशीले' इति घ घ-पुस्तके पाठः. ४. 'विलअस्स'
 इति क पाठः. ५. 'वि' इति क-पाठः. ६. 'संहितस्य' इति ग-पाठः.

वेम्भस्सेति । प्रत्यक्षेति श्रुतेऽनुमिते च विप्रिये प्रतीकारः सम्भवति । हृष्टे तु नारत्तीति भावः । पर्युपास्यमानोऽप्यसौ नानुरक्तो भविष्यति किमिलस्थाने मां प्रेरयतीति भावः ॥ बहुशोऽनुभूतेऽयं भविष्यत्यपि भूतवत्प्रत्ययो भवतीति निदर्शयन्कथिद्वन्द्या पतिशौर्यबहुमानमाह—

वज्रपट्टणाश्चिरं पट्टणो सोऊण सिञ्जिणीघोसम् ।

पुसिआइ करिमरिणं सरिसवन्दीण पि णअणाइ ॥ ५४ ॥

[वज्रपतनातिरिक्तं पशुं श्रुत्वा सिञ्जिणीघोषम् ।

प्रोज्झितानि वद्या सहस्रवन्दीनामपि नयनानि ॥]

वज्रति । करिमरी बन्दी । अतिचमत्कारकारित्वाद्वाज्रपतनातिरिक्तम् । 'मौर्वी ज्या सिञ्जिनी गुण' इत्यमरः । आगतो मे भर्ता भवतीरपि मोचयिष्यति । तत्किमयापि खेनेति भावः ॥

वन्द्या ताताभिलाषधोरयुवा पतिशौर्याभिमानिन्यास्तस्या उच्चाहमहार्थमाह—

करिमरि अआलगजिरजलआसणिपडनपडिरवो एसो ।

पट्टणो धणुरवकट्टिरि रोमञ्च किं मुहा वहसि ॥ ५५ ॥

[बिंदि अकालगर्जनशीलचलदाशनिपतनप्रतिरव एष ।

पत्युर्धनूरवाकौट्टणशीले रोमाञ्च किं मुहा वहसि ॥]

भुजगात्तरप्ररोचनाय दुहितुः सौकुमार्यातिशयं सुरतक्षमत्वं च ह्यापयन्ती वेत्या-
माता भुजगनिदाघलेनाह—

सहइ सहइ ति तह तेण रमिआ सुरअदुव्विअद्वेण ।

पम्माअसिरीसाइ व जह से जाआई अट्ठाइ ॥ ५६ ॥

[सहते सहत इति तथा तेन रमिता सुरतदुर्विदग्धेन ।

प्रम्लानशिरीषाणीव यथासा जाता यद्भानि ॥]

सहइति । सुरतदुर्विदग्धेन सुरतावसानानभिज्ञेन ॥

नायक प्रति कस्याश्चिदतुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती द्वितीया आह—

अगणिअसेसजुआणा बालअ बोलीणलोअसज्जाआ ।

अह सा भमइ दिसामुहपसारिअच्छी तुह कएण ॥ ५७ ॥

१ 'अच्छीहि' इति ख-पाठ, 'अस्मूहि' इति च क-पाठ २ 'ज्याशब्दम्' इति ग-पाठ ३ 'सहज-दीना' इति घ-पाठ ४ 'कर्मर्यकालगर्जितजलदा' इति ग-पाठ ५ 'काठिणि' इति ग-पाठ ६ 'रमिआ' इति क-पाठ ७ 'दुव्विअद्वेण' इति क-पाठ ८ 'पम्माइअ' इति ख-पाठ ९ 'यथा तस्या' इति घ-पाठ

[अगणिताशेषयुवा वालक व्यतिक्रान्तलोकमर्यादा ।

अथ सा भ्रमति दिशामुखप्रसारिताक्षी तव कृतेन ॥]

अगणितीति । हे वालक, स्त्रीरत्नपरिहारात् स्त्रीवधपातकाचिन्तनाच्च हिताहितान-
भिज्ञ, न गणिताः शेषास्त्वदन्ये युवानो यया सा, लज्जालागात्त्यक्तलोकमर्यादा, सा पू-
र्वोक्तसीन्द्रयार्थनेकगुणा तव कृतेन त्वदर्शनेच्छया दिक्षुक्षेपु प्रसारिताक्षी सती भ्रमति ।
यादृशमीमवस्था गच्छति तावदेनामनुकम्पस्त्वेति भावः ।

बहुवल्लभस्य साध्वी काचिन्नायिका श्वभ्रूं प्रति भर्तृशौर्यं प्रकाशयन्ती असतीसपत्नी-
नामभिसारसज्जता सूचयति—

अज्ज ङ्वेअ पउत्थो उज्जाअरओ जणस्स अज्जे अ । ५८ ।

अज्जे अ हलिदापिञ्जराइं गोलाणइत्तडाइं ॥ ५८ ॥

[अद्यैव प्रोषित उज्जागरको जनस्याद्यैव ।

अद्यैव हरिद्रापिञ्जराणि गोर्दानदीतटानि ॥]

अज्जेति । मम पतिरद्यैव प्रोषितः । अर्थात्सद्गामप्रसङ्गेति लभ्यते । जनस्योज्जाग-
रोऽद्यैव । चोरादिभयात् अभिसरणाभियोगाच्चेति भावः । गोदावरीतीराण्यद्यैव हरिद्रा-
पिञ्जराणि । हरिद्रोद्धर्तिताङ्गप्रक्षालनेनासतीनामङ्गरागप्रद्वेषादिति भावः ॥

बन्धुवधू कुलवधूशिक्षार्थं सतीवृत्तमाह—

असरिसचित्ते दिअरे सुद्धमणा पिअअमे विसमसीले ।

ण कहइ कुटुम्बविहङ्गमएण तणुआअए सोहा ॥ ५९ ॥

[असदृशचित्ते देवरे शुद्धमनाः प्रियतमे विषमशीले ।

न कथयति कुटुम्बविघटनमयेन तनुकायते सुषा ॥]

असरिसेति । असदृशचित्ते दुष्टचित्ते । प्रकाश्यमानं यद्गोपावहं तद्गोप्यमिति भावः ॥
कलहान्तरितायाः सखी तत्कान्तेन तद्भावजिज्ञासार्थं पृष्टा तमाह—

चित्ताणिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइं भरिऊण ।

सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिं रुण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

१. 'अगणिताशेषयुवका' इति ग-घ-पाठः. २. 'गोलाणइअ तद्दाइं' इति क-पु-
स्तके, 'गोलाए तद्दाइं' इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. 'उज्जागरणमपि' इति ग-पाठः.
४. 'गोदावरीनया' श्लोतावि' इति ग-पुस्तके, 'गोदावर्यास्तीराणि' इति घ-पुस्तके,
'गोदायाः कूलानि' इति च ख-पुस्तके, पाठः. ५. 'शुद्धमनस्का' इति ग-पाठः.
६. 'चिन्ताणिइअ' इति क-पाठः.

[चित्तानीतदयितसमागमे कृतमन्युकानि स्मृत्वा ।

शून्य कैलहायमाना सखीमी रुदिता नोर्हसिता ॥]

चिन्तेति । कृतो मन्युर्येतानि कृतमन्युकानि । मन्युकारणानीत्यर्थं । सखीमी रु-
दिता शोचितेत्यर्थं । कार्येण रोदनेन स्वकारणीभूतस्य शोकस्य लक्षणात् 'रुदि' धातोर-
कर्मकत्वाद्यथाश्रुतस्यासंगते त्वदनुयानपरायास्तस्यास्तथाविध मन्मथोन्मादमचेत्य
सखीभिस्ता प्रति शोक कृत, न पुनरुपहासकारणे सत्यप्युपहास इति भावः ॥

प्रच्छन्नरताभिलाषिण नागरिक प्रति कुलजाभिसारिका सवेदगम्यमाह—

हिअअण्णएहिं समअ असमत्ताइ पि जह सुहावन्ति ।

कज्जाइ मणे ण तद्वा इअरेहिं समाविआइ पि ॥ ६१ ॥

[हृदयश्चै सममसमाप्तान्यपि यथा सुखयन्ति ।

कार्याणि मन्ये न तथा इतरै र्समापितान्यपि ॥]

द्विअण्णति । हृदयज्ञैरिहितै । इतरैरनिहितैरगूढाकारैश्च । एतेन त्वद्विधविदग्धेन
सम संकल्पसमागमोऽपि वरम्, न पुन पामरसमागम इति सूचितम् । यद्वा स्वर्ग-
पक्षे पामरताप्रकाशनेन तद्विषयको विरागो जारं प्रत्यनुगतश्च सूचितः । अधमानुरक्तौ
प्रति सखीवचनं वा ॥

कोमलाम्राङ्गुरप्रदर्शनेन घनागम सूचयती काता कान्तस्य यमनाक्षेपार्थमाह—

दरपुडिअसिप्पिसपुडणिलुकहालाहलग्गछेप्पणिहम् ।

पैकम्बट्टिविणिग्गअकोमलमम्बङ्गुर उअह ॥ ६२ ॥

[ईषत्स्फुटितशुक्तिसपुटर्निलीनहालाहलाम्पुच्छनिभम् ।

पद्माग्रास्थिविनिर्गतकोमलाम्राङ्गुर पदयत ॥]

दरेति । हालाहलो 'बेङ्गनिया' इति प्रसिद्धो जन्तुविशेषः । 'हालाहलो मद्गतसर्वे'
इति मेदिनीकोषः । निम्नीनान्तं हालाहलविशेषणम् ॥

१ 'कृतमन्यु' संस्कृत्य' इति ग-पाठ २ 'कलहाय'ती' इति ग-पाठ

३ 'न पुनर्हसिता' इति घ-पाठ ४. 'हिअअण्णएहिं' इति क-पाठ ५. 'मु-

हावेति' इति ख-ग-पाठ. ६ 'समाप्तान्यपि' ग-घ-पाठ ७ 'पिक्कम्बट्टि' इति

क-ख-पाठ ८ 'निलस' इति ग-पाठ ९ 'भोटनीति' प्रसिद्धो जन्तु' इति

कुलबालदेव

असत्वररतप्रवृत्तये गृहस्य जनसंचारशून्यतां सूचयितुं जारं वान्यमनस्कं कर्तुं कविदाह—

उअह पडलन्तरोइण्णणिअतन्तुद्धपाअपडिलग्गाम् ।

दुल्लक्खसुत्तगुत्थेक्खउलकुसुम व मक्कडअम् ॥ ६३ ॥

[पश्यत पटलान्तरावतीर्णं निजकतन्तूर्ध्वपादप्रेतिलम् ।

दुर्लक्ष्यसूत्रमथितैक्वकुलकुसुममिव मर्कटकम् ॥]

उअहेति । पटलान्तरावतीर्णं निजकतन्तौ ऊर्ध्वपादैः प्रतिलम् मर्कटकं लतां पश्यत । ‘अथ मर्कटकं सस्यभेदे वानरलतयो’ इति मेदिनी ॥

पुराणदेवकुलस्य निर्जनतां सूचयन्ती कुलटा जारमाह—

उअरि दरदिट्ठथैण्णुअणिलुक्कपारावआणं विरुण्हिं ।

णित्थणह जाअवेअणं सूलाहिण्ण व देवेलअम् ॥ ६४ ॥

[उपरीपट्टशङ्कुनिनीनपारावतानां विरुतैः ।

निस्तनति जातवेदनं शूलामिन्नमिव देवकुलम् ॥]

उअरीति । ईषदिति कलशस्य भग्नत्वात्किञ्चिद्वशिष्टकीटकं देवकुलं निनीनानां पारावतानां विरुतैः स्तनति । एतेन रतिसमये पारावतवतानुकारि कण्ठकूजितमयज्ञ-सिद्धम्, क्रियमाणमप्यनुपलक्ष्यत्वाद्विरुद्धमिति सूचितम् । नायकस्य दीर्घरमणार्थं चमत्कारमुत्पादयितुं शूलामिन्नमिवेत्युत्प्रेक्षणम् । तथा च कामशास्त्रम्—‘कलोलिनीका-ननकदरादौ दुःखाश्रये चार्पितचित्तवृत्तिः । मृदुनुतारम्भमभिनयैर्यं श्रयोऽपि दीर्घ-रमते रतेषु ॥’ इति ॥

‘निजमर्तुरेवाप्रियासि, तत्किं तव मया दुर्भगया’ इति निरस्यन्ती नायिकां प्रति साभिलाषं कविदाह—

जइ होसि ण तस्स पिआ अणुदिअह णीसहेहिं अङ्गेहिं ।

णवसूअपीअपेऊसमत्तर्पाडिठव किं सुवसि ॥ ६५ ॥

[यदि भवसि न तस्य प्रियानुदिवसं नि सहैरङ्गैः ।

नवसूतपीतपीयूषमत्तमहिषीवत्सेनं किं स्वपिबि ॥]

१ ‘गुच्छेक’ इति क-ख पाठ २ ‘परिलम्भ’ इति ग पाठ ३ ‘खण्णुअणि लीण’ इति क पाठ ४ ‘दिअउलम्’ इति ग पाठ ५ ‘उपरि दरदृष्टस्थानुकनिनीन’ इति ग पाठ ६ ‘दिवलकम्’ इति क-पाठ ७ ‘ता दिअह’ इति ग-पाठ ८ ‘प-ट्ठिव्य’ इति ग पाठ ९ ‘प्रिया तद्विषय’ इति ग पाठ

जईति । यदि तस्य प्रिया न भवति तर्हि निःसहैः सुरतभ्रमस्त्रिभैरजैरुपलक्षिता त्व
नवप्रसूतायाः पीतेन पीयूषेणाभिनवदुग्धेन मत्ता महिषीवत्सेव किं स्वपिपि । 'पीयूषं
सप्तदिवसावधिधीरे तथाभूते' इति मेदिनीकोषः । 'पीयूषममृते नव्यसूतधेनोः पयस्यपि'
इति तु हैमः । सभ्रमः सुरतजागर एव ते सौभाग्यं व्यनक्तीति भावः । पादौ महिष-
पोत इति देशी ॥

जनापवादमोता बन्धुवधू प्रोषितपतिकं कुलशामाह—

हेमन्तिआसु अइदीहरासु राईसु तं सि अविणिहा ।

चिरअरपउत्थवइए ण सुन्दरं जं दिआ सुवसि ॥ ६६ ॥

[हैमन्तिकास्त्रैतिदीर्घासु रात्रिषु त्वमस्त्रिनिद्रा ।

चिरतरप्रोषितपतिके न सुन्दरं यदिवा स्वपिपि ॥]

हेमन्तीति । अविनिदेति जागरहेतोः प्रियसंभोगस्याभावाविद्राविच्छेदशून्येत्यर्थः ।
न सुन्दरम् । असतीशङ्काहेतुत्वादयुक्तमित्यर्थः ॥

कर्ममयादुल्लस्य सम पदस्थाने तथा पदं ग्यस्तं न त्वनुरागादिति प्रिया निह्वानं
काचिदाह—

जइ चिकरत्तभउत्थअपअमिणमलसाइ तुह पए दिण्णम् ।

ता सुहअ कण्टइज्जन्तमङ्गमेहिं किणो वहसि ॥ ६७ ॥

[यदि कर्मभयोत्प्लुतपदमिदमलसया तव पदे दत्तम् ।

तत्सुभग कण्टकितमङ्गमिदानीं किमिति वहसि ॥]

जईति । अलसया मन्दगमनया । यदीयं तव प्रिया न भवति तदा कथमनया तव
पदस्थाने स्पृष्टे शोमाश्वस्ते जात इति भावः ॥

अत्यन्तमनुरक्तस्यापि दानविमुखस्य भुजगस्योपालम्भार्थं दुहितृशिक्षार्थं च वे-
शयामाताह—

पत्तो छिणो ण सोहइ अइप्पहाअम्मि पुणिमाअन्दो ।

अन्त विरसो अ कामो असंपआणो अ परिओसो ॥ ६८ ॥

[प्राप्तः क्षणो न शोभते अतिप्रभात इव पूर्णिमाचन्द्रः ।

अन्तविरस इव कामो असंप्रदानश्च परितोषः ॥]

१. 'अइदीहरासु' इति क-पाठः. २. 'हैमनीषु' इति ग पाठः. ३. 'अतिदीर्घ-
तरासु' इति क ख-पाठः. ४. 'त्वमसि विनिद्रा' इति ग-पाठः. ५. 'भयद्रुत' इति
घ-पाठः. ६. 'कण्टकायमानं' इति घ-पाठः. ७. 'किं वहसि' इति घ पाठः.
८. 'खणो' इति ख-पाठः. ९. 'प्राप्त उत्सवो' इति ग पाठः. १०. 'प्रभाते पूर्णिमा'
इति ग पाठः. ११. 'अन्तविरसश्च' इति ग-पाठः.

पत्तो इति । प्राप्तोऽतिक्रान्त क्षण उत्सवो न शोभते । अत्र दृष्टात — अतिप्रभाते पूर्णिमाचन्द्र इव । सप्रदानरहितश्च परितोषो न शोभते । अत्र दृष्टात — अन्तविरस काम इव । एव च 'अङ्गणहाअव्व पुण्णिमाअदो । अन्तविरसोअव्व कामो इत्येव युक्त पाठ ॥

विज्ञा उपक्रम एव भद्र विरुद्ध च जानतीति दर्शयन्निदाह—

पाणिग्गहणे विवअ पव्वइँएँ णाअ सहीहिँ सोहग्गम् ।

पसुवइणा वासुइकङ्कणम्मि ओसारिए दूरम् ॥ ६९ ॥

[पाणिग्रहण एव पार्वत्या ज्ञात सखीभिः सौभाग्यम् ।

पशुपतिना वासुकिकङ्कणेऽपसारिते दूरम् ॥]

पाणीति । पार्वत्या भयपरिहारार्थं वासुकेरपसारणं दृष्ट्वा तस्यामनुरागातिशयरूपं सौभाग्यं जातमिति भावः ॥

नवमेघोदयदर्शनाद्गोष्मात्तस्यावधेर्लङ्घनं भवा दधितस्यान्ववनिताप्रसक्तिं सभाव्योद्दिष्टाया प्रोषितपतिभाया समाश्वासनार्थं सखी आह—

गिन्हे दवग्गिमसिमइलिआई दीसन्ति विज्झसिहराइ ।

आसमु पउत्थवइए ण होन्ति णवपाउसव्वाइ ॥ ७० ॥

[श्रीभे दवाग्निमषीमलितानि दृश्यन्ते विध्यशिखराणि ।

आश्वसिहि प्रोषितपतिके न भयति नवप्रावृडभाणि ॥]

कापि प्रथमसंगमेऽनुरागातिशयं दर्शयन्त बहुवचनं वातमादिमध्यावसानेष्वेकैकप्रणयानुवृत्त्यर्थमाह—

जेत्तिअमेत्त तीरई णिवोहुं देसु तेत्तिअ पणअम् ।

ण अणो विणिअत्तपसाअहुँकखसहणकरमो सव्वो ॥ ७१ ॥

[यावन्मात्रं शक्यते निर्वाहुं देहि तैरितं प्रणयम् ।

न जनो विनिवृत्तप्रसाददुःखसहनक्षयं सर्वं ॥]

जेत्तिएति । विनिवृत्तो यः प्रसादं प्रणयस्तत्र जातं यदु यत्तत्सहनक्षयं इत्यर्थः । एताननुभूतप्रणयस्तण्डना त्वदनुरक्ताह त्वया प्रणयस्तण्डने कृते न जीवामीति सूचितम् ॥

१ 'पाण' इति ख पाठ २ 'दु स' इति ग पाठ ३ 'निर्वाहयितुं ददस्व' इति ग पाठ ४ 'तावन्मात्र' इति घ पाठ

‘प्रिये, निमेवमद्यापि प्रणयवैमुह्यं तव’ इति प्रियेणोक्ता मानिनी तस्याः स्थिरभ्रेह-
तामात्मनश्चानुरागमाविष्कुर्वन्ती तमाह—

यहुवल्लहस्स जा होइ बल्ला कइ वि पञ्चदिअहाइ ।

सा किं छट्ठं मग्गइ कत्तो मिट्ठं अ वैहुअं अ ॥ ७२ ॥

[यहुवल्लभस्य या भवति बल्लमा कथमपि पञ्च दिवसानि ।

सा किं पष्ठं मृगयते कुतो मृष्टं च बहुकं च ॥]

यहु इति । बल्लपो बल्लभा यस्य स बहुवल्लभस्तस्य या बल्लभा भवति सा कथञ्चित्पञ्च-
दिवसानि मृगयते । सा विदितकान्ताभिप्राया पष्ठं दिवसं किं मृगयते । नैव मृगयत
इत्यर्थः । कुतो न मृगयत इत्याशङ्क्याह—कुतो मृष्टं च बहुकं चेति । सुवृत्तातिशयल-
भ्यमेतत् कुतो मे मन्दभाग्याया इत्याशयः । ‘वा तु क्लीबे दिवसवासरी’ इत्यमरः । यद्वा
अभिमतप्रियस्य सदा संभोगालाभात्स्वयमाना नायिका बोधयन्त्याः सख्या इयमु-
क्तिरिति ध्येयम् ॥

कापि पलावन्ययोपावकाशनिरासार्थं स्वसौभाग्यमात्मनश्च पलावनुरागमाह—

जं जं सो णिज्झाअइ अइओआसं महं अणिमिसच्छो ।

पच्छाएमि अ तं तं इच्छामि अ तेण दीसन्तम् ॥ ७३ ॥

[यद्यत्स निर्व्यायत्यङ्गावकाशं ममानिमिषाक्षः ।

प्रच्छादयामि च तं तमिच्छामि च तेन दृश्यमानम् ॥]

ज जमिति । निर्व्यायति पश्यति ॥

वल्लहान्तरितायाः सखी तत्कान्तमनुनयाय प्रोत्साहयितुमाह—

दिढमण्णुदूमिआएँ वि गहिओ दइअम्मि पेच्छह इमाए ।

ओसरइ वालुआमुट्ठि उँव्व माणो सुरसुरन्तो ॥ ७४ ॥

[दृढमन्युदूनयोपि गृहीतो दयिते पश्यतानया ।

अपसरति वालुकामुष्टिरिव मानः सुरसुरयमाणः ॥]

दिदेति । दृढमन्युदूनयाप्यनया दयितया दयिते गृहीतो मानः सुरसुरयमाणो वालु-
कामुष्टिरिवापसरतीत्यन्वयः ॥

१. ‘मग्गइ छट्ठ’ इति ग-पाठः. २. ‘यहुल’ इति ख-पाठः. ३. ‘मार्गयति’ इति
ग-पाठः. ४. ‘मिष्ट’ इति क ख-पाठः. ५. ‘अज्जं आसम्मि मह’ इति ग-पाठ. ६. ‘अह
पार्थे मम’ इति ग-पाठः. ७. ‘दुम्मिआए’ इति ग-पुस्तके, ‘दूणआइ’ इति च ख-पु-
स्तके पाठः. ८. ‘इव्व’ इति ग-पुस्तके, ‘ओव्व’ इति च ख-पुस्तके पाठः. ९. ‘दुमेन-
स्कया’ इति ग-पाठः. १०. ‘प्रेक्षस्व’ इति ग-पुस्तके, ‘प्रेक्षाम्’ इति च घ-पुस्तके पाठः.

सुरतासक्का काचिचिरमणार्थं कान्तमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअ पोम्मराअमरगअसंवलिआ ण्हअल्लोओ ओअरइ ।

ण्हंसिरिकण्ठव्वट्ठ व्व कण्ठिआ कीररिञ्छोली ॥ ७५ ॥

[पश्य पद्मरागमरकतसजलिता नभस्तलादवतरति ।

* नभःश्रीकण्ठम्रेष्व कण्ठिका कीरपङ्क्तिः ॥]

एति । कीरपङ्क्तिर्नभस्तलादवतरतीति सवन्धः । नभः प्रियः कण्ठाद्गुहा कण्ठिके-
वेत्युत्प्रेक्षा । कण्ठिका 'कण्ठा' इति ख्याता आभरणविशेषः । पद्मरागैर्मरकतैश्च सवलित-
तेति कण्ठिकाविशेषणम् । शुक्लानां हरितवर्णत्वान्मरकतसाम्यम्, तत्तुण्डानां च लोहित-
त्वात्पद्मरागसाम्यं द्रष्टव्यम् ॥

काचि विदितदुश्चरितेन पत्या दुर्गस्थानाभिहृद्वा आग्रहिता दूतीमन्यापदेशेनाह—

ण वि तह विअसवासो दोरँगच्चं मह जणेइ संतावम् ।

आसंसिअत्यविमणो जह पणइजणो णिअत्तन्तो ॥ ७६ ॥

[नापि तथा विदेशवासो दौर्गत्यं मम जनयति संतापम् ।

आशंसितार्थविमनो यथा प्रणयिजनो निवर्तमानः ॥]

णवीति । विदेशे कुप्राप्ते बन्धनस्थाने च वासोऽवस्थानम्, दौर्गत्यं दारिद्र्यं गतिनिरो-
धश्च मम तथा संतापनं जनयति यथा आशंसिते आशयेत्युक्ते अर्थे धने प्रियसङ्गमेव
विमना निष्प्रत्याशा सन्निवर्तमानः प्रणयिजनः सप्रथमो बन्धुजनः कान्तप्रहितदूतीजनश्च ।
इदानीन्नाभिसर्तुं समयस्तेन निवर्तस्वेति जार प्रत्युक्तिर्वा ॥

पथिकच्छलेनालिन्दकोपितस्य जारस्य रताभिलाषं सूचयन्ती दूती कुलटामाह—

खन्धग्गिणा वणेसुं तणेहिं गामम्मि रक्खिअओ पहिओ ।

णअरवसिओ णँडिज्जइ साणुसएण व्व सीएण ॥ ७७ ॥

[स्कन्धाग्निना वनेषु तृणैर्ग्रामे रक्षितः पथिकः ।

नगरोपितः खेद्यते सानुशयेनेव शीतेन ॥]

खन्धेति । स्कन्धाग्निना वृहत्काष्ठाग्निना । 'स्कन्धाग्निः स्थूलकाष्ठाग्निः' इति हारावली ।
खेद्यते इत्यर्थे णडिज्जइ इति देशो । अस्या शिशिरनिशावामनन्यगतिकस्यास्य पथिवरा-
कस्य स्वमेव शरणमिति भावः । यद्वा नगरे तृणकाष्ठादेर्दुर्लभत्वात्नगरिकाणां च निर्द-

१. 'ण्हअल्लाहि' इति घ-पुस्तके, 'ण्हअल्लाउ' इति च ग-पुस्तके पाठः. २. 'ओस-
रइ' इति क-पाठः. ३. 'विदेस' इति क-पाठः. ४. 'दोगच्च व्व' इति ग-पाठः. ५. 'वि-
सुहो' इति क-ख-पाठः. ६. 'दौर्गत्यं वा' इति ग-पाठः. ७. 'णणिज्जइ' इति ग-पाठः.
८. 'न नीयते' इति ग-पुस्तके, 'न खेद्यते' इति च घ-पुस्तके पाठः.

यत्वाच्छीतभीतस्य तव मत्सनिधौ स्वाप एव शरणमिति स्वयदृष्ट्या पथिकं प्रति स्वाश-
याविष्करणमेतत् ॥

नागरिक कामिन्यन्तरप्रलोभनार्थमात्मनो विदग्धकामुकता दृढब्रहेदता च प्रकाश-
यन्माह—

भरिमो से गहिआहरधुअसीसर्पहोलिरालआउलिअम् ।

वअण परिमलतरलिअभमरालिपइण्णकमल व ॥ ७८ ॥

[सरामस्तस्या गृहीताधरधुतशीर्षेधूर्णनशीलालकाकुलितम् ।

वदन परिमलतरलितभ्रमरालिप्रकीर्णकमलमिव ॥]

भरिमो इति । दशनक्षतार्थं गृहीतेऽधरे ध्रुते शीर्षे प्रधूर्णनशीलैरलकैराकुलित परिमलेन
तरलिता इतस्ततो भ्रमती या भ्रमरणामालि पङ्क्तिस्तया प्रकीर्णं व्याप्त कमलमिव स्थित
तस्या वदन सराम इति संबन्धः ॥

सहचरप्रलोभनार्थं विट कस्याचित्सौभाग्यवर्तुचक विज्वोकमाह—

हल्लफलहाणपसाहिआणें छणवासरे सवत्तीणम् ।

अज्जायें मज्जणाणाअरेण कहिअ व सोहग्गम् ॥ ७९ ॥

[उत्साहतरलत्नस्नानप्रसाधिताना क्षणवासरे सपत्नीनाम् ।

आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥]

इति । हल्लफलमुत्साहतरलत्वम् । तेन स्नानप्रसाधिताना क्षणवासरे उत्सवदिवसे
सपत्नीना मध्ये आर्यया धेष्टयुवला मज्जनानादरेण स्नानावश्या सौभाग्यं कथितमिव ।
विज्वोकाख्येनालकारेण सौभाग्यप्रकटनादिति भावः । तल्लक्षणं च साहित्यदर्पणे—
'विज्वोकरवतिसर्वण वस्तुनीष्टेऽप्यनादर' इति । हल्लफलशब्दः कदुष्णजलवाचक इति
केचित् । पागन्तरे तु मार्जनं प्रसाधनं तत्रानादरेणावश्येति व्याख्येयम् ॥

कांचिद्विरादिना स्नानीयद्रव्येण कृतस्नाना केशसमार्जनेन प्रकटितकुचबाहुमूर्ध्ना कम-
नीयदर्शनामुद्दिश्य कथितस्तद्विमाह—

हाणहलिइअभरिअन्तराई जालाई जालवलअस्स ।

सोहन्ति किलिअअकण्ठएण क काहिसी वअत्यम् ॥ ८० ॥

१ 'पहुण्णआलआ' इति फ पाठ २ 'अस्या' इति ग पाठ ३ 'धूत' इति घ.
पाठ ४ 'प्रधूर्णमान' इति ग पाठ ५ 'अज्जाइ' इति फ ख पाठ ६ 'विजिदुण्णमु-
ग्गिचिक्कणजल्लान' इति ग पुस्तके, 'हारिदजल्लान' इति च घ पुस्तके पाठ ७
'उत्सववासरे' इति ग पाठ ८ 'इश्वरमुतया' इति ग पाठ 'हल्लफलशब्दः कोष्णयिक्क-
णमुग्गिजले, अज्जाशब्दश्च देशी इश्वरमुतायां वर्तते' इति कुलबालदेवव्याख्यानम् ९
'मज्जनानादरेण मार्जनानादरेण वा' इति ख पाठ १०. 'किलिअअ' इति फ पाठ—

[उदरपतिताभ्यां दुःखं स्वीयत उन्नताभ्यां भूत्वा ।

इति चित्तयतोर्मन्ये स्तनयो कृष्ण मुख जातम् ॥]

येदृति । लाकेऽपि यः प्रथमः प्रणयमनुमानादिना उन्नतो भूत्वा दैवशादुन्नतः सन्
दरभरणव्यग्रो भवति तस्यापि चित्तया मुखं दयान् भवतीति ध्वनिः ॥

अभिधोऽन्तर्भावयोगः प्राद्वयितुं दृष्टी नायकस्यानुसारातिशयमाह—

सो ह्युज्ज्वल कण मुन्दरि तद् छीणो मुमहिलो हलिअउत्तो ।

जह् से मच्छरिणीएँ वि दोष जाआएँ पडिवण्णम् ॥ ८४ ॥

[स तैव कृते मुन्दरि तथा क्षीणः मुमहिलो हलिक्पुत्र ।

यया तस्य मत्सरिण्यापि दूत्य जायया प्रतिपन्नम् ॥]

सो इति । मुमहिल इत्यनेन रूपवद्भार्योऽपि त्वप्यनुसृत इति नायिकाकृतित्वेन्यते ।
हलिक्पुत्र इत्यनेनानेन धनिकत्वं च प्रवृत्त्यङ्गं दर्शयति । मत्सरिण्यापि दूत्य प्रतिपन्न
पतिमरणभयादिति भावः । तद्यदि नानुमन्यसे तदा पुण्यवधपातकं ते भविष्यती
त्याशयः ॥

कलहात्तरिता विरामते कांते सखहोपालम्भमाह—

दक्खिण्णेण वि एत्तो सुहज सुहावेसि अम्ह हिअआइ ।

णिक्कइअवेण जाण गओ सि का णिब्बुदी ताणम् ॥ ८५ ॥

[दाक्षिण्येनाप्यागच्छ सुमगं सुखयस्समाक हृदयानि ।

निष्कैतवेन यासा गतोऽसि का निर्धृतिस्तासाम् ॥]

दक्षिण्येणेति । यासा समीपमिति शेषः ॥

पतिं प्रत्यन्वयोपायकाग्निरासार्यं साधोऽनभतृका ताडितस्यापि प्रियस्योपचाराति
शयः प्रथयतीत्यर्थमाह—

एकं पहरुव्विण्ण हत्थं सुहमारुएण वीअन्तो ।

सो वि हसन्तीएँ मए गद्धिओ वीएण कण्ठम्मि ॥ ८६ ॥

[एकं प्रहारोद्धिभ हस्तं सुखमारुतेन वीजयन् ।

सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ॥]

एकमिति । प्रहारोद्धिभमेकं मदीयं हस्तं सुखमारुतेन वीजयन् मयापि द्वितीयेन
हस्तन कण्ठे गृहीत इति सवचः ॥

१ 'आस्यते उन्नतेर्भूत्वा' इति घ-याट २ 'तुह कण्ठ' इति ना पाठः ३ 'क्षीणो'
इति क पुस्तके, 'क्षिणो' इति च ख पुस्तके पाठः ४ 'तव कृतेन' इति ग-याट
५ 'प्रहारपात' इति घ-याट

केलिकलहनिष्कान्तां कान्तानुगम्यमाना नायिकां निवर्तयितुं तत्सखी आह—

अवलम्बितमाणापरम्मुहूर्ते एतस्स माणिणि पिअस्स ।

पुट्टपुल्लङ्गमो तुह कहेइ संमुहट्ठिअं हिअअम् ॥ ८७ ॥

[अवलम्बितमानपराङ्मुख्या आगच्छतो मानिनि प्रियस ।

• पृष्ठपुल्लकोद्गमस्तथ कथयति संमुखस्थितं हृदयम् ॥]

अथेति । अवलम्बितेन मानेन पराङ्मुखा. न तु पारमार्थिकेनेति भावः । तत्र पृ-
ष्ठपुल्लकोद्गमः समुत्थितं हृदयमागच्छते प्रियाय कथयतीति सङ्घः । तदलीकरोपमि-
मं रज्ज्वेत्ताशयः ॥

दीर्घोद्भटरोपा मानिनीं शिक्षयितुं सखी मानिन्यन्तरालुतिमाह—

जाणइ जाणावेउं अणुणअविह्विअमाणपरिसेसम् ।

अैरिक्कम्मि वि विणआवलम्भणं सच्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥

[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविद्रावितमानपरिशेषम् ।

विर्जनेऽपि विनयावलम्बनं सैव कुर्वती ॥]

जाणइति । विजनेऽपि एकान्तेऽपि रतिसमये इति यावत् । विनयावलम्बनं कटा-
क्षभुजप्रक्षेपायकरणात् धार्ष्ट्यपरिहारं कुर्वती सैव अनुनयेन विद्रावितस्य दूरीकृतस्य
मानस्य परिशेषमवशेषं ज्ञापयितुं जानाति । नान्वेत्यर्थः । मानिनी मानावस्थायामपि
प्रियमेवानुरतते न तु स्वमिव पारभवतीति भावः ॥

एकस्यामेवानुरक्तं बहुबलमं नायकमुद्दिश्य कापि कृष्णव्याजेनाह—

मुहमारुण तं कहु गोरअं राहिआए अवणेन्तो ।

एताणं बह्वीणं अण्णाणं वि गोरअं हरसि ॥ ८९ ॥

[मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन् ।

एतासां बह्वीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥]

मुहेति । हे कृष्ण, त्वं मुखमारुतेन राधिकाया गोरजश्चरजोऽपनयन् । चक्षु-
षिष्टरजोऽपनयनच्छलेन चुम्बभित्त्यर्थः । एतासां पुरोवर्तिनीनामन्यासामपि बह्वीना

१. 'पुट्टि' इति ख-पाठः. २. 'उगगो' इति क-पाठः. ३. 'समुहट्ठिअ' इति
क-पुस्तके, 'समुहट्ठिअ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ४. 'विह्विअ' इति क-पाठः.
५. 'धीरेकामे वि' इति ख-पुस्तके, 'पइ रिक्कम्मिअ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ६. 'अ-
तिरिक्कमेय' इति ग-पाठः. 'पइरिक्कम्मिअ' इति ख-पाठः. ७. 'सत्त' इति
ख-पाठः. ८. 'एतासां' इति ख-पाठः. ९. 'राधाया' इति ग-पाठः.

गौरव हरति । सौभाग्यगर्वभण्डनादिति भावः । यद्वा गौरवं गौरतां हरति । अपमानेन कृष्णीकरणादिति भावः ॥

खण्डिता बहुशः कृतापराधं क्षमस्वेति वदन्तं कान्तमाह—

किं दाव कआ अहवा करेसि कैरिस्सि मुहअ एत्ताहे ।

अवराहणँ अलज्जिर सौहसु कअए रमिज्जन्तु ॥ ९० ॥

[किं तावत्कृता अथवा करोषि कैरिष्यसि सुभगेदानीम् ।

अपराधानोमलज्जारील कथय कतरे क्षम्यन्ताम् ॥]

प्रिमिति । ये पूर्वं कृता यानिदानीं करोषि करिष्यसि वा एतेषां भूतवर्तमानभविष्यतां मध्ये कतरे अपराधाः क्षम्यन्ताम् । न केऽपि क्षन्तु क्षमयन्त इति निषेधमुखेन के वा न सोडास्ववापराधा इति ध्वनितम् ॥

दूती दुर्विदग्धं नायकं शिक्षयितुमाह—

णूमेन्ति जे पहुत्तं कुविअं दासा व्व जे पसाअन्ति ।

ते व्विअ महिलाणँ पिआ सेसा सामि व्विअ अराजा ॥ ९१ ॥

[गोषायन्ति ये प्रभुत्वं कुपितां दासा इव ये प्रसादयन्ति ।

त एव महिलानां प्रियाः शेषाः स्वामिनं एव वराकाः ॥]

णूमेन्तीति । ये स्वकीयं प्रभुत्वं कान्तालियये गोषायन्ति न प्रकटयन्ति । दण्डादिकं न प्रवृजत इत्यर्थः । ये च कुपितां नायिकामनुनयपूर्वकं प्रसादयन्ति त एव महिलानां प्रिया बलभाः । शेषाः ततोऽन्ये दण्डप्रयोक्तारोऽनुनयपरास्तुत्याश्च महिलानां स्वामिन एव । न तु बलभा इत्यर्थः । वराकाः प्रेमवत्तवाप्राप्त्या शोच्या इत्यर्थः ॥

पूर्वमादरेण प्रवृत्त पश्चाद्भेदघातासु दासीन नायकमुपालब्धुं दूती भ्रमरापदेशेनाह—

तइआ कअग्घ महअर ण रमसि अण्णासु पुंफ्फजाईसु ।

यद्धफलमारगुईं मालईं एहिं परिअसि ॥ ९२ ॥

[तेऽहं कृतार्थं मयुक्तर न रमसेऽन्यासु पुष्पजातिषु ।

यद्धफलमारगुणीं मालनीमिदानीं परित्यजति ॥]

१. 'कैरिस्सि' इति क-ग-पाठः. २. 'कहेसु' इति ग-पाठः. ३. 'कैरिष्यसि वा सुभग एतापराधे' इति ग-पाठः. ४. 'नितेअ' इति ग-पुनरुक्ते, 'मलज्जारीलायां स कतरे' इति च घ-पुनरुक्ते पाठः. ५. 'न कुवेन्ति' इति ग-पाठः. ६. 'पहुत्तं' इति ख-पाठः. ७. 'दागप' इति ख-ग-पाठः. ८. 'न कुवेन्ति' इति ग घ-पाठः. ९. 'दागपद' इति ग-पाठः. १०. 'पुष्पजादु' इति ग-पाठः. ११. 'तदा इत्तम' इति ग-पुनरुक्ते, 'तया कृतार्थ' इति च घ-पुनरुक्ते पाठः.

तद्वा इति । कृतोऽर्घः पूजाविधियेन । कृतादरेति यावत् । 'मूत्ये पूजाविधावर्घे' इत्यमरः । 'किंभय' इति पाठे कृतप्रेत्यर्थः । वक्ष्येन कलभारेण श्रुताभिलेखनेन लताया मकरन्दराहिलं नायिकायाश्च विपरीतरताक्षमस्य व्यज्यते । तेन प्रथमं तथा चाटुसत-प्रपञ्चितप्रणयस्य तवेद स्वार्थपरतामात्रमनुचितमित्युपालम्भो व्यक्तः । संप्रति नोपभोगयोग्येति जारं प्रति दूत्या उत्किरिति कथितम् ॥

नागरिकानुरोधेन प्रतिपन्नदूतीभावया मातुलान्या कथितसौन्दर्ये तं प्रत्यनुरक्ता नायिका तामाह—

अविभ्रह्मपेक्षणिज्जेण तत्करणं मामि तेण दिट्ठेण ।

सिविणअपीएण व पाणिएण तह विअ ण फिट्ठा ॥ ९३ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीयेन तत्क्षणं मातुलानि तेन दृष्टेन ।

स्वप्रपीतेनेव पानीयेन तृष्णैव नै भ्रष्टा ॥]

अवीति । अथ वा तत्रैव स्थितं जारं प्रत्यन्यापदेशेन त्वदर्शनाभिलाषो मम न गत इति व्यज्यते ॥

संकेतस्थानान्तरानुसरणाय जारं प्रति प्रथमसंकेतभङ्गं धावयन्ती कुलटा मुजनप्रशं-साछलेनाह—

सुअणो जं देसमलंकरेइ सं विअ करेइ पवसन्तो ।

गामासण्णुम्मूलिअमहावड्ढाणसारिच्छम् ॥ ९४ ॥

[मुजनो यं देशमलंकरोति तमेव करोति भवसन् ।

ग्रामासन्नोन्मूलितमहानटस्थानसंदक्षम् ॥]

सुअणो इति । मुजनो यं देशं निवासेनालंकरोति तमेव देशं प्रवसन्तान् ग्रामासन्न उन्मूलितो यो महावटस्तत्स्थानसदृशं करोतीत्यर्थः । यथा प्रोषितमुजनो देशो रक्षोवृत्ति-विधामाद्यभावाद्विदग्धान्दु खयति तथा उन्मूलितवटस्थानमपि दु खयतीत्यर्थः ॥

स्वर्तव्योऽहमिति गगनसमये वदन्तं भविष्यत्पथिकं प्रति आह—

सो णाम संभरिज्जइ पच्चमसिओ जो खणं पि हिअआहि ।

संभरिअठवं च कअं गअं च पेम्मं गिरालम्बम् ॥ ९५ ॥

[स नाम संस्रियते प्रपन्नो यः क्षणमपि हृदयात् ।

संस्मर्य्यं च कृतं गतं च प्रेम निरालम्बम् ॥]

१. 'पेछणिज्जेण' इति ख ग-पाठः. २. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'अनुलितेन' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'नापगता' इति ग घ-पाठः. ४. 'मुजनो' इति क-पाठः. ५. 'सदृशम्' इति ग घ-पाठः. ६. 'खणम्मि हिअआहि' इति ग-पाठः. ७. 'संस्मरणीयं च' इति ग-पुस्तके, 'संस्मर्य्यं च कृतं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

तो इति । प्रेम यदैव स्मृतं व्यमर्शोत्प्रियस्मरणाई वृत्त तदैव निरालम्ब सद्रतम् । नि
राश्रयत्वानश्रमिति भाव ॥

दूती मन्दब्रेह विरलदर्शन नायक नायिकानुरागकथनेनानुकूलयितुमाह—

पास व सा कपोले अज्ज चि तुह दन्तमण्डल वाला ।

उन्निमण्णपुलअवद्वेढपरिगअं रक्खइ वराई ॥ ९६ ॥

[न्यासमित्र सा कपोलेऽद्यापि तव दन्तमण्डल वाला ।

उन्निमण्णपुलकवृत्तिवेष्टपरिगत रक्षति वराकी ॥]

पासमिति । बाधा प्रथम त्वत्कृतशूलसङ्घना सा वराकी उन्निमण्णपुलकवृत्तिमण्ड-
लेन परिगत सर्वतो वेष्टित तव दन्तमण्डल मण्डलाकार दन्तक्षत न्यासनिक्षेपामवा-
द्यापि रक्षति । शटे त्वयि तस्यास्त्रादशोऽनुरागो न युक्त इति वराकीपदेन ध्वन्यते ।
तदेवमनुरक्तमनुरुम्पाद्दामनुवतस्तेति भाव ॥

कार्यगौरवग्रहितावधिले बह्वभस्तत्समाप्त्यनन्तरमेवागमिष्यतीत्याश्वासयन्ती मातु-
लानी प्रोदितभर्तृका सनिर्वेद सामूय चाह—

दिट्ठा चूआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणिलो सहिओ ।

क्कजाँइ ठिवअ गरुआँ यामि फो वल्लहो कस्स ॥ ९७ ॥

[दृष्टाश्चेता आघ्राता सुरा दक्षिणानिल सोढ ।

कार्याण्येव गुरुकाणि मातुलानि को वल्लभ कस् ॥]

दिट्ठेति । मन्मथोन्मादहेतव आघ्राता सुरा दृष्टा । वसन्ते घ्रातेन सह पानकेटिशी
तनार्य परिष्कृताया सुराया गन्धोऽनुभूत । मलयानिल सोढ । अत कार्याण्येव
गुरुकाणि । दु रीकभागिन्या मम जीवितस्य एतान्येव महान्ति प्रयोजनानि । एतदनु-
भवाधमेव हतजीवित न त्यजामि । तथा च क कस्य वग्भ । येनाद्यापि तद्विरहे
जीवामीत्यात्मान प्रति निर्वेदो व्यज्यते । यद्वा कार्याण्येव गुरुकाणीति युवत्यन्तरसमा-
गम सूचयत्या स्वयद्गुणा उक्तिरिति कथितम् । कार्याण्येव तस्य बहुमतानि कथमन्यथा
वसन्तेऽपि नागत इति भाव । किं च बाह्यमपि कार्यनिबन्धन न तु सभावगिद्धमि-
त्यभिप्रेत्याह—को वल्लभ कस्येति । तथैव सनिहितया तस्य प्रयोजन न तु व्यवहितया
मयेति वग्भ प्रत्यसूया व्यज्यते । नायकान्तरविमोहनाय स्वनायके वराग्य सूचयत्या
स्वयद्गुणा उक्तिरित्यमिति कथितम् ॥

१ 'वेष्टन' इति क-ख पाठः. २ 'सूआ' इति ग-पाठ ३ 'नूता' इति

घ पाठः. ४ 'मणिनि' इति ग-गुप्तके, 'मातुलि' इति च घ-गुप्तके पठ

सदा सनिहितपतिके न त्वमभिज्ञासि प्रवासगतप्रियप्रेमनिर्भरसुरतविलसितानामिति
सहयोक्ता स्वाधीनभर्तृका तामाह—

रमिऊण पअं पि गओ जाहे उँवऊहिउं पडिणिउत्तो ।

अह अं पैउत्थपइआ व्व तक्कणं सो पचासि व्व ॥ ९८ ॥

• [रन्त्वा पदमपि गतो यदोर्षगूहितु प्रीतिनिवृत्त ।

अह प्रोषितपतिकेन तत्क्षणं स प्रयासीव ॥]

रमिऊणेति । मान वत्स्वेति बोधयन्तीं सखीं प्रति स्वस्य मानासामर्थ्यं प्रकाशयन्त्या
नायिकाया उक्तिरिति कथित ॥

क्वस्मिन्नपि यूनि जातामिलाया कुलटा निनपतिं प्रति वैराग्य व्यञ्जयन्ती तमाह—

अँविइहपेच्छणिज्जं समसुहदुःखं विइण्णसवभावम् ।

अण्णोण्णहिअल्लमां पुण्णेहिं जणो जण लहइ ॥ ९९ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीय समसुखदुःख वितीर्णसद्भावम् ।

अन्योन्यहृदयलग्न पुण्यैर्जनो जन लभते ॥]

अवीति । मम त्वकृतपुण्याया कुत एवविधप्रियप्राप्तिरिलाशय । मन्दभेदस्य पत्यु-
श्चित्तमनुकूलयितुं पतिव्रताया इयमुक्तिरिति कथित ॥

कथं दुःखप्रदेऽपि पत्यौ न विरक्तासीति भेदयतीं दूतीं प्रत्याप्यायुः पतिव्रता पत्या-
नुरागातिशयमाह—

दु ख देन्तो वि मुह जणेइ जो जस्स वड्हो होइ ।

दइअणहर्दूणिआण वि वड्हइ थेणाणें रोमच्चो ॥ १०० ॥

[दुःख दददपि मुख जनयति यो यस्य बलमो भवति ।

दयितनखर्दूनयोरपि वर्धते स्तनयो रोमाश्च ॥]

१ 'अवउहिउं पडिणिउत्तो' इति ग पाठ २ 'पडल्लवइअव्व' इति ग पाठ .
३ 'रमित्वा' इति ग पुस्तके, 'रमयित्वा' इति च घ पुस्तके पाठ ४ 'अवगूहितु' इति
ग घ पाठ ५. 'प्रीतिनिवर्तमान' इति ग पाठ ६ 'अथाह' इति ग पाठ ७ कुल
चालदेवस्त्वस्या गाथाया प्राक् 'धण्णा वधिरा अन्धा से विअ नीअत्ति मानुसे सोए ।
ण मुणन्ति पिण्णवअण राळण ऋद्धिं ण पेक्खन्ति ॥' '[धन्या वधिरा अन्धास्त एव
जीवन्ति मानुषे लोके । न भृश्वन्ति पिण्णवचनं खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥]' इत्यादि
गाथामधिका पठति । घ पुस्तकेऽप्यस्या गाथाया 'धन्या वधिरा—' इत्यादिद्वया
वर्तते ८ 'दुम्मिआण' इति ग पाठ ९ 'यणआण' इति ग पाठ १० 'दुम्वेक्क-
योरपि' इति ग पाठ . घ पुस्तके 'दुःख दददपि—' इत्यादिगाथाछाया द्वितीयशतकप्रा-
रम्भे लिखितास्ति

रसिअजणहिअअदइए वइवच्छल्पमुहसुकइणिम्मविए ।
सत्तसअम्मि समत्त पढम गाहासअ एअ ॥ १०१ ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्त प्रथम गाथाशतकमेतत् ॥]

द्वितीय शतकम् ।

मानमवलम्ब्य पयुरनुनयसुख तावदनुभवेति स्वसखीं शिक्षयेति वदतीं कामयि
सखी सपरिहासमाह—

धेरिओ धरिओ पिअलइ उअएसो पिहसहीहिं दिज्जन्तो ।
मअरद्धवाणपहारजैजरे तीएँ हिअअम्मि ॥ १ ॥

[धृतो धृतो विगल्त्युपदेश प्रियसखीभिर्दीयमान ।
मकरध्वजवाणप्रहारजैजरे तस्या हृदये ॥]

धृतो धृत पुन पुनधृत । विगलति नावतिष्ठते ॥

नदीतटनिकुञ्जे दत्तसंकेतेन कात्तेन विप्रलब्धा नायिका तत्राभ्यगमनं नदीपूरेण सखे
तन्म्यानभयं स्वीयातथ प्रेमानुबन्धदार्ढ्यं चारं प्रति आवयतीत्यसंगीमाह—

तटसठिअणीढेक्खन्तपीलुआरक्खणेकदिण्णमणा ।
अगणिअणिनिपातमया पूरेण सम वइइ काई ॥ २ ॥

[तटस्थितस्य नीहस्येतात्ते विद्यमाना ये शावकास्तेषां रक्षणे दत्तं मनीषया एता
अगणितमिनिपातमया पूरेण समं वहति काङ्क्षी ॥]

तटस्थितस्य नीहस्येतात्ते विद्यमाना ये शावकास्तेषां रक्षणे दत्तं मनीषया एता
एतेषां काङ्क्षी अगणितमिनिपातमया तदग्रा सहैवान्तरमापि स्वस्य मञ्जनमगणयतीत्यती
पूरेण नवपलीधेन समं वहति ॥

१ कुलबालदेवस्तु अग्निप्रय शतकं वर्तमानाभिरुपसंश्लिष्टसहस्राक्षम् 'त नमह जस्य
वच्छ—' इत्यादिगायामत्र द्वितीयशतकारम्भे मञ्जुशचरणत्वेन पठति २ 'धेरिअ धरि
ओ वि' इति क पुस्तके, 'धिरिअ धिरिअ' इति च न पुस्तके पाठ ३ 'नज्जरिए' इति
क पाठ ४ घ पुस्तके 'धृतो धृतो—' इत्यादिगाथाच्छायात्तरं 'करयुगगृहीतयनो
दास्तेन भरनिविगितापरदस्स । सम्मृतपागजन्मस्य नमत्त इण्णस्य रोमाशम् ॥' इय
गाथाच्छायाधिकास्ति ५ 'पीलुआरक्खणेक' इति म-पाठ, 'पीलुआ शावक' इति
पुञ्जबालदेव ६ 'मिनिपातमया' इति घ पुस्तकपाठ

मधूकपुष्पावचयव्याजेन कृताभिसारा कुलटा जारं प्रत्यात्मनधिररताभिलापं सूचय-
न्ती मधूकतरुमाह—

बहुपुष्पभरोणामिभूमीगतसाह सुणसुं विण्णत्तिम् ।

गोलातडविअडकुडङ्गमहुअ सणिअं गलिज्जासु ॥ ३ ॥

‘[बहुपुष्पभरावनामितभूमीगतसाह शृणु विशसिम् ।

गोदातटविकटनिकुञ्जमधूक शनैर्गलिष्यसि ॥]

बहुपुष्पभरोणावनामिता भूमिगताः शाखा यस्येति मधूकविशेषणम् । शनैः क्रमेण ग-
लिष्यतीत्यनेन चिरं मया ते संगमो भविष्यतीति सूचितम् ॥

वस्याधिन्मधूककुसुमावचयप्रसङ्गेन मधूकतरुसमीपनिकुञ्ज सवेतस्थानमासीत् । स
च क्रमेण कुसुमापगमे शति भ्रम इति परिशिष्टकुसुमावचय कुर्वती रुदती दृष्टा नाग-
रिव सहचरमाह—

णिप्पच्छिमाई असई दुःखालोआई महुअपुप्फाई ।

चीए बन्धुस्त व अट्टिआई रुअई समुच्चिणइ ॥ ४ ॥

[निष्पथिमान्यसती दुःखालोकानि मधूकपुष्पाणि ।

चिताया बन्धोरियासीनि रोदैनशीला समुच्चिनोति ॥]

निष्पथिमानि परिशिष्टानि । दुःखालोकानि तदवचयव्याजलभ्यजारसमागमस्य
तदपाये दुर्लभत्वादिति भावः ॥

नायकस्यास्थिरप्रेमतया तद्वचनमस्वीकुर्वती नायिकामभिमुखीकर्तुं कथिद्विदग्ध
आह—

ओ द्विअज मडहसरिआजलरअहीरन्तदीहदारु व्व ।

ठाणे ठाणे व्विअ लग्गमाण केणावि डज्झिइसि ॥ ५ ॥

[हे हृदय स्वल्पसरिज्जलरयद्वियमाणदीर्घदारुवत् ।

स्थाने स्थाने एव लगत्केनापि धस्यसे ॥]

स्वल्पसरितो जलरयेण द्वियमाण काष्ठ यथा स्थले स्थले लगत्केनापि दह्यते तथा
त्वमपि कस्यामपि सुभगायां लभं सत्तया क्षणविरहेणापि लस्यस इत्यर्थः । एतेना-
भिमतजनाप्राप्त्या ममास्थिरलोहत्वम्, न तु दुर्विदग्धत्वादिति ध्वनितम् । मडहशब्दः
स्वल्पवाचकः ॥

१. ‘शनैर्न गलिष्यसि’ इति घ-पाठ . २. ‘उप्फाई’ इति क-ख पाठ . ३. ‘रुदती’
इति ग-पाठ.. ४. ‘हा हृदय’ इति घ-पाठः. ५. ‘धुदनदी’ इति ग-पाठः.

बन्धुजनं प्रति सख्याः सौभाग्यं काचिदाह—

जो 'तीएँ अहरराओ रत्ति उन्वासिओ पिअअमेण ।

सो विवअ दीसइ गोसे सवत्तिणअणेषु संकन्तो ॥ ६ ॥

[यत्तस्मा अधररागो रात्राबुद्धामितः प्रियतमेन ।

स एव दृश्यते प्रातः सपत्नीनयनेषु संक्रान्तः ॥]

गोसे गत । तथाविधाधरदर्शनजनितेर्ष्या सपत्नीनयनेष्वहनिमोदयादिति भावः । ए-
कस्या सौभाग्यवर्णनेन तत्सपत्नीनां सुखसाध्यत्वं सूचयन्त्या दृष्ट्वा इयमुक्तिरिति वक्षि ॥
हलिकवच्चा. पतिश्रेष्ठपरीक्षोपायं दर्शयन्ती काचित्सखी शिक्षयितुमाह—

गोलाअडट्टिअं पेछिरुण गहवइमुअं हलिअसोहा ।

आरहत्ता उत्तरिउं दुःखुत्ताराएँ पअवीए ॥ ७ ॥

[गोदावरीतटस्थितं प्रेक्ष्य गृहपतिमुतं हलिकस्रुषा ।

आरब्धा उत्तरीतुं दुःखोत्ताराया पदव्या ॥]

विमय मामवलम्बते न वेति जिज्ञासया विषममार्गेणावतरीतुमारब्धेत्यर्थः ॥

अभिलषितनायकं प्रलोभयितुं तं प्रलात्मसौभाग्यं धावयन्ती कापि सखीमाह—

चलणोआसणिसण्णस्स तस्स भरिमो अणालवन्तस्स ।

पाअङ्कुटावेट्टिअकेसदिढाअट्टणमुँहेहिम् ॥ ८ ॥

[चरणावकाशनिषण्णस्य तस्य स्मरामोऽनालपत ।

पादाङ्कुष्ठावेष्टितवेशदृढाकर्षणमुँखम् ॥]

प्रणयकोपेनानुनयमगृह्णन्त्या मम चरणावकाशे निषण्णस्य तस्य मदीयपादाङ्कुष्ठेना-
वेष्टितानां वेशानां दृढाकर्षणेन जातं यत्सुखं तत्स्मराम इत्यर्थः ॥

सकेतस्थाने जारं प्रति पविक्त्वावस्थितिं धावयन्ती कुलटा सखीमाह—

फालेइ अन्छभहं व उअह लुग्गामदेउलदारे ।

हेमन्तआलपहिओ विंज्ञाअन्तं पलालगिम् ॥ ९ ॥

[पाटयत्यच्छमलमिर पश्यत कुग्रामदेवकुलद्वारे ।

हेमन्तरालपथिको विन्ध्यायमान पलालगिम् ॥]

१. 'तीअ' इति ख-ग पाठः. २. 'प्रभाते दृश्यते' इति घ-पाठः. ३. 'आरह' इति ग पाठः. ४. 'दुःखउत्तारा' इति ख-ग-पाठः. ५. 'अवतरितु' इति घ-पुस्तके, 'उत्तरितु' इति च ग पुस्तके पाठः. ६. 'दुःखोत्तारायाः पदव्या.' इति घ-पाठः. ७. 'गृहम्' इति क पाठः. ८. 'सुखकेहिम्' इति ग-पाठः. ९. 'युग्माअन्तं' इति ग-पाठः. १०. 'विन्ध्या-यमान' इति ग पुस्तके, 'निर्वानं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

वच्छन्नो भद्रक । पात्यमानस्य पलालक्षारवूटस्य यदि श्यामत्वात् अन्तश्च
लोहिताकारवद्विस्वन्धाद्भद्रकसाम्यं बोध्यम् ॥

ग्रामतडागसमीपनिगृह्यदेशे दत्तसकेतेन जारेण विप्रलब्धा विमलजलानयनच्छलेना-
तिप्रभाते तत्रात्मगमनं तं प्रति धावयन्ती तत्र दृष्टाद्भुतस्थनच्छलेन पितृभगिनीमाह—

कमलाअरा ण मलिआ हसा उड्ढाविआ ण अ पिउच्छा ।

केणोवि गामतडाए अज्ज उत्ताणअ व्यूढम् ॥ १० ॥ १

[कमलाकरा न मृदिता हसा उड्ढाविता न च पितृष्वस ।

केनापि ग्रामतडागे अज्जसुत्तानितं क्षिप्तम् ॥]

विमलजलप्रतिबिम्बितम्याकाशस्योत्तानतया भानादियमुत्प्रेक्षा ॥

जारप्रवासं श्रुत्वा विमनस्कां गृहदृष्ट्यपराङ्मुखीं वधूं प्रति श्वश्रुरपालम्बच्छलेनाह—

केण मणे भग्गमणोरेहेण सल्लाविअ पवासो त्ति ।

सविसाइँ व अलसाअन्ति जेण बहुआएँ अज्जाइँ ॥ ११ ॥

[किनं मन्ये भग्नमनोरथेन सलापितं प्रवास इति ।

सविषाणीवालसायन्ते येनं वध्वा अज्जानि ॥]

यदा पतिप्रवासवार्ताश्रवणेन विमनस्काया प्रोथ्व्यत्पत्तिकाया पत्न्यावनुरागातिशय
प्रतिपादयन्ती दृष्टी तस्या असाध्यतां जारं प्रति सूचयतीति बोध्यम् ॥

कापि सर्गमिक्षितावारणोपनं शिक्षयितुं गोपीनां कृष्णतारुण्यानुभवाभिन्नकद्विति
तनुसिमाह—

अज्जावि वालो दामोअरो त्ति इअ जम्पिण जसोआए ।

कहमुहपेसिअच्छ णिहुण हसिणं वअवहूहिँ ॥ १२ ॥

[अद्यापि बालो दामोदर इति इति जल्प्यते यशोदया ।

कृष्णमुखप्रेषिताक्षं निभृतं हसितं ब्रजवधूभिः ॥]

अनुभूतविविधनुरतविमर्दे कृष्णे अस्य वचनस्यासद्वद्वाक्यत्वेन हास्यहेतुत्वाच्चातोऽपि
हासो वैदग्ध्यान् प्रकाशित इति भावः ॥

- १ 'तलाए अज्ज उत्ताणिअ' इति ख पाठ २ 'उत्तानक' इति ग पाठ
३. 'उड्ढाविअ' इति ग पाठ ४ 'मणे प्रवासीति' इति घ पाठ ५ 'येन' इति घ पु
स्तके नास्ति ६ 'इति किल जल्पितं यशोदायै' इति घ पाठ. ७ 'प्रक्षिताक्ष' इति
ग-पाठ.

कापि सन्ननस्तुतिव्याजेन दृढस्नेहानुपत्यर्थं नायकमाह—

ते विरला सत्पुरिता जाण सिणेहो अहिण्णमुहराओ ।

अणुदिअहवड्डमाणो रिणं व पुत्तेसु संकमइ ॥ १३ ॥

[ते विरला सत्पुरुषा येषां स्नेहोऽभिन्नमुखरागः ।

अनुदिवसवर्धमानो ऋणमित्र पुत्रेषु संक्रामति ॥]

अभिन्नेति । आदिमध्यान्तेषु तुल्यमुखप्रसाद इत्यर्थः ॥

कापि जनसमसमुद्भवा सखीं शिष्यितुं कृष्णानुरक्तगोप्या वैदग्ध्यमाह—

णक्खणसलाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगोवी ।

सँरिसगोविआणं चुम्बइ कपोलपडिमागअं कहम् ॥ १४ ॥

[नर्तनश्चाघननिभेनै पार्श्वपरिस्थिता निपुणगोपी ।

सैद्यगोपीना चुम्बति कपोलप्रतिमागत कृष्णम् ॥]

नर्तनेति सम्यद्बुद्धतीति कर्णे कथनव्याजेनेत्यर्थः ॥

कापि कान्तगमनाक्षेपार्थं वर्षागममाह—

सब्बत्थ दिँसामुहपसोरिण्हिँ अण्णोण्णकडअलग्गेहिँ ।

छल्लिँ व्व मुअइ विञ्झो मेहेहिँ विसंघटन्तेहिँ ॥ १५ ॥

[सर्वत्र दिशामुत्तप्रसृतैरन्योन्यकटकलमै ।

छल्लीमिव मुसति विन्ध्यो मेघैर्निसघटमानैः ॥]

अन्योन्य कटके पवतनितम्ये लम्बैर्विसघटमानैर्विन्ध्यमिद्वि । छल्ली वल्कलम् । त्वच-
मिति यावत् । 'छल्ली वीरुधि सताने वल्कले पुपुमान्तरे' इति मेदिनीकोपः ॥

तथैवापरगाथमाह—

आलोअन्ति पुलिन्दा पव्वअसिहरट्टिआ धेनुणिसण्णा ।

हत्थिउल्लेहिँ व विञ्झं पूरिज्जन्त णवब्भेहिँ ॥ १६ ॥

[आलोकयन्ति पुलिन्दा पर्यतशिखरस्थिता धेनुर्निषण्णा ।

हस्तिकुक्षेरिव विन्ध्यं पूर्यमाणं नराश्रैः ॥]

१. 'ऋण' इति ग पाठ . २. 'पुत्रे' इति घ-पाठ . ३. 'गोपी' इति ग-पाठ .
४. 'सरिगोविआण' इति क ख पाठ . ५. 'व्याजेन' इति ग-पाठ . ६. 'परिष्ठिता' इति
ग-पुस्तके, 'परिस्थिता' इति च घ पुस्तके पाठ . ७. 'सद्यगोपीना' इति घ-पाठ .
८. 'दिम्मुह' इति ग पाठ . ९. 'सर्वदिशामुत्तप्रसृतै' इति घ पुस्तके, 'सर्वत्र दिशामुत्त-
सारिभि' इति च ग-पुस्तके पाठ . १०. 'कमुकमिव' इति ग-पुस्तके, 'त्वचमिव'
इति च घ पुस्तके पाठ . ११. 'पपुमि निगण्णा' इति क-पाठ . १२. 'अश्वनि
निषण्णा' इति घ पाठ .

पुलिन्दाः शबराः । धनुषि निष्पन्नाः क्षितितलनिहिताटनीकं धनुस्त्रयस्थिताः
सन्तो वर्षाण्वनिमहत्वादिना हस्तिकुलसदृशैर्नयमेवैः पूर्यमाणं विन्ध्यं पश्यन्तीत्यर्थः ।
शबरानां पर्वतशिखरेऽपस्थानात् विन्ध्यवनेऽभिसारभयं प्रतिपादयन्त्या नायिकाया जारं
प्रतीयमुक्तिरिति केचित् ॥

श्रोपितमर्तृक्रामाश्वासयन्ती सखी पथिकगमनयोग्यं वर्षाण्वयमाह—

वणदवमसिमइलङ्गो रेहइ विब्बो गणेहिं धवलेहिं ।

१. सीरोअमन्थणुच्छलिअदुद्धसित्तो व्व महुमहणो ॥ १७ ॥

[वनदवमपीमलिनाङ्गो राजते विन्ध्यो घनैर्धवलैः ।

क्षीरोदमथनोच्छलितदुग्धसित्ता इव मधुमधनः ॥]

वनदवेत्यादिविशेषणेन तृणकण्टकादिदाहक्षिर्भनः सुगमता दर्शिता । धवलैरिति ज-
लापायादिति भावः ॥

कस्मिन्नप्युज्ज्वलक्षेत्रे पुंक्षि जायायाश्चक्षुःप्रीतिसुप्रलभ्य कुपित नायकं कोपयितुं वि-
नापि सुरतेच्छा चक्षुरागो भवत्येवेति सखी निदर्शयितुमाह—

वन्दीअ णिहअवन्धवविमणाइ वि पैकलो त्ति चोरजुआ ।

अणुराण्ण पलोइओ गुणेषु को मच्छरं वहइ ॥ १८ ॥

[वन्द्या निहतबान्धवविमनस्कयापि प्रवीर इति चोरयुवा ।

अनुरागेण प्रैलोकितो गुणेषु को मत्सरं वहति ॥]

निहतबान्धवत्वेन विमनस्कयापि वन्द्या चोरयुवा प्रवीर इति हेतोरनुरागेण प्रलो-
कितः । गुणानुरागादालोकितवती, ननु सुरताभिलाषादिति भावः ॥

नायकान्तरं प्रत्यसाध्यत्वं सूचयन्ती दूती व्याधवधूषाभाग्यं वर्णयति—

अज्ज कइमो वि दिअहो वाहवहू रुवजोव्वणुम्मत्ता ।

सोहग्गं धेणुहम्पच्छलेण रच्छासु विकिरइ ॥ १९ ॥

[अद्य कतमोऽपि दिवसो व्याधवधू रूपयौवनोन्मत्ता ।

सौभाग्यं धेनुस्तत्पच्छलेन रथ्यासु विकिरति ॥]

सततसुरतासक्तिवृत्तदौर्ध्व्यादाः प्रष्टुमशक्यत्वात् तत्तत्क्षणस्य धनुस्त्वच्छलेन सौ-

१. 'क्षीरोअ' इति ग-पाठः. २. 'एकलो' इति क-पाठः. 'पक्क' इति ग-पाठः.
'पक्कलशब्दो दर्पवति मूनि वर्तते' इति पुलवालदेवः. ३. 'विलोकितो' इति ग पुस्तके,
'दिलोकितो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'धनूरम्पच्छलेन' इति ग-पाठः. 'रम्प'शब्दः
वच्छे वर्तते' इति कुलवालदेवः. ५. 'रम्प' इति ग पाठः. ६. 'धनुस्त्वक्षण' इति घ-पाठः.

माग्यं विनिरतीत्यर्थः । रुम्पश्चन्द्रेण तत्क्षणप्रमदमूहमत्त्वगुच्यते । अतिमुरतासक्तं मिः
प्रति तत्रितृत्यर्थं सहचरोक्तिरिति कथित् ॥

तमेवार्थं भङ्ग्यन्तरेणाह—

उक्खिप्पइ मण्डलिमारुण गेहङ्गणाहि वाहीए ।

सोहगधअवडाअ व्व उअह धेणुरुम्परिञ्छोली ॥ २० ॥

[उत्क्षिप्यते मण्डलीमारुतेन गेहङ्गणाद्वाधस्त्रियाः ।

सौभाग्यध्वजपताकेव पश्यत धेनुःसूक्ष्मत्वमपङ्क्तिः ॥]

मण्डलीमारुतेन वातमण्डल्या । सौभाग्यमेव ध्वजस्तस्य पताकेव । आत्मनो विज्ञ-
त्वत्यापनार्थं नागरिकस्य सहचर प्रतीयमुक्तिरिति कथित् ॥

अनुक्तमप्यर्थं लिङ्गदर्शनाज्जनो जानातीति दर्शयन्ती काचित्ससीमिद्वितरक्षणा-
र्थमाह—

गजगण्डस्थलणिहसणमअमइलीकअकरअसाहाई ।

एत्तीअ लुलहराओ णाणं वाहीअ पइमरणम् ॥ २१ ॥

[गजगण्डस्थलनिघर्षणमदमलिनीवृत्तकरञ्जशाखाभिः ।

आगच्छन्त्या कुलगृहान्जातं व्याधस्त्रिया पतिमरणम् ॥]

गजाना गण्डस्थलनिघर्षणे सति मदेन मलिनीकृताभिरित्यर्थः । कुलगृहातिपतृगृहात् ।
पतिभयेन पलायिताना गजानां पुनरागमनस्य पतिमरणाव्यभिचारित्वेन पतिमरणमनु-
मितमित्यर्थः । नायिकान्तरासक्तस्य पूर्ववद्गजमारणसामर्थ्याभावात्पतिर्मरिष्यतीति नि-
श्चितमित्यर्थे इति कथित् ॥

पूर्वप्रियाप्रेमानुवृत्तिविक्षार्थं नागरिकः सहचर प्रति कस्यचिद्व्याधस्य दक्षिणनाव-
क्ता वर्णयति—

णववहुपेम्ममतणुइओ पणअं पढमघरणीअ रक्खन्तो ।

आलिहिअदुप्परिअं पि णेइ रणं घणुं वाहो ॥ २२ ॥

१. 'धनुहरोरम्प' इति ग-पाठः. २. 'मारुतैः' इति घ-पाठः. ३. 'गृहङ्गणाङ्गा-
ध्याः' इति ग-पुस्तके, 'गेहङ्गणाद्वाधात्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'पश्यत' इति
ग-पुस्तके नास्ति. ५. 'धनुर्मेनोरम्परिञ्छोली' इति ग-पुस्तके, 'पश्य घनुस्तक्ष्णपरि-
ञ्छोली' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'आगल' इति घ-पाठः. ७. 'व्याधव्या' इति
ग-पुस्तके, 'व्याप्या' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'अलिहिअदुप्परिअं' इति
ख-पाठः.

[नननधूप्रेमैतनूकृत प्रणय प्रथमगृहिण्या रक्षन् ।

तेनूकृतदुराकर्षमपि नयत्यरण्य धनुर्बाध ॥]

तक्षणादिना तनूकृतमपि दुराकर्षमित्यर्थः । प्रथमगृहिण्या साध्यत्वं सूचयितुं जार
प्रति द्रव्या उक्तिरियमिति वक्षित् ॥

सुभगा प्रति कथमपि कुपितस्य प्रियस्य पुनः पुनः सप्रतिज्ञं यत्तत्सगमोपेक्षावचनं
सस्यासन्नदायत्वेन हास्यैव हेतुतामपरा तमहिला सोपालम्भमाह—

हासाविओ जणो सामलीअ पढम पसूअमाणाए ।

वहहवौएण अल मम त्ति बहुसो भणन्तीए ॥ २३ ॥

[हासितो जन ईश्यामया प्रथम प्रसूयमानया ।

वहमवौदेनाल ममेति बहुशो भणन्त्या ॥]

यथा श्यामया वरद्विया प्रथम प्रसूयमानया वृत्रभसमागमस्य प्रसवदुःखहेतुं वाद्वहम
वादेन वत्ताभिधानेन । वहमस्य नामग्रहणेनावीति यावत् । ममात् नक्षि प्रयोजन
मिति बहुशो भणन्त्या पुनः प्रियोपगमाहोको हासितस्तथा तवापीदं वचनमिति भावः ॥
अत्रैतत्वे प्रियेऽलमलीकप्रसक्तिशब्देत्याश्वामयतीं मातुलानीं प्रोषितमर्तुका सति
वन्दमाह—

कैअवरहिअ पेम्म णत्थि विअ मामि माणुसे लोए ।

अह होइ करस विरहो विरहे होत्तम्मि को जिअइ ॥ २४ ॥

[वैतवरहित प्रेम नास्त्येव मातुलानि मानुषे लोके ।

अथ भवति कस विरहो विरहे भवति को जीवति ॥]

भवति जायमाने । कथमन्यथा तद्विरहेऽप्यहं जीवामि स च मां परित्यज्य तिष्ठ
तीति भावः ॥

यस्याधिदमीष्टनायिकाया स्थावसरेऽप्रभालनार्थं यत्परिवर्तनोद्घातिनावयवदर्श
नेन तस्य कामिनीजनमनोहरणार्थमात्मनः कामुकवातिशयं कथिदाह—

अन्नेर व णिहिं विअ सग्गे रज्ज व अमअपाण व ।

आसि म्हा त महुत्त विणिअसणदसण तीए ॥ २५ ॥

१ 'प्रेम्णा' इति ग-पाठ २ 'अग्निनिदुरा-' इति ग घ-पाठ 'अग्निविलसत
नूकृतम्' इति कुलशालदेव ३ 'राण' इति ग-पाठ ४ 'स्यामलया' इति घ
पाठ ५ 'रानेणाल' इति ग घ-पाठ ६ 'मनिनि' इति ग पुनूके, 'मातुलि'
इति च घ-पुनूके पाठ ७ 'भवत्यपि' इति ग पाठ ८ 'आसि ह' इति ग-पाठ

[आश्चर्यमिव निधिमित्र स्वर्गे राज्यमित्रामृतपानमिव ।

आसीदस्माक तन्मुहूर्ते विनिरसनदर्शनं तस्या ॥]

• अस्माक तस्यास्तद्विनिवसनदर्शनम् । विवस्त्रायास्तस्या आलोकनमिति यावत् ।
मुहूर्तमात्र नेत्रोपसहेतुत्वादाश्चर्यमिव । परमसुखहेतुत्वान्निधिमिव । निधिरिवेत्यर्थः ।
प्राकृते लिङ्गविभक्त्यादेरनियमात् । निधीश्वरत्वाभावात्स्वर्गराज्यमिव । अतिराशितत्वं
सिंकारित्वान्मदनानलकृन्तनसकलशरीरनिर्गृतिकरणाच्चामृतपानमिवासीदित्यर्थः ॥

आत्मन्यनुराग सपर्यायां च विद्वेषमुत्पादयितुं काव्यस्थिरप्रेमाण नायिकान्तरासक्त
नायकमाह—

सा तुज्झ बह्दा स सि मज्झ वेसो सि तीअ तुज्झ अहम् ।

वालअ फुडं भणामो पेम्म किर बहुविआरं त्ति ॥ २६ ॥

[सा तव वैलम्बा त्वमसि मम द्वेष्योऽसि तस्यास्तवाहम् ।

बालक स्फुटं भणाम प्रेम किलै बहुविकारमिति ॥]

त्वमसि मम बल्लभ इति विपरिणतानुपपन्नः । तवाहमित्यत्रापि द्वेष्येति विपरिणता
नुपपन्नः । बालक उचितानभिज्ञः । बहुविकारमिति प्रकृतिभेदेन बहुप्रकारमित्यर्थः । अ
नुरक्त्या मां विद्यायाननुरक्त्यायां तस्यामासक्तिस्तव रसाभासावहेति भावः ॥

पल्लुर्वैदग्ध्यमात्मनश्च सौभाग्यविनयादिगुण सूचयन्ती स्वाधीनभर्तृका प्रसाधि
कामाह—

अहं लज्जालुङ्गी तस्स अ उम्मच्छराइ पेम्माइ ।

सहिआअणो विं जिउणो अलाहि किं पाअराएण ॥ २७ ॥

[अहं लज्जालुस्तस्य चोन्मत्सराणि प्रेमाणि ।

सखीजनोऽपि निपुणोऽर्पगच्छ किं पादरागेण ॥]

उन्मत्सराण्युद्भटानि । उदरालककादिष्वव्याप्तप्रवृत्तानीत्यर्थः । सखीजनश्च निपुणः ।
त्रिविधमात्रेण लक्षयतीत्यर्थः । अलाहिन्द्रो निवारणे । अपगच्छेत्यर्थः । किं पा
दरागेणेति चरणयोरारुण्यस्य स्वतः सिद्धत्वात् । उदरादिषु चरणविहोदयहेतुना लाक्षा-
रसेन किं प्रयोजनमिति भावः ॥

१ 'विनिवसन्' इति घ पाठ २ 'बल्लभा मम त्व द्वेष्योऽसि' इति ग पुस्तके,
'बल्लभा त्वमसि मम प्रियस्त्वमसि तस्या' इति च घ पुस्तके पाठः । ३ 'खलु विकार
मिति' इति घ पाठ ४ 'अहं अ' इति ग-पाठ ५ 'अ' इति ग पाठः । ६ 'अहं
च' इति ग पाठ ७ 'लज्जालुकिनी' इति घ पाठ ८ 'अलाभि' इति घ पाठः ।

अरण्ये दत्तसंकेताया गोप्या विरहपीडा संकेतस्थानगमन च सूचयन्ती दूती जारं
प्रत्याह—

मधुमासमारुताहमधुकरशंकारणिन्मरे रण्ये ।

गाअइ विरहकरखौवद्वपदिअमणमोहनं गोवी ॥ २८ ॥

* [मधुमासमारुताहतमधुकरशंकारनिर्भरेऽरण्ये ।

गायति विरहाक्षराबद्धपथिकमनोमोहनं गोपी ॥]

मधुमासमादत्तेन दक्षिणानिलेनाहते मधुकरशंकारैः पूरिते अरण्ये विरहाभिव्यङ्गकै-
रक्षरैरावद्वत्तात्पथिकमनोमोहनं यथा भवति तथा गोपी गायति । अस्मद्वनितानामपी
दश* श्लेशो भविष्यतीति पथिकानां* मोहो भवतीति भावः । गृहगमनाय पथिकान्तरं
त्वरयितुं पथिकस्येयमुक्तिरिति केचित् ॥

कलहान्तरिताया निष्कारणमानप्रहृन्निन्दाछटेन दूती जारस्यागमनावसरमाह—

तह माणो भौणधणाएँ तीअ एमेअ दूरमणुवदो ।

जह से अणुणीअ पिओ एकगाम ठिवय पउत्थो ॥ २९ ॥

[तथा मानो भौनधनया तैया एवमेव दूरमणुवद* ।

यैया तस्मा अनुनीय प्रिय एकग्राम एव प्रेषितः ॥]

एवमेव कारण विभेदः । एकग्रामे विद्यमानस्यापि प्रियादर्शनाभावात्प्रवास एवेति
भावः ॥

विदग्धाः पत्युः परवनितासक्तिमुपायेन वारयन्तीति कापि सती* शिक्षयितुमाह—

सालोए ठिवअ सूरै धरिणी धरसाभिअस्स घेत्तूण ।

णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥ ३० ॥

[सालोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा ।

अनिच्छतोऽपि पादौ धौवति हसती हसतः ॥]

असमय एव पादप्रक्षालनादन्यग्रीष्मनीरगमनप्रतिषेधे गृहिण्यास्तात्पर्यमवगत्य हसन्तो
गृहस्वामिनः पादौ गृहिणी विदिताभिप्रायाहमनेनेति हसती सती प्रक्षालयतीत्यर्थः ॥

१. 'बद्ध' इति घ-पाठः. २. 'माणहणाए' इति ग-पाठः. ३. 'मानदताया इत्यनेव'
इति ग-पाठः. ४. 'तस्या मे अदूरमणुवद.' इति घ-पाठः. ५. 'ययास्या' इति ग घ-
पाठः. ६. 'गृहस्वामिकस्य' इति ग-पाठः. ७. 'धावयति' इति ग-पुस्तके, 'प्रक्षालयति'
इति घ घ-पुस्तके पाठः. ८. 'हसन्ती हसमानस्य' इति घ-पाठः.

अन्यस्त्रीनाम्ना व्यवहरन्तं कान्तं प्रति किं ते दृष्टव्यमपि क्षीणमिति वदन्तीं सखीं
निवारयन्ती खण्डिता सखिनयोपालम्भमाह—

वाहरउ मं सहीओ तिरसा गोत्तेण किं त्थ भणिण्ण ।

धिरपेम्मा होउ जहिं तेहिं पि मा किं पि णं भणह ॥ ३१ ॥

[व्याहरतु मा सख्यस्तस्या गोत्रेण विमत्र भणितेन ।

स्थिरप्रेमा भवतु यत्र तत्रापि मा विमप्येन भणन ॥]

गोत्रेण नाम्ना । 'गोत्र तु नाम्नि च' इत्यमरः ॥

दुष्टद्वितीप्रत्याप्त्यनार्थं कापि साध्वी प्रोषितमर्तुका दैवोपालम्भच्छलेनात्मनः पला-
वनुरागातिशयमाह—

रूअ अच्छीसु ठिअं फरिसो अङ्गेसु जम्पिअ कण्णे ।

हिअअं हिअए णिहिअं विओइअं किं त्थ देव्वेण ॥ ३२ ॥

[रूपमङ्गोः स्थित स्पर्शोऽङ्गेषु जल्पित कर्णेषु ।

हृदय हृदये निहित विधोजित किमत्र दैवेन ॥]

तस्य रूपसौकुमार्यप्रियवचनसद्भाववर्तनानि भावयन्ती मा न विरहः पीडयतीति
भावः ॥

प्रोषितमर्तुकायाः सखी तत्त्वान्तसमीपगामिन पथिक प्रति सख्या विषमां विरहा-
वस्थामाह—

सअणे चिन्तामइअं काऊण पिअं णिमीलिअच्छीए ।

अप्पाणो उवऊढो पसिठिलवलआहिं वाहाहिं ॥ ३३ ॥

[शयने चिन्तामय कृत्वा प्रिय निमीलितास्या ।

आत्मा उपगूढ प्रशिथिलवलयाम्या बाहुभ्याम् ॥]

आनन्दातिशयान्मुकुलितनेत्रया विरहदोषत्वात्प्रशिथिलवलयाम्या बाहुभ्यामा मा
उपगूढः । सखरीरमाग्नित्तमित्यर्थः । तद्यावद्समीपवस्थां न गच्छति तावदनुसम्प-
सेति तत्त्वान्तं प्रति वक्तव्यमिति भावः ॥

कलहान्तरितयोर्युनो समप्रसङ्करणाय गतागतस्त्रिधा द्विती तावदुत्प्लवितुमात्मनि-
न्दामाह—

परिहूण वि दिअहं घरघरभमिरेण अण्णकजम्मि ।

चिरजीविण्ण इमिणा खविअहो दड्ढवाएण ॥ ३४ ॥

१. 'वेम्मा' इति ग पाठ २. 'कहिं' इति ग पाठ ३. 'यत्र कुत्रापि' इति ग
पाठ ४. 'हिअएण सम' इति ख-पाठ ५. 'स्पर्श' इति फ-ख पाठ ६.
'कर्णयो' इति ग पाठ ७. 'विचोक्षितं किं सखी दैवेन' इति घ-पाठ ८. 'आ-
त्मना परम रुढ' इति घ-पाठः

[परिभूतेनापि दिवस गृहगृहभ्रमणशीलेनान्यकार्ये ।

चिरजीवितेनानेन क्षपिता स्मो दग्धकायेन ॥]

पक्ष दग्धकाकेन । रोपकटुवचनैः परिभूतेनापि अन्यकार्ये परप्रयोजनार्थं गृहगृह-
भ्रमणशीलेन चिरजीवितेन घृष्टेनानेन दग्धकायेन क्षपिता स्म उद्वेजिता स्म । अ-
न्योऽपि छोटप्रक्षेपादिना परिभूतेन भ्रमणकार्यं भ्रमणप्राप्त्यर्थमनुदिवस प्रतिगृह भ्रमता चि-
रजीवितेन दीर्घायुपा काकेन दध्यागुपघातादुद्विग्नो भवतीति । अण्णकधम्मि दट्टसा
एण इत्यादि ऋष्टशब्दशक्तिमूलको ध्वनिः । क्षपिता स्म इत्यर्थे क्षुब्धा स्म इति वा ॥

दुर्जनसङ्गपरिहारार्थं कोऽपि सहचरमाह—

वसइ जहिं चेअ खलो पोसिज्जन्तो सिणेह्दणेहिं ।

त चेअ आलअ दीअओ वउ अइरेण मदलेइ ॥ ३५ ॥

[वसति यत्रैव खल पोष्यमाण ओहदानै ।

तमेवाल्लय दीपेव इवाचिरेण मलिनयति ॥]

ओहदानै सहपूयकैदानै । पक्षे तैलादिदानै । पोष्यमाण सरध्यमान । पक्षे सदी-
प्यमान खलो यत्रैव वसति । यदाश्रयेण वसतीत्यर्थः । तमेवाल्लयमाश्रयभूतं तत्र
भूभाष चाचिरेण मलिनयति सापवाद साधकार च करोतीत्यर्थः ॥

शुभ्र दानोमुखं कर्तुं कुट्टनी कृपणनिदामाह—

होन्ती वि णिण्फलञ्चिअ धैणरिद्धी होइ किविणपुरिसस्स ।

गिह्माअवसत्तत्तस्स णिअअछाहि वउ पदिअस्स ॥ ३६ ॥

[भवत्यपि निष्फलैव धैर्यवद्भिर्भवति कृपणपुरुषस्य ।

ग्रीष्मात्प्रसततस्य निवृत्त्यायेव पथिकस्य ॥]

यथा स्त्रीया छाया तामनो न वा परस्य सताप हरति तद्वत्कृपणधनमिति भावः ॥

स्फुरितवामनेना प्रोषितभनृका स्त्रीणां वामाक्षिरदस्य शुभसूचकतया प्रियाग-
मनमाकल्प्य सपरितोषमाह—

पुरिए वामण्डि तुए जइ एहिइ सो पिओ ज ता सुइरम् ।

समील्लिअ दाहिणअ तुइ अवि एह पलोइस्साम् ॥ ३७ ॥

१ चिरजीविनामुना शापिता स्मो इति ग पाठ २ 'खेय' इति क पाठ
३ 'दीप इव' इति क ख घ पाठ ४ धनरिद्धी इति ग पाठ ५ 'धनरिद्धि'
इति क ख पुस्तकयोः, 'धनरिद्धि' इति च घ पुस्तके पाठ ६ 'तुए अविइ पलोइ-
स्साम्' इति ग पाठ

[स्फुरिते वामाक्षि त्वयि यैचेप्यति स प्रियोऽद्य तत्सुचिरम् ।
समील्य दक्षिण त्वैयैवैतं प्रेक्षिष्ये ॥]

हे वामनेत्र, त्वया स्फुरिते स्फुरणे कृते सति यदि स प्रियोऽद्यागमिष्यति तदा दक्षिणमक्षि निमील्य तं त्वयैव प्रेक्षिष्ये । त्वानेवैकं प्रियावलोकनेन कृतार्थमिष्यामी-
त्यर्थः ॥

शुनकापदेशेन कामुकान्तरसभोगभवं प्रदर्शयन्ती दूती नायकं प्रति नायिकाया अ-
नुरागातिशयमाह—

सुणअपडरम्मि गामे हिण्डन्ती तुह कएण सा बाला ।

पासअसारिब्ब घरं घरेण कहआ वि सज्जिहिइ ॥ ३८ ॥

[शुनकप्रचुरे ग्रामे हिण्डमाना तव वृत्तेन सा बाला ।

पाशकशरीव गृहं गृहेण कदापि खादिष्यते ॥]

शुनकप्रायकामुकप्रचुरे ग्रामे त्वदर्शनार्थं प्रतिगृह भ्रमन्ती सा बाला कदापि केनापि
खादिष्यते । उपगोक्ष्यत इत्यर्थः । अतो नवयौवना एषा यावदन्त्येन नोपभुज्यते ताव-
देना भुजसेति भावः ॥

यं युवानं प्रति त्वं वद्वानुरागा सोऽस्थिरप्रेमेति कथयन्ती सखी नायिका स्वसौमा-
न्यगर्वमाह—

अण्णण्णं कुसुमरसं जं फिर सो महइ मैहुअरो पाउम् ।

तं णीरसान् दोसो कुसुमाणं णेअ भमग्गस्स ॥ ३९ ॥

[अन्यमन्य कुसुमरसं यत्किल र्सी इच्छन्ति मधुकरः पातुम् ।

तन्नीरसानां दोषः कुसुमानां नैवै भ्रमरसः ॥]

यथा इच्छानुरूपस्य मधुन एकत्रालाभान्मधुकरो भ्रमति तद्वदयमपीच्छानुरूपना-
यिकामलभमानायास्त्यमवलम्बते । तदेतस्य चाञ्चल्य मया शमयितव्यमिति भावः ॥

मन्दस्नेहे नायकमभिमुखीकर्तुं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

ईत्यापइण्णणअणुप्पला तुमं सा पडिच्छए एन्तम् ।

दारणिहिण्हि दोहि वि मङ्गलकलसेहि य थणेहि ॥ ४० ॥

१. 'स्फुरति' इति ग-पाठः. २. 'यद्यागमिष्यति प्रियतमस्तदा सुचिरम्' इति
ग-पाठः. ३. 'त्वया अविप्र प्रलोक्षयिष्ये' इति ग-पाठः. ४. 'हिण्डवी' इति घ-
पाठः. ५. 'शरीव' इति घ-पाठः. ६. 'गृहे न' इति घ-पाठः. ७. 'पाणलो-
ऽण्णो' इति ग-पाठः. ८. 'स महति पानरोउपः' इति ग-पाठः. ९. 'नेह' इति घ-
पाठः. १०. 'इच्छा' इति ख-पाठः.

[रभ्याप्रकीर्णनयनोत्पला त्वां सा प्रतीक्षते आयान्तम् ।

द्वारनिहिताभ्या द्वाभ्यामपि मङ्गलकलशाभ्यामिव स्तनाभ्याम् ॥]

‘तुम सा पङ्क्तिश्च एतम्’ इति स्थाने ‘तुम पुत्ति क पलोएत्ति’ इति कश्चित्पुस्तके पाठो दृश्यते । ‘त्व पुत्ति क प्रलोकयसि’ इति तस्यार्थः । तत्रेत्य व्याख्या—रभ्या प्रलोकनद्वारास्थितिस्तनप्रदर्शने कलितशीलखण्डनो कुलबधू प्रति दूती आह—र वेति । अयं भावः—नयनोत्पलाभ्याः कृतरभ्यापूजा द्वारि कलशाविव स्तनौ निधाय यस्य तन्मं प्रतीक्षते तं वयं मया तदानयने यत्नो विधेय इति ॥

अगृहीतानुनयविलक्ष पुनरनुनयविमुरा नायकं प्ररोचयितुं दूती कलहान्तरिताया नायिकाया पथात्तापमाह—

सा रण्ण जा रुव्वइ ता छीणं जाव छिज्जाए अङ्गम् ।

ता णीसैसिअं वराइअ जाव अ सासा पहुप्पन्ति ॥ ४१ ॥

[तावद्बुद्धित्वावद्बुध्यते तावत्क्षीणं यावत्क्षीयतेऽङ्गम् ।

तावन्निश्चितं वशकया यौवत् [च] श्वासा प्रभवन्ति ॥]

यावद्बुद्धितुं शक्यते तावद्बुद्धितम् । अङ्गं यावत् क्षीयते यतोऽधिकं क्षीणं न भवति तावत्क्षीणम् । यावच्छ्वासा प्रभवन्ति तावन्निश्चितम् । इदानीं क्षीणाया श्वासितुमपि न शक्तिरिति त्वदुपेक्षया म्रियमाणा त्वय्यनुरक्तमनुकम्पस्वेत्यर्थः ॥

कश्चिदुपरतजायाविरहविधुरमातमानमनुशोचनात्मन स्थिरभेदतासूचनेन नायिका-
न्तरं प्ररोचयितुमाह—

समसोकसदुक्कपपरिवट्टिआणं कालेण रुद्धपेम्माणम् ।

मिहुणाणं मरइ ज त खु जिअइ इअर मुअ होइ ॥ ४२ ॥

[समसौख्यदुःखपरिवर्धितयो कालेन रुद्धप्रेम्णो ।

मिथुनयोर्म्रियते यत्तत्खलु जीवति इतरन्मृतं भवति ॥]

मिथुनं जायापती । ‘स्त्रीपुंसौ मिथुनं द्वन्द्वम्’ इत्यमरः । समुदायवाचकोऽप्ययं लक्षणया जायायां पत्न्यौ च प्रयुक्तः । तेनायमर्थः—समाभ्यामुभयो साधारणाभ्यां मुखदुःखाभ्यां परिवर्धितयो कालवशेन स्थिरप्रेम्णोर्मिथुनयोर्दंपत्योर्मध्ये मनिथुनं जाया वा पतिर्वा म्रियते तज्जीवति । इतरजीवन्मृतं भवति निरहदुःखदग्धाजीवितान्मरणमेव चरमिति भावः ॥

१ ‘आगच्छन्तम्’ इति घ पाठ २ ‘णीससइ’ इति ग-पाठ ३ ‘यावन्निश्चितं’ इति घ पाठ ४ ‘मुखदुःख’ इति ग घ पाठ

वसन्ते प्रियप्रवासगमनध्वजविधुरां कुलवधूमाश्रासयन्ती विदम्भा सखी
सानुनयमाह—

हरिहिं पिअस्स णवचूतपल्लवो पढममञ्जरीसणाहो ।

मा रुवसु पुत्ति पत्थाणकलसमुहसंठिओ गमणम् ॥ ४३ ॥

[हरिष्यति प्रियस्य नवचूतपल्लवः प्रथममञ्जरीसनायः ।

मा रोदी पुत्रि प्रस्थानकलशमुखसंस्थितो गमनम् ॥]

हे पुत्रि, शकुनच्छलेन मया प्रस्थानकलशे स्थापितो नवचूतपल्लवः प्रियस्य गमनं
हरिष्यति । अतो मा रोदीरित्यन्वयः । वसन्तागमनचिह्नं दृष्ट्वा स्वयमेव स्थास्यतीति
भावः ॥

अनुनयार्थमागतं कान्तं दृष्ट्वा कलहान्तरितारमनोऽनुरागं सूचयन्ती सपरिहासमाह—

जो कह वि मद्द सहीहिं छिहं लहिऊण पेसिओ हिअए ।

सो माणो चोरिअकामुअ व्व दिट्ठे पिए णट्ठो ॥ ४४ ॥

[य कथमपि मम सखीभिर्दिष्टं लब्ध्वा प्रवेशितो हृदये ।

स मानश्चोरैकामुक इव दृष्टे प्रिये नष्टः ॥]

प्रणयकलहरूपं छिद्रं लब्ध्वा यो मानः सखीभिर्मम हृदये प्रवेशितः । न तु मया
स्वीकृत इति भावः । स मानः प्रिये दृष्टे सति चोरैकामुक इव नष्टः पलायितः ॥

कापि कुसुम्भपुष्पावचचार्यं गतायाः सपत्न्याः शीलखण्डनं जातमिति सूचयन्ती
आह—

सहिआहिं भण्णमाणा यणए लम्मां कुसुम्भपुष्पं त्ति ।

मुद्धवहुआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइ ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्भण्यमाना स्नेहे लभं कुसुम्भपुष्पमिति ।

मुग्धवर्धूह्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

‘शशङ्कं पथं नखननानि सान्द्राणि तच्चतुर्कचिदमाहुः’ इत्यादिकामशास्त्राभिदेन
नायकेन स्तनकुक्ष्याग्रे निहितं शशङ्कं दृष्ट्वा स्नेहे कुसुम्भपुष्पं लभमिति सखीभिर्भ-
ण्यमाना मुग्धवधूर्नेखपदानि प्रस्फोटयन्ती प्रक्षिपन्ती हस्यते । मुग्धवधूरित्युपालम्भपर्य-
वचनम् । प्रियदत्तं नखक्षतमपि न जानातीति भावः ॥

१. ‘प्रियमस्य’ इति ग-पाठः. २. ‘हरिहिं’ इति घ-पाठः. ३. ‘प्रेषितो’ इति
घ-पाठः. ४. ‘चोरिकाकामुक’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्तनयोः’ इति ग-पाठः. ६. ‘वधू-
रपहस्यते’ इति ग-मुद्रके, ‘वधुका प्रहस्यते’ इति च घ-मुद्रके पाठः.

काप्यात्मनो मरणमय प्रदर्शयन्ती मन्दब्रेह नायकमनुकूलयितुमाह—

उन्मूलयन्ति व हिअअं इमाहँ रे तुह विरजमाणस्त ।

अवहीरणवसविसंतुलवलन्तणअणद्धदिट्ठाइ ॥ ४६ ॥

[उन्मूलयन्तीव हृदय इमानि रे तत्र विरज्यमानस्य ।

• अवधीरणवशविसमुलवलन्नयनार्धदृष्टानि ॥]

रेशब्द साक्षेपसूचने । विरज्यमानस्य सेऽवधीरणवशाद्विसमुलमवलक्ष्यं यथा भवति तथा वलन्नयनार्धं येषु एतादृशानि दृष्टान्यालोकनानि मम हृदयमुन्मूलयन्तीवेत्यर्थः । एतेनास्ता तव विरागः । विरागसूचकेनावलोकनेनापि मम मरणावस्था भवतीति सूचितम् ॥

काप्यात्मनो विरहविधुरता सूचयन्ती विरलदर्शनं नायकमाह—

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति चिर ण होन्ति किसिआओ ।

धैण्णाओ ताओ जाणं बहुवल्लह वल्लहो ण तुमम् ॥ ४७ ॥

[न मुच्यन्ति दीर्घश्वासाश्च रुदन्ति चिर न भवन्ति क्लेशाः ।

धैर्यास्ता यासा बहुवल्लभ वल्लभो न त्वम् ॥]

अस्माभिस्तु त्वामासाद्य सर्वमिदमनुभूयत इति भावः ॥

शय्यागारविनिर्गतायाः प्रियाया परिवृत्त्यावलोकनं नायकः स्वसौभाग्यव्यापनार्थमाह—

णिहालसपरिघुम्मिरतंसवलन्तद्धतारआलोआ ।

कामरस वि दुब्बिसहा दिट्ठिणिवाआ ससिसुहोए ॥ ४८ ॥

[निद्रालसपरिघूर्णनशीलतिर्यग्वल्लभधर्तारकालोका ।

कामस्यापि दुर्विषहा दृष्टिनिपाता शशिसुर्याः ॥]

सुरतजागराज्निद्रालस अत एव, परिघूर्णनशील, अनुरागातिशयातिर्यग्वल्लभधर्तारकालोको येषु तादृशा शशिसुर्या दृष्टिप्रपञ्चा कामस्यापि धैर्यच्युतिं कुर्वन्ति, किं पुनः कामानुरागमिति भावः ॥

काप्यात्मनो जारं प्रत्यनुरागं चिरश्रोषितप्रियागमने च निष्प्रत्याशतां दर्शयन्ती हृदयोपालम्भच्छलेनाह—

जीविअसेसाइ मए गमिआ कहँ कहँ वि पेम्मदुहोली ।

एहि विरमसु रे डडुद्धिअअ मा रजसु कहिं पि ॥ ४९ ॥

१ 'अवहीरणवसविसंतुल' इति ग-पाठः २. 'अवधीरितमविसमुल' इति ग-पाठः.
३. 'धण्णाउ ताउ' इति ग-पाठः ४ 'दीर्घश्वास' इति ग-पाठः. ५ 'क्लेशाश्च'
इति घ-पाठः. ६ 'धन्यास्तु तास्तु' इति घ-पाठः. ७ 'परिघूर्णमान' इति ग-पाठः.

[जीवितशेषया मया गमिता कथं कथमपि प्रेमैदुर्दोली ।
इदानीं विरम रे दग्धहृदय मा रंज्यस्व कुत्रापि ॥]

पाशानामन्योन्यबन्धकृतो दुर्मौल्यो ग्रन्थिर्दुर्दोलीति प्रसिद्धा । विरहक्षोणतया जी-
वितशेषया मया प्रेमदुर्दोली तस्य मम च प्रेम्णः परस्परानुबन्धित्वादुर्मौल्यो ग्रन्थिः कथं
कथमपि आगमिष्यतीति प्रत्याशया सखीजनान्मयधनया आत्मवधपातकभयाद्य गमिता ।
एतेन प्रियागमनप्रत्याशालागः सौभाग्यं दृढभक्तिता चाल्मनः सूचिता । तादृशविरहदा-
हमनुभूय पुनरन्यत्रानुरज्यस इति सन्निर्वेदमाह—रे दग्धहृदयेति । इदानीं विरम मा
रंज्यः कुत्रापि इत्यनेनानुरक्तस्य निवेद्यायोगाच्चार प्रत्यनुरागः सूचितः ॥

नायकस्यानुरागवृद्धये दूती कस्याश्चिदन्तनसखतावलोकनकौतुकमाह—

अज्जापे णवणहक्करअणिरीकरणे गरुअजोव्वणुत्तुङ्गम् ।

पडिमागअणिअणअणुप्पलच्चिअं होइ यणवट्टम् ॥ ५० ॥

[आर्याया नवनसखतनिरीक्षणे गुरुवयौवनोत्तुङ्गम् ।

प्रतिमागतनिजनयनोत्पलार्जितं भवति सैनपट्टम् ॥]

आर्याया वरप्रियाः ॥

स्त्रीसेवाविमुखं नायकमभिमुखयितुं विपरीतरतानभिज्ञां च नायिका शिक्षयितुं निस्-
प्राप्यदूती भगवतः कृष्णस्य लक्ष्म्याश्च कामपरतां नमस्कारच्छलेनाह—

तं णमह जस्स वच्चे लच्छिमुहं कोट्थिहम्मि संकन्तम् ।

दीसइ मअपरिहीणं ससिबिम्बं सूरविम्बं च्च ॥ ५१ ॥

[तं नमत यस्य वक्षसि लक्ष्मीमुखं कौस्तुभे संक्रान्तम् ।

दृश्यते मृगपरिहीनं शशिबिम्बं सूर्यबिम्बं इव ॥]

विपरीतरतावस्थायां यस्य वक्षसि कौस्तुभे प्रतिबिम्बितं लक्ष्मीमुखं सूर्यबिम्बे प्रति-
बिम्बितं निष्कलं चन्द्रबिम्बनिव दृश्यते तं नमतेत्यन्वयः ॥

प्रिवाननुयार्थं दूती कल्हान्तरितामाह—

मा कुण पडिक्करमुहं अणुणेहि पिअं पसाअलोहिहम् ।

अइगहिअगरुअमाणेण पुत्ति रासि च्च ठिज्जिहिसि ॥ ५२ ॥

१. 'प्रेमदुर्गया' इति घ-पाठः. २. 'रज्ज' इति घ-पाठः. ३. 'ईश्वरमुताया' इति
ग पाठः. ४. 'सैनपट्ट' इति ग-मुसके, 'सैनपट्ट' इति च घ-मुसके पाठः. ५. 'कोट्य
' अम्भि' इति ग पाठः. ६. 'बिम्बे' इति ग-पाठः. ७. 'अणुणे' इति ग-पाठः.

[मा बुरु प्रतिपक्षसुखमनुनय प्रिय प्रसादलोभयुतम् ।

अतिगृहीतगुरुकमानेन पुनिराशिरिव क्षीणा भविष्यति ॥]

हे पुनिर, प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनम्यावकाशदानेन सुख मा बुरु । प्रसादाभिलाषिण प्रियमनुनय । अतिगृहीतगुरुकमानेन राशिरिव क्षीणा भविष्यति । मापादिराशिरुपरि पापाणादिना नियन्त्रितो यथा क्षीयत इत्यर्थः । अनुनयउन्धोऽसौ मानी न त्वामनुनेष्यतीति भावः ॥

विरहोत्फण्डिताया विरहार्ति व्यञ्जयन्ती दूती तत्कान्तमाह—

विरहकरवत्तदूसहर्षैकालिज्जन्तम्मि तीअ हिअअम्मि ।

अंसू कज्जलमइलं पमाणमुत्तं व्य पडिहाइ ॥ ५३ ॥

[विरहकरपत्रदु सहर्षोत्थमाने तस्या हृदये ।

अश्रु कज्जलमलिन प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभाति ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमाद् गहविरहलक्षणकरपत्रेण पाठ्यमाने तस्या हृदये कज्जलमलिनमश्रु प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभातीति सवन्ध । तदेव विरहविधुरामनुकम्पस्येति भावः ॥

रिदग्धनायिकासमोत्सुकं नायक दूती प्ररोचयितु निवेधमुखेनाह—

दुणिणक्खेवअमेअं पुत्तअ मा सादसं कैरिज्जासु ।

ईत्थ गिहिताई मण्णे हिअआई पुणो ण लब्धमन्ति ॥ ५४ ॥

[दुर्निक्षेपकमेतत्पुत्रक मा साहस करिष्यति ।

अन निहितानि मन्ये हृदयानि पुनर्न लभ्यन्ते ॥]

पुत्रकेति विश्वासार्थं सन्नेहसंयोजनम् । एतद्धृदयनिक्षेपरूप साहस मा करिष्यति । यतो दुर्निक्षेपकमेतदिति योचना । लोकेऽपि यो निक्षेप पुनर्न लभ्यते स दुर्निक्षेप इत्युच्यते । एतेन चाद्वाचातुर्यसौन्दर्यादिभिर्नायिकाया मनोहरत्वं व्यज्यते ॥

रतावसाने नायिकाया अपरितोषमाकलय्य विलक्ष नायकं बोधयितु दूती तस्याविरततादोषपरिहारार्थमाह—

णिध्वुत्तरआ वि वहू मुरअविरामट्ठिई अआणन्ती ।

अविरअहिअआ अण्णं पि किं पि अत्थि त्ति चिन्तेइ ॥ ५५ ॥

१. 'प्रसादलोभयुतम्' इति ग-पाठ. २. 'क्षीयते' इति ग-पाठ. ३. 'पाडि-ज्जन्तस्स तीअ हिअअस्स' इति ग-पाठ. ४. 'पाठ्यमानस्य तस्या हृदयस्य' इति ग-पाठ. ५. 'करिज्जासु' इति ग-पाठ. ६. 'इत्थ' इति ग-पाठ. ७. 'उणो' इति ग-पाठ. ८. 'इद' इति ग-पाठ. ९. 'विणिबुत्त' इति र-पाठ.

[निर्वृत्तरतापि बधूः सुरतविरामस्थितिमजानती ।

अविरतहृदयान्यदपि किमप्यस्तीति चिन्तयति ॥]

एतेन नायकेच्छानुपालनं भोग्यं च नाधिकायाः सूचितम् ॥

भुजंगजनं रोचयितुं कुट्नी वेदयाप्रेमस्तुतिमाह—

नन्दन्तु सुरभुजंगसतहावहराई सअललोअस्स ।

बहुकैअवमग्गविणिम्मिआई वेसाणं पेम्माइ ॥ ५६ ॥

[नन्दन्तु सुरतमुखरसतृष्णापहराणि सकललोकस्य ।

बहुकैतयमार्गविनिर्मितानि वेद्यानां प्रेमाणि ॥]

उत्तममध्यमाधमरूपसकललोकस्य सुरते यः मुखरसस्तत्र या तृष्णा तदपहारकानि यथाभिलषितसपादकानि तथा बहुभिः कैतवमार्गैर्हसितशुष्करदितचादुप्रमुखैर्विनिर्मितानि वेद्यास्त्रीणां प्रेमाणि नन्दन्तु । लामसत्कारदिमात्रि भवन्त्वित्यर्थः । 'सुरतरसरमस-तृष्णापहराणि' इति पाठे सरमसानि च तानि तृष्णापहराणि चेति कर्मधारयः ॥

किमिति त्वं कृशासीति सहासं नायकेन पृष्टा विरहोत्कण्ठिता तमाह—

अप्पत्तमण्णुदुक्खो किं मं किसिअसि पुच्छसि हसन्तो ।

पावसि जइ चलचित्तं पिअं जणं ता तुह फहिस्सम् ॥ ५७ ॥

[अप्राप्तमन्युदुःखं किं मां कृतेति पृच्छसि हसन् ।

प्राप्तमनि यदि चलचित्तप्रियं जनं तदा तव कथयिष्यामि ॥]

प्रियापराधजघित्तशोभो मन्युः । न प्राप्त मन्युस्तु दुःखं येन तारसस्त्रं हसन्तु किं मां कृतेति पृच्छति । हसन्प्रियनेन खेदस्य हृदयवाग्म्यता सूचिता । तदेति । इदानीं कथितेऽपि न ते प्रत्ययो भविष्यति । तवास्थिरश्रेहृत्पान्ममेव दशेति भावः ॥

विरागत जारं विरहोत्कण्ठिता सतिर्वेदमाह—

अवहस्सियऊण सद्धिजम्पिआई जाणं ऐह ण रमिओसि ।

एआई ताई सोकराई संसओ जेहि जीअस्सम् ॥ ५८ ॥

१. 'विनिर्वृत्तरता' इति घ-पाठः. २. 'बहुमग्गविणिम्मिआइ' इति ग-पाठः.
३. 'सुरभाइ' इति ग-पाठः. ४. 'सुरतशुभरग' इति घ-पाठः. ५. 'बहुपतिभान' मार्गविनिर्मितानि' इति ग-पाठः. ६. 'वेद्यावनिताना' इति घ-पाठः. ७. 'सुरतानि' इति ग-पाठः. ८. 'मानदुःख' इति ग-पाठः. ९. 'इहमानः' इति ग-पाठः.
१०. 'प्रमृद्धि सावचलचित्त प्रिय जनं तावयिष्यामि' इति घ-पाठः. ११. 'प्रियाजनं तत्तस्ते कथयिष्ये' इति ग-पाठः. १२. 'एह तुमं रमिओ' इति ग-पाठः.

[अपहस्तयित्वा सखीजल्पितानि येषां कृते न रमितोऽसि ।

एतानि तानि सौख्यानि संशयो वैर्जीवस ॥]

अस्तु तावत्सुखम्, त्वद्विरहादिदानीं जीवितमेव सद्विगममिति भावः ॥

प्रतिवेशिन्यालापच्छलेन दूती मधूकनिकुञ्जे दत्तसकेतं जारमाह—

ईसालुओ पई से रत्तिं महुअं ण देइ उच्चेउम् ।

उच्चेइ अप्पणं बिअ माए अइउज्जुअमुहाओ ॥ ५९ ॥

• [ईर्ष्याशीलः पतिसौखा रात्रौ मधूकं न ददात्युच्चेतुम् ।

उच्चिनोत्यात्मनैव मातरतिऋजुकस्वभावः ॥]

गृहे जायमानस्य जारसमागमस्याज्ञानादजुल्लभावत्वम् । मधूकनिकुञ्जं मा गच्छ
तस्या गृहमेव गच्छेति जारं प्रति व्यज्यते ॥

भूतवस्त्राबलं बलादाकृष्यानुनयमगृहीत्वा गच्छन्ती नायिका नायक आह—

अच्छोडिअवत्थद्वन्तपत्थिए मन्धरं तुमं वच्च ।

चिन्तेसि थणहराआसिअस्स मज्झस्स वि ण भङ्गम् ॥ ६० ॥

[बलादाकृष्टवस्त्रार्थान्तप्रस्थिते मन्धर त्वं व्रज ।

चिन्तयामि स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि न भङ्गम् ॥]

बलादाकृष्टं वस्त्रार्थान्तं वस्त्राबलो यया सा चासौ प्रस्थिता चेति कर्मधारयः ।
अस्तु तावन्मम प्रणयमङ्गः, इतगमनेन स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि भङ्गं न चिन्त-
यसि अहो ते मौग्यमिति भावः ॥

नागरिकः सहचरं प्रत्यात्मनो विज्ञत्वहयापनाय पथिकप्रपापालिकद्वयोरन्योन्यानुस-
गमाह—

उद्वच्छो पिअइ जलं जह जह विरलहुली चिरं पडिओ ।

पावालिआ वि तह तह धारं तणुइं पि तणुएइ ॥ ६१ ॥

[उर्ध्वाक्षः पिबति जलं यथा यथा विरलाहुलिश्चिरं पथिकः ।

प्रपापालिकापि तथा तथा धारां तनुकामपि तनुकरोति ॥]

पिपासापगमेऽपि जलपानच्छलेन मुखावलीकनकुतूहलादूर्ध्वाक्षः पथिको यथा यथा

१. 'अपहस्त' इति घ-पाठः. २. 'इते स्व रमित' इति ग-पाठः. ३. 'ईर्ष्यालु' इति ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ५. 'ऋजुकस्वभावः' इति घ-पाठः. ६. 'अच्छोडिअ' इति ग-पाठः. ७. 'बलात्' इति ग-मुसके नास्ति. ८. 'तन्वी'मपि तन्वी करोति' इति ग-पाठः.

वत्तगलनाय विरसाहुतिः संविरे जलं पिबति तथा तथा प्रपातिकापि तदनुषाण-
न्मुखावलोकनकुतूहलार्थं तनुकामपि धारा तनूरोक्षीलार्थः ॥

कोऽपि वानुरः कामपि दुर्लभां नायिकानुपरावान्तरेण प्राप्तुमसमर्थो मिश्राग्रभं-
ब्बाजेन तदीयवृद्ध गतः । सा च तं दृष्ट्वा स्वयमेव भिक्षां दातुं गता । ततो भिक्षा-
नाय निर्गता वधू विस्मितिं चिरवर्तीति विज्ञायमाना श्वधू प्रति उपगता मिश्राग्रभि-
क्षादाग्रोरन्योन्यानुसारागमाह—

भिच्छात्रो मेच्छद् नाहिमण्डलं क्षावि तस्स मुहअन्दम् ।

तं चटुअं अ करद्धं दोहं वि कामा विलुम्पन्ति ॥ ६२ ॥

[भिक्षावरः प्रेक्षते नाभिमण्डलं सापि तस्य मुखचन्द्रम् ।

तैश्चटुकं च वरद्धं द्वयोरपि काका विलुम्पन्ति ॥]

चटुकं भिक्षादानशयम् । दुर्लभमिति यावत् । वरद्धं भिक्षाग्रहणार्थं च काका वि-
प्लितः । तद्वत्तमत्रं सादृशीलार्थः । द्वयोः परस्परदर्शनेन मिश्राग्रानुसारागमने-
कानां निर्भयत्वमिति भावः ॥

शिवमनुनेतुं प्ररोचयन्ती सरती कलहान्तरितामाह—

मनोरथप्राप्ताविव मनोरथसिद्धिहेतावपि मनोविकारा भवन्तीति निदर्शयन्नागरिक-
सहचरमाह—

फलहीवाहणपुण्याहमङ्गलं लङ्गले कुणन्तीय ।

असईअ मणोरहगभिणीअ हत्था थरहरन्ति ॥ ६५ ॥

* [कार्पासीक्षेत्रकर्पणपुण्याहमङ्गलं लङ्गले कुर्वत्या ।

असत्या मनोरथगभिण्या हस्तौ थरधरायेते ॥]

कार्पासीक्षेत्रकर्पणार्थं पुण्याहं गुमदिने यन्मङ्गलमाटोपनादिना तङ्गले कुर्वत्या
नोरथगभिण्या अस्यां कार्पासवाक्या मया रन्तव्यमिति हृदि न्यस्तमनोरथाया अस-
या कुलटाया हस्तौ थरधरायेते कम्प प्राप्तः ॥

सत्या शिशार्थं सखोजनो धूर्ताचरितमाह—

पहिउहूरणसङ्काउलाहि असईहिं बहलतिमिरस्स ।

आइप्पणेण णिहुअ बहस्स सित्ताई पत्ताइ ॥ ६६ ॥

[पैथिकच्छेदनशङ्काकुलामिरसतीभिर्वहलतिमिरस्स ।

आलेपनेन निमृत्त वटस्य सित्तानि पत्राणि ॥]

उहूरणं छेदनम् । अन्धकारबहुलत्वेन सकेतस्थानस्य वटस्य पत्राणि पथिकारुटे-
तीति शङ्का आकुलामिरसतीभिरालेपनेन द्रुततण्डुलपिष्टेन निमृत्त सित्तानि ।
वयिष्ठशङ्का पान्था न च्छेत्सन्तीति भावः ॥

दन्तधावनार्थं सकेतस्थानकरञ्जशास्त्रामपक्व धार्मिक कुलगा सोशान्ममाह—

भञ्जन्तस्स वि तुह् सग्गगामिणो णइकरञ्जसाहाओ ।

पोआ अज्ज वि धम्मिअ तुह् कइ धरणि विअ ठिवन्ति ॥ ६७ ॥

[भिषतोऽपि तत्र स्वर्गगामिनो नदीकरञ्जशोखा ।

पादावपापि धार्मिक तत्र कथं धरणीमेव स्पृशतः ॥]

कन्तैव स्वर्गं जिगमिषुरप्रशक्त्या स्थितो दूरस्थशाखाभङ्गं कुर्वन् कथमपापि
स्पर्शे न गतोऽमीति भावः ॥

- १ 'फलहीवाहणपुण्याह-' इति ग-याट . २ 'थरधरायेते' इति ग घ-याट .
३ 'पथिकोन्नत' इति ग पाट . ४ 'आलेपनेन' इति घ पट . ५ 'भयं कइ पाआ
भाव वि धम्मिअ धरणि' इति ग-याट . ६. 'भङ्गमानस्य' इति ग घ पट
७ 'शाखाया' इति ग-युल्लके, 'शाखाभि' इति घ घ-युल्लके पट . ८. 'तत्र कथं
पादावपापि धार्मिक धरणीमेव' इति ग-याट . ९ 'अपि' इति घ-याट .

नायिकान्तरप्रलोभनार्थमात्मनः स्थिरचेहतां कानुकतां च नागरिकः सदृशमाह—

अच्छउ देव मणहरं पिआइ सुहदंसणं अइमहरघम् ।

तग्गामछेत्तसीमा वि सत्ति दिट्ठा सुहावेइ ॥ ६८ ॥

[अस्तु तावन्मनोहरं प्रियाया सुहृददर्शनमस्तिमहार्घम् ।

तद्ग्रामक्षेत्रमीमांषि शक्तिं दृष्ट्वा मुस्यति ॥]

सा यत्र ग्रामे वसति तस्य ग्रामस्य यात्रेण तस्य गीमापीत्यर्थः ॥

मृतायामपि जायाया इच्छित्य प्रेम्णः प्रशस्तायाजेन कावि मन्दभेद नायकमभि-
मुखीकर्तुमाह—

कुलटाया सकेतस्थानगमनस्वरार्थं तत्राग्न्यगमननिषेधार्थं च दूती राजिकापत्रचर्च-
णाकुलमर्कटापदेशेन कामार्तनायकस्य सकेतगतस्य स्थितिमाह—

गोलाणइण कच्छे चकरन्तो राइआइ पत्ताइ ।

उप्पडइ भक्कडो खोक्खण्ड पोहू ह पट्टेइ ॥ ७१ ॥

[गोदावरीनद्या कच्छे चरन्त्यराजिकाया पत्राणि ।

उत्पतति भैरवः खोक्खशब्दं करोत्युदरं च ताडयति ॥]

मुहुमुहुरङ्गोविक्रया त्वां पश्यस्त्वयि विलम्बमानायां कामार्तिं नाटयन्नस्तीति भावः ॥
पूषमुभगाया सखी तदलङ्कारेणान्यामसमाना मण्डयितुमिच्छोस्तत्कान्तस्याक्षेपार्थं
स्वभर्तुं श्रेहोचितविधिर्यममाह—

गहवइणा मुअसैरिहड्डुअदाम चिर वहेऊण ।

वैगसआइ णेउण णवरिअ अज्जाघरे वड्डम् ॥ ७२ ॥

[गृहपतिना मृतसैरिर्महदृष्ट्यादां चिरमृद्धा ।

वर्गशतानि नीत्रान्तरमार्यागृहे बद्धम् ॥]

इण्डुभशब्दो गृहदृष्ट्यायां वर्तते । गृहपतिना मृतसैरिभस्य गृहदृष्ट्यायुक्तं दामं चिर-
मृद्धा तत्सदृशापरमहिपालकरणार्थं वर्गशतान्यनेकमहिपयूयानि नीत्वा तत्सदृशापरम-
हिपाश्रया आर्यागृहे अङ्किणयतने बद्धमित्यर्थः । मम भर्ता मृतस्य पशोरपि श्रेहवशे-
नैव कृतम्, ख तु जीवन्नामेव भ्रियभार्यायां तदलङ्कारेणान्यामतदनुरूपामलङ्कृतुमिच्छ-
सीत्यनुचितमेतदिति भावः ॥

सपरनीसपदुक्थोद्विग्नमभिनवमुभगां सान्त्वयन्ती सखी विभवादिपि सौभाग्यं गरीय-
दिति प्रदर्शयन्ती आह—

सिद्धिपेहुणावअसा बहुआ वाहरस गँव्विरी भमइ ।

गअमोत्तिअरइअपसाहण्णं मज्जे सवत्तीणम् ॥ ७३ ॥

[शिखिपिच्छान्तसा चधूर्व्याधिस्य गैर्विता भ्रमति ।

शैजमौक्तिकरचितप्रसाधनानां मध्ये सपत्नीनाम् ॥]

१ 'साइन्' इति घ-पाठ २ 'भक्क' वासते उदरं आहति' इति घ-पाठ
३ 'इण्डुभ' इति ग-पाठ ४ 'वैगसआइ' वि वेग्य णवरं अज्जाघरे वड्डम्'
इति ग-पाठ ५ 'सैरिभइण्डुभदाम चिरं बोण्ड' । यूपशतान्यपि नीत्वा' इति ग-पाठ
'इण्डुभशब्दो बोण्ड्यायां वर्तते । बोण्डा मालामित्तो लोहप्रतिद एव । वयंसाइन्' पणु
गमूहे वर्तते' इति कुड्मालदेव ६ 'गँव्विरी भमए । गअमोत्तागदिजगया' इति
ग-पाठ ७ 'गँव्वीय' इति घ-पाठ ८ 'ग'मुक्काइ'नप्रसा-' इति ग-पाठ .

येन करिवरान्दत्त्वा तत्कुम्भमुक्ताफलैर्युज्य प्रसाधिता स एवेदानीं मत्सभोगातिप्रस
क्षिणीणो मयूरमात्रमारणक्षमः सवृत्त इति सौभाग्येन जातगर्वा भ्रमतीत्यर्थः ॥
कुटनी भुजगप्रोत्साहनार्थमाह—

वङ्कच्छिपेच्छिरीणं बहुलविरीणं वङ्कभमिरीणम् ।

वङ्कहसिरीणं पुत्तज पुण्णेहि जणो पिओ होइ ॥ ७४ ॥

[वक्राक्षिप्रेक्षणशीलानां वैक्रोहपनशीलानां वक्रभ्रमणशीलानाम् ।

वक्रहासशीलानां पुनः पुन्यैर्जनः प्रियो भवति ॥]

वक्रत्वादेः कटाक्षनिरीक्षणं साभिप्रायवचनप्रयोगो विभ्रममहुरं भ्रमणमाशयनिदशक
हसितं वाचः । पुन्यैरिति धन्यस्त्वमसि येनैवविधापि मम दुहिता त्वा प्रत्येवमनुरक्तेति
भावः ॥

विजने गोदावरीतीरलतागृहे ध्यानाद्यवस्थित्या सकेतविप्रकारिण धार्मिकः पुन्यदा
काचिदाह—

१ भैम धम्मिअ धीसत्थो सो सुणहो अज्ज मारिओ तेण ।

गोलाअडविअडकुडङ्गवासिणा दरिअसीहेण ॥ ७५ ॥

[भैम धार्मिक विसृज्य स शुनकोऽद्य मारितस्तेन ।

गोदावरीतीरलतागृहे ध्यानाद्यवस्थित्या सकेतविप्रकारिण धार्मिकः पुन्यदा
काचिदाह—

अत्र लतागृहे सिंहसंचारेण गमननिषेधो व्यज्जतः ॥

निदिताभिप्रायोऽपि मयति बोधयन्वक्षिपरिहासशीलः कमपि युवानमाह—

वाएरिएण भरिअ अरिच्छि कैणऊरउप्पलरण्ण ।

पुंक्कन्तो अयिइह पुंम्बन्तो को सि देवानम् ॥ ७६ ॥

[वातेरितेन भूतमक्षि कैर्णपूरोत्तरजसा ।

पूत्तुयंजवितृष्णं पुम्बन्तो कोऽपि देवानाम् ॥]

वातेरितेन कर्णावतस्त्रीकृतस्त्रोत्पलस्य रजसा भूत नायिकाया अक्षि तदचोपनयनार्थं
पूत्तुयन् पूत्तुकारव्याचनवाधितृष्णं पुम्बन् तदवगोचनकीलुकनानिमिषनयत्वाद्वाचनं
मभ्य कृतमो दवस्त्वम् । प्रतिदानं देवानामेवधिषुपुष्पकशामिवाभावाति भावः ॥

१ 'वक्रोहपनशीलानां' इति ग पाठ, 'वक्रभ्रमणशीलानां' इति च ग पाठ

२ 'धम्मिअ भम' इति ग-पाठ ३ 'धार्मिक भ्रम मिश्रव्य' स आ व्यापारिण
स्तेन । गोदावरीतीरलतागृहे' इति ग-पाठ ४ 'कण्ठरइअउप्पल' इति ग-पाठ.

५ 'पुंक्कन्तअ' इति ग पाठ

६ 'पुम्बन्तअ' इति ग पाठ

७ 'कर्णरविणोत्तर

रजसा' इति ग-पाठ

कान्तानयनत्वरार्थं मदनार्तिमभिनयन्ती प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

सहि दुम्मेन्ति कैलम्बाइ जह म तह ण सेसकुसुमाइ ।

णूण इमेसु दिअहेसु वहइ गुडिआधणु कामो ॥ ७७ ॥

[सखि ब्रूयन्ति कदम्बानि यथा मा तथा न शेषकुसुमानि ।

* नूनमेपु दिवसेपु वहति गुटिकाधनु काम ॥]

गुटिकाकारेण कदम्बकुसुमेन कुममाद्यो मा तापयतीति भाव । एतेन वसन्तापे क्षयापि वषाफाले विरहिणा दुःसह इति ध्वनितम् ।

विरहोत्कण्ठिताया सखी स्त्रीवधपातकभय दर्शयन्ती तत्कान्त तदुपगमनार्थमाह—

णाह दई ण तुम पिओ त्ति को अह्म एत्थ वावारे ।

सा मरइ तुज्झ अँअसो तेण अ धम्मक्खर भणिमो ॥ ७८ ॥

[नाह दूती न त्व प्रियं इति कोऽस्माकमत्र व्यापार ।

सा श्रियते तिरागश्लेष्मं च धर्माक्षरं भणाम ॥]

कोऽस्माकमिति प्रियत्वात्तत्रैव तदनुकम्पनमुचितमित्याशय ॥

कृतचरणपातमनुनयन्त कात खण्डिता युवत्यन्तरसङ्गचिह्नं दर्शयन्ती सोपालम्भमाह—

तीअ मुहाहिं तुह मुई तुज्झ मुहाओ अ भइ चल्हणम्मि ।

ईत्थाहत्थीअ गओ अइदुक्खरआरओ तिलओ ॥ ७९ ॥

[तस्या मुखात्तत्र मुखं तव मुखाच्च मम चरणे ।

हस्ताहस्तिकया गतोऽतिदुर्धकरकारकस्तिलक ॥]

अत्र तिउरीपालम्भच्छलेन युवत्यन्तरसङ्गचिह्नमाविष्कृतम् ॥

इयमस्मिन्नुरक्तेति नागरिक सहचरमवगमयन्माह—

सामाइ सोमलिज्झइ अद्धच्छिपलोइरीअ मुहसोहा ।

जम्बूदलकअक्खणावअसभैरिए हलिअपुत्ते ॥ ८० ॥

- १ 'कअम्बाइ' इति ग पाठ २ 'दिअसेसु' इति ग-पाठ ३ 'दुमनायते' इति ग पाठ, 'दन्त्ययति' इति घ-पाठ ४ 'विरहे' इति ग-पाठ ५ 'वधम्' इति ग पाठ ६ 'तव विरहे' इति ग घ पाठ ७ 'भणामि' इति ग पाठ ८ 'हत्थिव्व' इति ग पाठ ९ 'चरण' इति ग पुस्तके, 'चरणयो' इति च घ पुस्तके पाठ १० 'दुक्खर' इति घ पाठ ११ 'सामलीए' इति ग पाठ १२ 'धमिरे हट्ठिअउत्ते' इति ग-पाठ

[श्यामाया श्यामलायतेऽर्धाक्षिप्रलोकनशीलाया मुखशोभा ।

जम्बूदलवृत्तकर्णवैतसनमणशीले हलिकपुत्रे ॥]

सर्वेतस्थानसूचकेन जम्बूदलवृत्त कृत कर्णवतसो येन तादृशश्चासौ भ्रमणशील
श्वेति कर्मधारय । तथाभूते हलिकपुत्र सति निहवार्यमधाक्षिप्रेक्षणशीलाया श्यामाया
मुखशोभा सर्वेतसमवर्त्तनवैलक्षण्येदेन च श्यामलायते । स्वयमेव मलिना भवती
त्यर्थः ॥

कल्हा तरिता कातानुनयाय दूतीमाह—

दूइ तुम विअ कुसला ककरडमवआई जाणसे वोडुम् ।

कण्डूइअण्डुरं जह ण होइ सह त कैरेज्जासु ॥ ८१ ॥

[दति तमेव पुशला कैर्कशमृदुकानि जानासि वत्तुम् ।

कण्डूयितपाण्डुर यथा न भवति तथा त करिष्यति ॥]

यथा कण्डूयनकौशलेन कण्डू शाम्यति वैष्ण्व च न भवति, तथा त्वमपि मृदुकु
केन तथा वक्ष्यति यथासौ नोद्विजत मा च भजत इत्यर्थः ॥

कमपि बहुवल्लभ नायक प्रति दूती कस्याधिदुरागमाह—

महिलासहस्रभरिण तुह हिअए सुहअ सा अमाअन्ती ।

दिअह अणण्णकम्मा अङ्ग तणुअ पि तणुएइ ॥ ८२ ॥

[महिलासहस्रभृते तत्र हृदये सुभग सा अमाती ।

दिवससर्जनयकर्म अङ्ग तनुकमपि तनूरोति ॥]

अमाती स्थानमलभमाना । दिनस व्याप्य । प्रतिदिनमिति यावत् । प्रतिदिन
स्वत्तमानमोपायचितया क्षीयत इत्यर्थः ॥

कोऽपि कस्याधिदुरागातिशय सूत्रयसहचरमाह—

रणमेत्त पि ण पिट्टइ अणुदिअहविइण्णगरअसतावा ।

पच्छण्णपाअसङ्के व्व सामली मज्झ हिअआओ ॥ ८३ ॥

१ 'श्यामायते श्यामलाया इति ग पाठ' २ 'वतसे भ्रमति इति ग पाठ'

३ 'वत्तुम् । कण्डूइण्डुराण इति क ख पाठ' ४ 'उणेज्जासु' इति क पाठ' ५ 'क'
टिनमृदुकानि इति ग पाठ' ६ 'नानाप इति घ पाठ' ७ 'कण्डूनिपाण्डुरं' इति

क ख पुस्तकयो, 'कण्डूयति पाण्डुर' इति च घ पुस्तके पाठ' ८ 'सुहअ टाणम'
लहती इति ग पाठ' ९ 'सुभगस्थानमलभती' इति ग पाठ' १० 'अनन्यव्या'

पारा' इति ग पाठ' ११ 'हिअआहि' इति ग पाठ

[क्षणमानमपि नैपयात्यनुदिवसवितीर्णगुरुकसंतापा ।

प्रच्छन्नपापशङ्केव श्यामला मम हृदयात् ॥]

अनुदिवसे वितीर्णो गुरुकः संतापो विरहदृष्टः पक्षे अनुस्मरणकृतश्च यथा सा ।
तथा श्यामला श्यामा ॥

वापि मुशीला नाथिवा कृतापराधमनुनयन्तं कान्तं सप्रणयरोपमाह—

अञ्जनां नाहं कुपिता अवऊहसु किं मुधा प्रसादयसि ।

तुह मण्युसमुत्पाअएण मज्झ माणेण वि ण कज्जम् ॥ ८४ ॥

[अञ्जनाहं कुपिता उपगूह किं मुधा प्रसादयसि ।

तव मन्त्रुसमुत्पादकेन मम मानेनापि न कार्यम् ॥]

अनभिज्ञे स्वामिनि मानो निष्फल इति भावः ॥

विरहोत्कण्ठितायाः सखी तत्कान्तमाह—

दीदुहपउरणीसासपआविओ वाहसलिलपरिसित्तो ।

सादेइ सामसवलं च तीएँ अहरो तुह विओए ॥ ८५ ॥

[दीर्घोष्णप्रचुरनिःश्वासप्रतप्तो वाष्पसलिलपरिसिक्तः ।

सौघयति श्यामशवलमिव तस्या अधरस्तनं वियोगे ॥]

श्यामशवलं प्रतविशेषः । यन्नामौ प्रविश्य अले प्रविश्यते ॥

वापि मध्याह्नाभिसारिका 'सकेतितहृदतीरलतागृहमह गता, त्वं तु न गतः' इति जारं
प्रति प्रतिपादयन्ती सत्यपि हृदयस्य स्थिरधेदता सज्जनहृदयप्रशशाद्यतेनाह—

सरए महद्धदाणं अन्ते सिसिराई वाहिरुहाई ।

जाआई कुविअसज्जणहिअअसरिच्छाई सलिलाई ॥ ८६ ॥

[शरदि महाहृदानामन्तः शिशिराणि नहिरुष्णानि ।

जातानि कुपितसज्जनहृदयसैदक्षाणि सलिलानि ॥]

इती कस्याधिन्मौरग्यवर्णनच्छलेन प्रथमाभिसारस्वीकारं सूचयति—

आअस्स किं णु करिदिम्मि किं वोळिस्सं कहुं णु होइहि[इमि]ति ।

पढमुंगगअसासहआरिआइ हिअअं थरहरेइ ॥ ८७ ॥

१. 'नापति' इति ग पाठः. २. 'अञ्जना' इति ख-पाठः. ३. 'कमुक' इति
घ पाठः. ४. 'अवगूहसु' इति ग-घ-पाठः. ५. 'प्रतापितो' इति घ-पाठः. ६. 'परि-
पिक्तः' इति ग-घ-पाठः. ७. 'साधयत्यभिपानीयव्रतमिव' इति ग-पाठः. ८. 'क्षीतानि'
इति ग पाठः. ९. 'सदृशानि' इति ग घ पाठः.

[आगतम् किं नु करिष्यामि किं वैक्ष्यामि कथं नु भविष्यति [इदम्] इति ।
प्रथमोद्धतसोहसरास्त्रिकाया हृदयं यरथरायते ॥]

इदमभियरणसाहसम् । यरथरायते कम्पते ॥

कलहान्तरिताया महिलस्त्वदोषपरिहारार्थं दूती तरकान्तमपृहीतानुनयविलक्ष्माह—

णेउरकोटिविलग्नं चिउरं दइअस्स पाअपडिअस्स ।

हिअअं पउत्थमाणं उम्मोअन्ति विअ कहेइ ॥ ८८ ॥

[नूपुरकोटिविलग्नं चिउरं दयितम् पादपतितम् ।

हृदयं प्रोषितमानमुन्मोचयन्त्येव कथयति ॥]

नूपुरकोटिविलग्नं दयितस्य चिउरमुन्मोचयन्त्येव हृदयं प्रोषितमानं कथयतीति
संबन्धः । अयमाशयः—असङ्गितप्रणया भानिन्यो वाचा मुक्तरागेण वानाविष्टं
प्रसादं चेष्टाविशेषेण निष्कुर्वन्ति । तथा च नूपुरावलम्ब तव केशमुन्मोचयन्त्येव हृदपरि-
रम्भलोउपं हृदयं कथितमेव । त्वया तु तदनुरूपं न कृतम् । अतस्तवैवेदमवैदग्ध्यम्,
न तु तस्या महिलस्त्वदोष इति ॥

दूती कम्पाधिदनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

सुग्गझराअसेसेण सामली तह तरेण सोमारा ।

सा फिर गोळाऊले हाआ जम्बूकसाएण ॥ ८९ ॥

[तवाङ्गरागशेषेण श्यामला तथा खरेण मुकुमारा ।

सा किल गोदाकूले स्नाता जम्बूकपायेण ॥]

कृताङ्गोद्धर्तनस्य तवाङ्गरागशेषेण स्त्रीक्षणेन जम्बूकपायेण सः मुकुमाराङ्गी स्नाते-
त्यर्थः । किलेति स्नानादची किलशब्दः । स्नानच्छलेन तथा त्वदङ्गसङ्गाभिलाषिण्या
तवाङ्गरागोच्छिष्टप्रहणं कृतमिति भावः ॥

बल्लभस्य गोष्ठीनायकता वर्णयन्ती विरहोत्कण्ठिता सखीजनमाह—

अज्ज ज्वेअ पउत्थो अज्ज विअ सुण्णआइं जाआइं ।

रत्थामुहदेउलचत्तराईं अहं च हिअआइं ॥ ९० ॥

[अथैव प्रोषितोऽथैव शून्यवानि जातानि ।

रथ्यामुखदेवकुलचत्तराण्यस्माकं च हृदयानि ॥]

१. 'वक्ष्ये' इति ग-पाठः. २. 'साहसिकाया हृदयं भयेन कम्पते' इति ग-पाठः.
३. 'उन्मूल्यन्त्येव' इति ग-पाठः. ४. 'सुग्गझ' इति ग-पाठः. ५. 'श्यामली' इति ग-
पाठः. ६. 'गोदावरीप्रवाहे' इति ग-पुस्तके, 'गोदावरीतीरे' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याधिद्रविकाया भुजगजनेन क्रियमाणां श्लाघामसहमाना निजगुणगर्वमभिव्य-
जयती काचिदाह—

चिरं हि पि अवाणन्तो लोआ लोएहिं गोरवढमहिआ ।

सोणारतुले व्व निरक्करा वि रन्धेहिं उव्वन्ति ॥ ९१ ॥

[सिद्धिरस्तु इत्यादि] वर्णावलीमप्यजानतो लोका लोकैर्गौरवाम्यधिका ।

सुवर्णकारतुला इय निरक्षरा अपि स्वधैरुह्यते ॥]

यथोक्तार्थकश्चिरदीति देशीशब्द । निरक्षरा अक्षरेखारहिता । पक्षे अविद्या अपि
स्वधैरुह्यते । सादरं नीयत इत्यर्थः ॥

कलहात्तरिताया वात उत्कण्ठाविनोदार्थं सहचरमाह—

आअम्बन्तकपोल खलिअक्करजम्पिंरिं पुरन्तोट्टिम् ।

मा छिवसु त्ति सरोस समोसरन्ति पिअ मरिमो ॥ ९२ ॥

[आताम्रात कपोला स्खलिताक्षरजल्पनशीला स्फुरदोष्ठीम् ।

मा स्पृशेति सरोप समपसर्पतीं प्रिया साराम ॥]

आत्मनो विज्ञावरयापनाय नागरिक सहचरमाह—

गोलाविसमोआरच्छलेण अप्पा उरम्मि से मुक्को ।

अणुअम्पाणिदोस तेण वि सा आढमुवऊडा ॥ ९३ ॥

[गोदावरीविषमावतारच्छलेनात्मा उरसि तस्य मुक् ।

अनुकम्पानिर्दोष तेनापि सा गाढमुपगूढा ॥]

मदश्लेह नायक दूती नायिकानुरागकथनेनानुकूलयितुमाह—

सा तुइ सहत्थदिण्ण अज्ज वि रे सुहअ गंधरहिअ पि ।

उव्वसिअणअरर्धरेदेवदे व्व ओमालिअ वहइ ॥ ९४ ॥

[सा त्वया सहस्रदत्तामद्यापि रे सुभग गंधरहितामपि ।

उद्धतितनगरगृहदेवतेव अवमालिका वहति ॥]

- १ 'विणद' इति ग पाठ २ 'विनतिमप्यजानतो' इति ग पुस्तके, 'वर्णमप्यजा-
नतो' इति च घ पुस्तके पाठ विनति सिद्धिपादिकां सिद्धिरस्तु इत्यादिकाम् इति
बुलबालदेव ३ 'गौरवाम्यार्हिता' इति घ पुस्तके, 'गौरवेणार्हिता' इति च ग
पुस्तके पाठ ४ 'अक्षरेखारहिता' इति कुल १ देव ५ 'आताम्रायमाणकपोलां'
इति घ पाठ ६ 'जल्पिनी स्फुरदोष्ठीम्' इति ग पाठ ७ 'स्मरामि' इति ग पाठ
८ 'गाढ' इति ग पाठ ९ व्याजेन इति ग पाठ १० 'अचरदिअ' इति ग
पाठ ११ 'हरदेवते' इति ग पाठ १२ 'देवतामिव नवमालिका' इति घ-पाठ

परिवानेन पर्युषितत्वेन च मर्दिता माला अवमालिका । रे मुभगेति सखेद संबो
धनम् । सा मुन्दरी त्वया स्वकेशपादादाकृष्य सहस्रदत्तां गन्धरहितामप्यवमालिका
त्वत्करस्पर्शबहुमानाद्यापि बहति । उद्वसितनगरगृहदेवतेष्वेति । अयं भावः—त्वद्विर-
हादिदानीमकृतप्रसाधना सहजसौन्दर्यमाग्राभरणा त्वद्गतचित्ततया निर्जालेह्यपुत्रि-
केव शोच्या दशामुग्गता, अतस्त्वामनुकम्पस्वेति भावः ॥

मानप्रदणार्थं शिक्षयन्ती मन्धुपुरंध्री काचिदाह—

केलीअ वि रूसेउं ण तीरए तम्मि चुक्खिणअम्मि । ,

जाइअएहिं य माए इमेहिं अवसेहिं अङ्गेहिं ॥ ९५ ॥

[केलीअपि रूषितुं न शक्यते तस्मिंश्च्युतविनये ।

याचितकैरिव मातरेभिरवशैरङ्गैः ॥]

च्युतविनये रत्निलौल्यलङ्घितलज्जे तस्मिन् याचितकैरिव अभ्यर्थ्यानीतेरिव एभिरव-
शैरस्वाधीनैरङ्गैर्हं मातः, कैस्या परिहासेनापि रोषः कर्तुं न शक्यत इत्यर्थः । एतेन
वान्ते प्रणयातिशयो व्यज्यते ॥

कामुकजनानुरञ्जनार्थमात्मनो विपरीतरताभिज्ञतां सूचयन्ती काचिदुपुञ्जया
कीडन्ती कालिका निवारयन्तीमाह—

उप्फुल्लिआइ सेल्लउ मा णं चारेहि होउ परिऊढा ।

मा जहणभारगरुई पुग्गिआअन्ती किलिम्मिहिइ ॥ ९६ ॥

[उत्फुल्लिकया खेलतु मैत्रा वारयत भवतु पैरिक्षामा ।

मा जघनभारगुर्वी पुरुषायितं धुर्मती क्लमिष्यति ॥]

पारोषविष्टानां मुहुः पवनोत्पतनरूपा कीड उप्फुल्लिकेत्युच्यते । भवत्विति । धमेन
जितश्वासा कुशमध्या च भवत्विति भावः ॥

शीलखण्डनविलक्षायाः कुलजायाचितसमाधानार्थं तत्पक्षपातिनी काचिदाह—

पउरजुवाणो गामो महुमासो जोअणं पई ठेरो ।

जुण्णमुरा साहीणा असई मा होउ किं मरउ ॥ ९७ ॥

१. 'जाअइ अग्निव माए' इति ग-पाठः. २. 'कीडयापि' इति ग-पाठः. ३. 'रो-
षितुं' इति घ-पाठः. ४. 'शक्नोमि' इति ग घ-पाठः. ५. 'अपगतविनये' इति
ग-पुस्तके, 'गतविनये' इति च घ पुस्तके पाठः. ६. 'जायतेऽस्माकं मातरेभि' इति
ग पाठः. ७. 'परिगूढा' इति घ-पाठः. ८. 'पुरुषायन्ती क्लमिष्यति' इति घ-पाठः.

[प्रचुरयुवा ग्रामो मधुमासो यौवन पति. स्वविर. ।

जीर्णसुरा स्वाधीना असती मा भवतु किं ग्रिथिताम् ॥]

तदेवमप्रतीकारदारुणेषु विनाशकारणेषु सत्सु शीलसंश्लेषेनापराधापादकमिति भावः॥

नायकस्य मनोहरणार्थं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

वहसो वि कहिज्जन्तं तुह अवणं मज्झ हत्थसंदिट्ठम् ।

ण सुअ त्ति जैम्पमाणा पुणरुत्तसअं कुणइ अज्जा ॥ ९८ ॥

[वहसोऽपि कथ्यमान तव वचन मम हस्तसंदिष्टम् ।

नै ध्रुतमिति जल्पन्ती पुनरुक्तसतं करोत्यार्या ॥]

पुन पुन ध्वयानुरागाच्छ्रुतमपि न ध्रुतमित्येव वदतीति भावः ॥

दूती कस्याश्चित्कुलजाया कमपि युवान प्रत्यनुरागं सवरणमैशं च्छं चाह—

पाअडिअणेहसव्भावाणिवमर तीअ जह तुम दिट्ठो ।

संवरणवावडाए अण्णो वि जणो तह व्वेअ ॥ ९९ ॥

[प्रकटितस्नेहसङ्क्रान्तिर्भर तया यथा त्व दृष्ट ।

सवरणव्यावृत्तया अन्योऽपि जनैस्तथैव ॥]

एतस्मिन्ननुरक्तेयमिति कथिन्मा ह्यासीदिति सवरणार्थमन्योऽपि तथैव दृष्ट इत्यर्थः ॥

प्रसवानन्तरं स्वामिना सनिधिं परित्याजिता काचित्पुत्रस्य दन्तोद्गमकथनच्छलेन सभोगयुयानुभवसमयश्रुतिमाह—

गेह्णह पलोअह इमं पहसिअवअणा पइस्स अण्णेइ ।

जाआ सुअपढमुठिभण्णदन्तजुअलक्खिअ चोरम् ॥ १०० ॥

[शृङ्गीत प्रलोकयतेदं ग्रहसितवदना पतुरर्पयति ।

जाया सुतप्रथमोद्भिन्नदन्तयुगलाङ्कित वंदरम् ॥]

जाया इह वदरं वृद्धित प्रलोकयतेति पतुरर्पयतीति खण्डः । स्वयमेव क्षतं सप्राप्य पुत्रेण क्षतमिति मिथ्यैव दर्शयतीति ग्रहसितवदनेति पदेन ध्वन्यते ॥

१. 'प्रचुरयुवको' इति ग घ पाठ २. 'समस्त' इति घ पाठ ३. 'जम्पमाण' इति ग घ पाठ ४. 'न शृणोति जल्पमान' इति ग घ पाठ ५. 'करोतीश्वरसुता' इति ग घ पाठ ६. 'निर्भरतया' इति ग घ-पाठ ७. 'जनस्तथायिव एवम्' इति ग-पुस्तके, 'जन कथ तथैव' इति च घ-पुस्तके पठ ८. 'मन्द प्रलोक्ष्ये' इति घ-पाठ ९. 'विहसित' इति ग-पाठ १०. 'पतुरात्मनि' इति घ-पाठ ११. 'वदनम्' इति क घ-पाठ

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।
सत्तसअम्मि समत्तं वीअं गाहासअं एअम् ॥ १०१ ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविरसलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सतशतके समाप्तं द्वितीयं गाथाशनकमेतत् ॥]

तृतीयं शतकम् ।

मिध्वा जनो वदतीत्यनुनयन्तं कान्तं मानिनी सप्रणयरोपमाह—

अच्छउ ता जणवाओ हिअअं विअ अत्तणो तुह पमाणम् ।

तह तं सि मन्दणेहो जह ण उवाल्मम्भजोग्गो सि ॥ १ ॥

[अस्तु तौजनवादो हृदयमेवात्मनस्तत्र प्रमाणम् ।

तथा त्वमसि मन्दब्रेहो यथा नोपालम्भयोग्योऽसि ॥]

अयमस्यो मन्दब्रेह इत्येवंरूपो जनवादोऽस्तु तावत् । हृदयमेवेति । आत्महृदयेनैव
त्व जानासीत्यर्थः । यथेति । शिष्यो हि दाक्षिण्येनोपालम्भं सहते, त्व तदस्तीति इति
नोपालम्भयोग्य इति भावः ॥

हृदयोपालम्भच्छेदेन यथाभिमतवान्ताप्राप्तिं सूचयन्ती पुलटा कमपि युवानं
रोचयितुमाह—

अप्पच्छन्दपहाविर दुहहल्लम्भं जणं वि सग्गन्त ।

आआसपहेहिं भमन्त हिअअ कइआवि भजिहिसि ॥ २ ॥

[आत्मच्छन्दप्रधावनशील दुर्लभलम्भं जनं [अपि] मृगयमाण ।

आकाशपथैर्मन्दहृदय कदापि भङ्गपथे ॥]

स्वेच्छाच रित्सूचनायैमात्मच्छन्दप्रधावनशीलेति संबोधनम् । दुर्लभस्य गुरतमु-
रस्य लम्भः प्राप्तिर्यस्मात्तावत् । आकाशपथैर्निरवलम्बनमार्गभ्रमत् । दृष्टीप्रमुखोपाया-
दिनि भावः । पाठान्तरे आयागवशैरित्यर्थः । कदापीत्यपिशब्दः संभावनायाम् । क-
सत्तु मुमगो यस्तव भ्रमणं शमयिष्यतीति भावः ॥

१. 'विनिर्मितौ' इति ग-पाठः. २. 'तत्' इति ग पाठः. ३. 'आत्मच्छन्दप्रम-
विषु दुर्लभलम्भं जनं निमार्गमानः ।—कदापि दशमे ॥' इति ग पुस्तके, 'आत्मच्छ-
न्दप्रभावशीले दुर्लभलम्भं जनमपि मार्गमाणः । अशपथैर्दयक्रियापि भग्न भवति ॥
इति च घ पुस्तके पाठः.

कापि गुणगर्विता गणिका सकृत्प्रसूतं पथान्मन्दादरं भुजंगं निन्दन्ती दूतीमाह—

अहव गुणञ्चिअ लहुआ अहवा गुणअणुओं ण सों लोओ ।

अहव क्षि णिगुणा वा बहुगुणवन्तो जणो तस्स ॥ ३ ॥

[अथवा गुणा एव लघवोऽथवा गुणज्ञो न स लोकः ।

अथवाक्षि गुणानि वा बहुगुणवाञ्जनस्तस्य ॥]

तस्य जनः प्रियारूपो बहुगुणवान्वेति योजना । येन मा न बहु मन्यत इत्यभिप्रायः ॥

अन्यासत्तं प्रियमात्मनो दुःखाभिव्यञ्जनेन कथं निवारयसीति वदन्ती मातुलानी
कापि प्रियस्यास्निग्धतां सूचयन्ती स्थान्तेन सनिर्वेदमाह—

फुटन्तेण वि हिअएण मामि कह्णिअवरिज्जिण तम्मि ।

आदंसे पडिबिम्बं व्व जम्मि दुःखं ण संरुमइ ॥ ४ ॥

[स्फुटतापि हृदयेन मातुलानि कथं निवेद्यते तस्मिन् ।

आदर्शे प्रतिबिम्बमिव यस्मिन्दुःखं न संक्रामति ॥]

प्रयत्नसाधितामपि युवतीं विमृश्यकारितया नोपगच्छन्त नायकमुत्साहयितुं दूती
सौपालम्भमन्यायदेशेनाह—

पासासङ्की काओ णेच्छदि दिण्णं पि पहिअघरणीय ।

ओअन्तकरअलोगलिअवलअमज्झट्ठिअं पिण्डम् ॥ ५ ॥

[पाशाशङ्की काको नेच्छति दत्तमपि पथिकगृहिण्या ।

अवनतकरतलायगलितवलयमध्यस्थितं पिण्डम् ॥]

यथा पथिकगृहिण्या दत्तमप्यवनतादधोमुखीकृतात्करतलाद्गलितस्य वलयस्य मध्ये
स्थितं भक्तपिण्डं काकः पाशाशङ्कया नेच्छति तथा त्वमप्येना मया दीयमानामपि भय-
पाशङ्क्या परिहरसीति भावः ॥

१. 'गुणअणुओ' इति ग-पाठः. २. 'णिगुणाओ' इति ग-पाठः. ३. 'गुणार्णवो
न स लोकः' । अथवा वयं निर्गुणा अधिकगुणः स जनस्तस्य ॥' इति घ-पुस्तके, 'गुणज्ञ
एव न स जनः । अथवा वयमेव निर्गुणा बहुगुणवन्तो जनास्तस्य ॥' इति च ग-पुस्तके
पाठः. ४. 'अहए' इति ख-ग-पाठः. ५. 'स्फुटितेनापि हृदयेन कथं भगिनि निर्वृतीभूयते
तस्मिन् ।' इति ग-पुस्तके, 'स्फुटितेनापि हृदये मातुलि कथं निवारिते तस्मिन् ।'
इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'अवदसे प्रतिबिम्बमिव' इति घ-पाठः. ७. 'नेच्छद' इति
ख-ग-पाठः. ८. 'ओअन्त' इति ग-पाठः. ९. 'न स्पृष्टति दत्तमपि बाले' इति
ग-पाठः. १०. 'उन्नत' इति घ-पाठः.

प्रेषितभक्तकाया सखी तत्कालतस्यागमनवसार्थं त एभीगमिन पायमाह—

ओहिदिअहागमासकिरीहिं सहिआहिं कुँडुलिहिआओ ।

दोसिणिण तहिं विअ चोरिआए रेहा पुसिज्जन्ति ॥ ६ ॥

[अवधिदिवसागमाशङ्किनीभि सखीभि कुँडुलिहिता ।

द्विनास्तनैव चोरिकया रेखा प्रोक्ष्यत ॥]

अवधिदिनेऽपि त्वयि नागच्छति नूनमिय प्राणानपि न्याप्ति भाव ॥

कोऽपि कामुकश्च द्रवर्णनच्छलेनामनोऽभिप्राय प्रकाशयतायिकामाह—

तुह मुहसारिच्छ ण लहइ सि सपुण्णमण्डलो विहिणा ।

अण्णमअ एव घटइउ पुणो वि खण्डिज्जइ मिअद्धो ॥ ७ ॥

[तत्र मुखसादृश्यं न लभत इति सपूणमण्डले विधिना ।

अन्यमयमिन् घटयितुं पुनरपि खण्ड्यते मृगाङ्ग ॥]

अन्यमयमन्यप्रकारम् ॥

प्रामातृरगमनाय कृतप्रस्थानस्य गेहातरे स्थितस्य नायकस्य गमननिषेधार्थं सखी तत्रियावृत्ता तमाह—

अज्ज गओत्ति अज्ज गओत्ति अज्ज गओत्ति गणरीए ।

पढम त्रिअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्तलिओ ॥ ८ ॥

[अथ गत इत्ययं गत इत्ययं गत इति गगनशीलया ।

प्रथम एव दिवसा ई कुँडु रेखाभिधितम् ॥]

तद्वत् त्वद्विरहविह्वलां तां विहाय गन्तुं नोचितमिति भावः ॥

पूवमकृतस्त्रीकाराया पथाक्षिरप्र र्यनया स्त्रीकारे कृतवत्या प्रथमतमागम एव नायकगुणरजिताया प्रथमास्त्रीकारचरितविरुद्ध वदनमागम्य निजगुणगावतो नायकं स हचरमाह—

ण वि तह पढमसमागमसुरअमुह पाविएवि परिओसो ।

जेह वीअदिअह सत्रिलकरलकिरण ए वअणकमलम्मि ॥ ९ ॥

१ तत्र अत्रिहिआए इति ग-पाठ २ सखी तन्मीय सख्याभिरस्य प्रोक्ष-
न्त्या । द्विनास्तनैव चोरिकया रेखा प्रक्षिप्यत ॥ इति ग-पाठ ३ त्रितिलि-
हिता । द्वित्रिलमेव गता तस्या रेखा प्रकाशयत ॥ इति घ-पाठ ४ 'पुन पुन'
इति घ-पाठ ५ गओ इति इति ग-पाठ ६ त्विसद इति ग-पाठ ७ कुणो
रेखाभिधितम् इति ग-मुद्रक मित्ता रेखाभिधितम् इति च घ-मुद्रक
पाठ ८ 'मुहेणवि परिओसो इति ग-पाठ ९ जह वीअदि अहरम्मे पुम्बणव
टिए वअणकमलम्मि' इति ख-पाठ

[नापि तथा प्रथमसमागमसुरतसुखे प्राप्तेऽपि परितोषः ।

यथा द्वितीयदिनसप्तमिलक्षलक्षिते वदनकमले ॥]

अपि सत्त्वं कुसुममया बाणा मन्मथस्येति सरया पृष्टा सखी सवैदग्ध्यं तामाह—

जे^३ संमुहागअयोल्हन्तवलिअपिअपेसिअच्छिविच्छोहा ।

अह्मं ते मअणसरा जणस्त जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥

[ये^४ संमुहागतव्यतिक्रान्तवलितप्रियप्रेषिताक्षिविशोभाः ।

अस्कारं ते मदनसरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

समुहागतेन व्यतिक्रम्य गच्छता परिरुत्तेन प्रियेण प्रेषिता ये अक्षिविशोभा
लीलातरलकटाक्षा इत्यर्थः ॥

कामपि रमणीं प्रति सामिलापः कथिदात्मनोऽभिप्रायं प्रकाशयन्नाह—

इअरो जणो ण पावइ तुह जघणारुहणसंगमसुहेहिम् ।

अणुहवइ कणअडोगे हुअवहवरुणार्णं माहप्पम् ॥ ११ ॥

[इतरो जनो न प्रोप्नोति तत्र जघनारोहणसंगमसुखकेलिम् ।

अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोर्माहात्म्यम् ॥]

तत्र जघनारोहणपूर्वकेण संगमेन यत्सुखं तदितरो जनोऽभिगमनीयाश्च्यवनतरङ्गितो न
प्राप्नोति । सुहृत्सौ सुदुर्जले प्रवेशस्य फलं कनकदोरोऽनुभवतीत्यर्थः ॥

कामुक प्ररोचयितुं दूती नायिकायाः सौभाग्यवतिशयनाह—

जो जरस विहवसारो तं सो देइ त्ति किं त्थ अच्छेरम् ।

अणहोन्तं पि खु दिण्णं दोहग्गं तइ सबत्तीणम् ॥ १२ ॥

[यो यस्य विभवसारस्तं स ददातीति निमग्नार्थम् ।

अभयदपि खलु दत्तं दौर्भाग्यं त्वया सेयलीनाम् ॥]

अभयं अनिश्चयानाम् ॥

१. 'मुखेनऽपि भवति परितोषः' इति ग पुस्तके, 'मुखेन विद्यते परितोषः' इति च
इ पुस्तके पाठः. २. 'द्वितीयदिनसप्तमिलक्षं लक्षिते' इति ग पुस्तके, 'द्वितीयतरांशमे
पुनरलक्षिते' इति च घ पुस्तके पाठः. ३. 'जे समुहागअ' इति ग-पाठः. ४. 'क्षे
मुहागतव्युत्क्रान्तवलितप्रियप्रेषिताक्षि' इति ग-पाठः. ५. 'प्राप्यते' इति घ पाठः.
६. 'कनकमूर्धं हुतवहवरुणसंगममाहात्म्यम्' इति घ-पाठः. ७. 'ज जरस विभवसारं' इति
घ पाठः. ८. 'एतय' इति ग पाठः. ९. 'दयस्य विभवसारे तत्स' इति ग-पाठः.
१०. 'अविद्यमानमपि' इति घ पाठः. ११. 'सपत्नीभ्यः' इति घ-पाठः.

प्रोषितः कश्चिदुत्कण्ठाविनोदनार्थं प्रियां सारन्सहचरमाह—

चन्दसरिसं मुहं से सरिसो अमभस्स सुहरसो तिससा ।
सकअग्गहरहंसुजलचुम्बणअं कस्स सरिसं से ॥ १३ ॥

[चन्द्रसदृशं मुखं तैस्याः सदृशोऽमृनसः सुहरसस्तस्याः ।
सकचग्रहरभसोज्ज्वलचुम्बनक कस्य सदृशं तैस्याः ॥]

विमृश्यकारिणं नायकमुत्सादयितुं दूयाह—

उप्पण्णत्थे कज्जे अइचिन्तन्तो गुणागुणे तम्मि ।

चिरैआलमन्दपेच्छित्तणेण पुरिसो हणइ कज्जम् ॥ १४ ॥

[उत्पन्नार्थे कार्येऽतिचिन्तयन्गुणागुणौ तस्मिन् ।

चिरकालमन्दप्रेक्षित्वेन पुरुषो हन्ति कार्यम् ॥]

उत्पन्नः सिद्धोऽर्थोऽभिलषितपदार्थो यत्र तस्मिन् । फलाभिमुखे कार्यं इति यावत् ॥
विरहमसहनाया कापि प्रणयकुपितं कान्तमनुनयन्त्याह—

वालअ तुमाहि अहिअं णिअअं विअ बलहं महं जीअम् ।

तं तइ विणा ण होइ त्ति तेण कुविअं पसाएमि ॥ १५ ॥

[बालक त्वत्तोऽधिकं निर्जकमेव बलभं मम जीवितम् ।

तत्त्वया विना न भवतीति तेन कुपितं प्रसादयामि ॥]

प्रथमं कुपितां चरणप्रणामोत्तरं प्रसन्नां 'मिध्याखलपचनदूषितचित्तया मया खेदि-
तोऽसि' इति वदन्तीं प्रिया प्रियः पुनरपि खलवचने प्रत्येधसीति काकुत्स्था विधिमुखेन
निषेधयन्त्याह—

पत्तिअ ण पत्तिअन्ती जइ तुज्झ इमे ण मज्झ रअईए ।

उट्ठीअ वाहविन्दू पुलउब्भेएण भिज्जेन्ता ॥ १६ ॥

१. 'रहस्यज्वलचुम्बणं' इति ग-पाठः. २. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ३. 'रमसो-
लचुम्बनं' ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ५. 'अइ सुन्दर सहपेच्छित्तणेण'
इति ग-पाठः. ६. 'उपन्यस्ते' इति घ-पाठः. ७. 'चिन्तयमान' इति ग-पाठः.
८. 'अतिगुन्दरलक्षणप्रेक्षित्वेन' इति ग-पुस्तके, 'चिरकालगुण्यप्रेक्षित्वेन' इति च घ-
पुस्तके पाठः. ९. 'त्वत्तोऽप्यधिक' इति ग-पाठः. १०. 'नियतमेव' इति घ-पाठः.
११. 'पतंअ ण पत्तिअन्ती' इति ग-पाठः. १२. 'भिज्जेन्तो' इति ग-पाठः.

[प्रतीहि न प्रतीयन्ती यदि तवेमे न मम रोदेनशीलाया ।

पृष्ठस्य बाष्पविन्दव पुलकोद्भेदेन भिद्यमाना ॥]

प्रतीहि प्रलयं कुर्विति सशिरश्चालनकाकृषत्या खल्वचक्षि प्रत्ययमयदापि न करि
प्यसीत्यर्थः । एतदेव द्रष्टव्यमाह—न प्रतीयन्तीत्यादिना । रोदनशीलायास्तव इमे बाष्प
विन्दवो मम पृष्ठस्य पुलकोद्भेदेन यदि न भिद्यमाना भिन्ना नामविष्यन्, तदा त्व न
प्रतीयन्ती प्रलय नाकरिष्य एवेत्यर्थः । तवाश्रुजलस्पर्शादपि मम पृष्ठ पुलक सजातः ।
तत्किं खल्वचक्षामामननुरक्त कलयसीति भावः ॥

नायकस्य रुदसौहृदमिच्छन्ती नायिका दूर्तिं सदृष्टान्तमाह—

त मित्त काअठ्व ज किर वसणम्मि देसआलम्मि ।

आलिहिअभित्ति वाउल्लअ व ण परम्मुह ठाइ ॥ १७ ॥

[तन्मित्रं कर्तव्यं रैतिकल व्यसने देशकालेषु ।

आलिखितभित्तिपुत्तलकमिव न पराश्रुस्त तिष्ठति ॥]

व्यसने विपदि । देशे देशांतरे काले यौवनाद्यपगमे । वाउल्लअ पुत्तलिकेति देशी ॥

निष्ठतमपि धूर्ता वलयन्तीति विज्ञत्वा व्यापयन्नागरिकं सहचरमाह—

बहुआइ णइणिउअ पडमुग्गअसीलखण्डणविलक्खम् ।

उडेइ विहगउल हा हा पक्खेहि व भणन्तम् ॥ १८ ॥

[वध्वा नदीनिकुञ्जे प्रथमोद्गतशीलखण्डनविलक्षम् ।

उड्डीयते विहगकुल हा हा पक्षीरिव भणन् ॥]

पक्षीर्ह्येति भणदिवेति योजना ॥

प्रोपितभर्तृकाया सखी तत्कालमागमनत्वरार्थमाह—

सच्च भणामि बालअ णत्थि अंसक्क वसन्तमासस्स ।

गन्धेण कुरवधाण मण पि असइत्तण ण गजा ॥ १९ ॥

[सत्यं भणामि बालक नारत्यैशक्य वसन्तमासस्य ।

गन्धेन कुरवकाणा मनागप्यसतीत्व न गता ॥]

१ 'प्रतीहि न प्रलयमस्या' इति ग पुस्तके, 'प्रतीय न प्रतीयन्ती' इति च घ
पुस्तके पाठः २ 'रुद'त्या' इति ग पाठः ३ 'पृष्ठे' इति ग पुस्तके, 'पृष्ठीय'
इति च घ पुस्तके पाठः ४ 'मिघेरन्' इति ग पुस्तके, 'भिन्ना' इति च घ पुस्तके
पाठः ५ 'वाउल्लओ' इति ग-पाठः ६ 'यदेव' इति ग पाठः ७ 'देशकालयो'
इति घ पाठः ८ 'अलिखितविषयक इव' इति ग-पाठः ९ 'उड्डीयते' इति ग
पाठः १० 'असज्ज' इति ग पाठः ११ 'असाप्य' इति ग-पाठः

नास्त्यशयमिति यथा च स्थलितमेव मन इति भावः । मनागपीति त्वदागमनप्रत्या-
शया शीलं रक्षतीत्यर्थः । तथावदस्याः शीलखण्डनं न भवति तावत्परितं संभावयैना-
मिति भावः ॥

नायक प्रति दूती कस्याधिदुःखरागातिशयमाह—

एकैकभवेद्वेष्टनविवरन्तरदिग्गतरलणअणाए ।

तइ बोल्हन्ते घालअ पञ्जरसडणाइअं तीए ॥ २० ॥

[एकैकभवेद्वेष्टनविवरान्तरदत्ततरलनयनया ।

त्वयि द्यैतिकान्ते बालक पञ्जरशकुनायित तथा ॥]

एकैकस्मिन् वृत्तिवेष्टनस्य विवरान्तरे दत्त तरल नयन यथा एतादृश्या तथा पञ्ज-
रशकुनवदाचरितम् । यथा पञ्जरबद्धः पक्षी प्रतिविवरे दत्तदृष्टिर्भ्रमति तथा तथापि स्वर-
शेनलालसया भ्रान्तमित्यर्थः ॥

तद्देहमार्गेण गतोऽप्यहं तथा न दृष्ट इति वदन्तमुपनायकः दूती नायिकादोषं परि-
हरन्माह—

ता किं करेउ जइ सं सि तीअ चइवेष्टपेलिअथणीए ।

पाअहुठद्धक्खिरत्तणीसहङ्गीअ वि ण दिट्ठो ॥ २१ ॥

[तत्किं करोतु यदि त्वैममि तथा वृत्तिवेष्टनप्रेरितसन्तया ।

पादाहुष्ठार्धक्षिप्तानि सहाङ्ग्यापि न दृष्टः ॥]

वृत्तिवेष्टनस्योक्तया वृत्तयज्ञयापि तथा यदि न दृष्टस्तदा कस्यस्या दोष इति भावः ॥

पयिकजायागिलापिण कामुकं दूती नायिकाया निजनायकेऽगुरागातिशयसूचनेना-
साध्यत्वं प्रतिपादयितुमाह—

पिअसंभरणपलोद्वन्तवाहधाराणिवाअभीआए ।

दिज्जइ वद्धग्गीवाएँ दीवओ पडिअर्जाआए ॥ २२ ॥

[प्रियसंस्मरणप्रैक्षितद्राव्यधारानिपातंभीतया ।

दीपते यक्ष्मीयया दीपकः पयिकजायया ॥]

१. 'वद्वेष्टनविवरन्तरतरलदिग्गतरलणअणाए' इति ग-पाठः. २. 'एकैकभवेद्वेष्टन-
विवरान्तरतरलदत्तनयनया' इति घ-पाठः. ३. 'स्युत्कामति' इति ग-पाठः. ४. 'वे-
क्षण' इति क-पाठः. ५. 'तथा त्वममि' इति ग-पाठः. ६. 'प्रेरितसन्तया' इति ग-
पाठः. ७. 'निक्षिप्त' इति ग-पाठः. ८. 'परणीए' इति ग-पाठः. ९. 'प्रियस्मरण-
प्रत्यागतवन्त्य' इति ग-पाठः. १०. 'प्रगल्भ्या' इति घ-पाठः. ११. 'पयिकपुद्गल्या'
इति ग-पाठः.

कमपि युवानमनुरजयितुं दूती कस्याश्चित्केहदैन्यमूचकं परिवृत्त्यावलोकनमाह—

तद् धोलन्ते बालञ्च तिरस्ता अङ्गाँ तद् णु बलिआइ ।

जह् पुट्टिमज्झणिषतन्तवाहधाराओं दीसन्ति ॥ २३ ॥

[त्वयि व्यतिक्रामति बालक तस्या अङ्गानि तथा नु बलितानि ।

यथा पृष्ठमध्यनिपतद्वाष्पधारा दृश्यन्ते ॥]

बलितानि परिवृत्तानि ॥

कपि प्रियतमविरहस्य दुःसहस्वमन्यापदेशेनाह—

ता मेज्झिमो विअ वरं दुज्जणसुअणेहिं दोहिं वि ण कज्जम् ।

जद दिट्ठो तवइ खलो तहे अ सुअणो अईसन्तो ॥ २४ ॥

[तन्मध्यम एव वरं दुर्जनसुजनाभ्यां द्वाभ्यामपि नै कार्यम् ।

यथा दृष्टस्तोषयति खलस्तथैव सुजनोऽदृश्यमान ॥]

काप्यात्मनः पतिं साभिलाषमवलोक्य-तीं सैर्ध्वमाह—

अद्धच्छिपेच्छिअ मा करेहि साहाविअ पलोएहि ।

सो वि सुदिट्ठो होहिइं तुम पि मुद्धा कलिज्जिहिंसि ॥ २५ ॥

[अर्धाक्षिप्रेक्षितं मा कुरु स्वामाधिकं प्रलोकय ।

सोऽपि मुदष्टो भविष्यति त्वमपि मुग्धा कलिभ्यसे ॥]

अर्धाक्षिप्रेक्षितं कटाक्षनिरीक्षणम् ॥

श्रोणितं कथितकुलपालिकाया निजवनितायाश्चरितमनुसारन्वयस्यमाह—

दिअह् सुडकिआए तीए काऊण गेहवावारम् ।

गरुए वि मण्णुडु खे मरिमो पाअन्तसुत्तस्स ॥ २६ ॥

[दिवसं रोषमूकायास्तस्या कृत्वा गेहव्यापारम् ।

गुरुकेऽपि मन्नुडु खे स्मराम पादान्तमुत्तस्य ॥]

सुडकिआ रोषमूका । गुरुके मन्नुडु खे दिवसं व्याप्य गेहव्यापारं कृत्वा रोषमूका

‘स्तस्या’ पादान्तशयनं स्मराम इति संबन्धः ॥

१ ‘व्यतिक्रामे’ इति ग-पाठः २ ‘मज्झिमो’ इति ग-पाठः ३ ‘न मे कार्यम्’
इति ग-पाठः ४ ‘तपति’ इति घ-पाठः ५ ‘हो इहि’ इति क-पाठः ६ ‘कुरुष्व’
इति ग-पाठः ७ ‘दिवसं व्याप्य’ इति क-ख-ग-पाठः ८ ‘कृपिताया’ इति
ग-पाठः

कमप्यनुरक्त धनिकमधमस्त्रीसहस्रोपेण परिहरन्तीं दुहितरं वेश्यामाता शिक्षयि-
तुमाह—

पाणउडीअ वि जलिऊण हुअवहो जलइ जण्णवाडम्मि ।

ण हु ते परिहरिअव्वा विसमदसासंठिआ पुरिसा ॥ २७ ॥

[पानकुट्यामपि ज्वलित्या हुतवहो ज्वलनि यज्ञवाटेऽपि ।

नै खलु ते परिहर्तव्या विषमदशासंस्थिताः पुरुषाः ॥]

पानकुटी चण्डालकुटी ॥

स्वमतीरि विरागं सूचयन्ती कमप्यसती सतीं निजभार्यो बहुमन्यमानं युवान सवेद-
रथानुरागमाह—

ज तुज्झ सई जाआ असईओ जं च सुहअ अहो वि ।

ता किं फुट्टउ वीअं तुज्झ समानो जुआ णत्थि ॥ २८ ॥

यत्तव सती जाया असत्यो यच्च सुमग वयमपि ।

तर्किं स्फुटतु बीजं तैव समानो युवा नास्ति ॥]

स्फुटतु प्रकटीभवतु । तदेव बीजमाह—तव समान इति । एतदेव बीजमिति भावः ॥

कापि कसिमप्यनुरागातिशयं प्रकाशयन्ती द्वितीमाह—

सव्वस्सम्मि वि दद्वे तहवि हु हिअअस्स णिब्बुदि खेअ ।

जं तेण गामडादे इत्थाहरिंथि कुहो गहिओ ॥ २९ ॥

[सर्वस्वेषुपि दग्धे तथापि खलु हृदयस्य निवृत्तिरेव ।

यत्नेन गामदादे हस्ताहस्तिकया कुट्यो गृहीतः ॥]

कुट्यो घटः ॥

गृहकर्मव्यावृत्ता काचिदसती कामुकमनोरथसंपादनासमर्था तत्प्रहिता द्वितीमन्यापदे-
शेनाह—

जाणअ वणुइसे कुज्जो वि हु णीसंहो हहिअपत्तो ।

मा माणुसम्मि छोए सई रसिओ दरिहो अ ॥ ३० ॥

१. 'ज्वलयति' इति ग-याठ. २. 'अपि' इति घ-भुलके नास्ति. ३. 'नैव ते' इति ग-याठ. ४. 'ते इति' घ-भुलके नास्ति. ५. 'सुदअ जं च' इति ग-याठ. ६. 'सुमग यच्च' इति ग-याठ. ७. 'स्वसमो' इति ग-याठ. ८. 'व' इति ग-याठ. ९. 'खलुओ गलितवत्तो' इति ग-याठ. १०. 'दादे सरिहो' इति क-याठ.

[जायता वनोद्देशे कुञ्जोऽपि सल्ल नि शाखः शिथिलपत्र ।

मा मानुषे लोके त्यागी रसिको दरिद्रश्च ॥]

त्यागी दित्तु । रसिक सानुराग , श्रद्धाही च । दरिद्रो निर्धन । अवसररहितश्च ।
त्यागित्वादिगुणयुक्तो मा जायतामिति संबन्ध ॥

जारे प्रत्यनुरागातिशय सूचयन्ती कापि तन्मित्रमाह—

तस्स अ सोद्दग्गगुणे अमहिलसरिसं च साहसं मज्झ ।

जाणइ गोलाऊरो वासारत्तोदरत्तो अ ॥ ३१ ॥

[तस्य च सौभाग्यगुणममहिलासदृश च साहसं मम ।

जानाति गोदापूरो वर्षारामार्धरात्रश्च ॥]

वर्षारामार्धरात्रे जलपूर्णगोदावरीतरण तदभिसरणार्थं करोमीति भावः ॥

वयमधुना सतीत्वमवलम्बितमिति केनापि कामुकेन सपरिहासमुक्ता कुलटा तमाह—

ते वोलिआ वैअस्सा ताण कुडङ्गाण थाणुआ सेसा ।

अहो वि गअवआओ मूलोच्छेअ गअ पेम्मम् ॥ ३२ ॥

[ते व्यतिक्रान्ता वयस्यास्तोषा कुञ्जाना स्थाणव शेपा ।

वयमपि गतवयस्का मूलोच्छेय गत प्रेम ॥]

ते वयस्या समानशीला व्यतिक्रान्ता दूरं गता । येषु ते सह भुरतमुखमनुभूत
तेषां लतागृहाणां स्थाणवोऽवशिष्टाः । अतो मूलोच्छेयमुच्छिन्नमूल प्रेम गतम् । न
प्रमित्यर्थः ॥

कामपि गतयौवनां कुलटा प्रति नागरिक सपरिहासमाह—

थणजहणणिअम्भोपरि णंहरङ्का गअवआण धेणिआणम् ।

उठवसिआणङ्गणिवासमूलबन्ध व्व धीसन्ति ॥ ३३ ॥

[स्तनजघननितम्बोपरि नखैरङ्का गतवयसां वनितानाम् ।

उद्धसितानङ्गनिवासमूलबन्धा इव दृश्यन्ते ॥]

१ 'उत्पद्यामि' इति ग पुस्तके, 'जायेत' इति ज घ पुस्तके पाठ २ 'कुञ्जको
ऽपि स्थाणुको गलितपत्र' इति ग पाठ ३ 'गलितपत्र' इति घ पाठ ४ 'गोदा
वरीपूरे' इति क ख-पाठ ५ 'वैअस्सा' इति ग-पाठ ६ 'व्यतीता वेतसा' इति
ग-पाठ ७ 'कुरङ्गाणां' इति घ-पाठ ८ 'स्थाणुका' इति ग पाठ ९ 'मूलो-
च्छेद' इति ग पाठ १०. 'दशमङ्का' इति ग पाठ ११ 'विलआणम्' इति ख-ग-
पाठयव्या १२ 'दशमङ्का गतवयस्कां वीणाम्' इति ग पाठ १३ 'वयमिव' इति
घ पा

उद्धतितस्य शून्यीकृतस्यानङ्गनिवासस्य मूल्य-या इवेत्यर्थः ।
बहुभिर्युष्माभिस्ता दृष्टा आगतम् । तदुच्यतां कीदृक्तस्या रूपमिति नायकेन पृष्टा
सहचरा प्राहुः—

जरस जह विअ पढम तिससा अङ्गम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।
तस्स तर्हि चेअ ठिआ सन्वङ्ग केण वि ण दिट्ठम् ॥ ३४ ॥

[यस्य येनैव प्रथम तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टिः ।

तस्य तेनैव स्थिता सर्वाङ्ग केनापि न दृष्टम् ॥]

अल्पानविरहसंतप्त प्रवासादागत प्रियासंगमेन संतुष्ट कश्चिदाह—

विरहे विस व विसमा अमअमआ होइ सगमे अहिअम् ।

किं विहिणा समअ निअ दोहिं वि पिआ विणिम्मिअजा ॥ ३५ ॥

[विरहे विषमिव विषमोऽमृतमया भवति सगमेऽधिकम् ।

किं विधिना सममेव द्वाभ्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

द्वाभ्यां विषामृताभ्याम् ॥

चिरप्रवासागतेन भुजगेनोपाख्या वेद्यामाता भुजगा तरलमाया दुहितुर्दोष परिह-
रती आह—

अहसणेण पुँत्तअ सुट्ठु वि णेहाणुअन्धर्घडिआइ ।

हत्थउट्ठपाणिआइँ व कालेण गलन्ति पेम्माइ ॥ ३६ ॥

[अदर्शनेन पुनक सुट्ठपि सेहानुब-धर्घटितानि ।

हस्तपुटपानीयानीय कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

स्त्रीणां बहुच्छलत्व दर्शयती दूती कमपि युवान साभिप्रायमाह—

पइपुरओ व्विअ णिज्जइ विच्छेदद्वेत्ति जारवेअपरम् ।

णिउणसेहीकरगारिअ भुअजुअलन्दोळिणी याला ॥ ३७ ॥

[पतिपुरत एव नीयते वृश्चिकदंष्ट्रेति चारवैद्यगृहम् ।

निपुणसेहीकरघृता मुत्तयुगला दोलनशीला बाला ॥]

१ 'यस्मिन्नेव' इति ग-पाठ २ 'अङ्गेयु' इति घ-पाठ. ३ 'तस्मिन्नेव' इति व-
पाठ. ४ 'अमृतमयी' इति ग घ-पाठ ५ 'किं सममेव विधिना' इति ग-पाठ
६ 'बालज' इति ग-पाठ ७ 'पडिआणम्' इति ग-पाठ ८ 'परितानाम्' इति
ग-पाठ ९ 'विपुआदइति' इति ग-पाठ. १० 'हरम्' इति ग-पाठ. ११ 'यद-
करतस्मिअकरवत्तअ-दोळिरी' इति घ ख-पाठ १२ 'तस्सीकरवत्तकरवत्तग-
तशीला' इति घ-पाठ

पुणामिरभिप्रायज्ञाभि सखीभि करे धृता विपजनितमूर्च्छांछलेन भुजयुगलान्दो-
ला । बालेति प्रगल्भायास्तु वैतव किं वक्तव्यमिति भाव ॥

वजनस्य कार्यैकपरता सूचयन्ती पूर्वसुभगा नववधूसकान्तज्ञद वान्तमन्याप-
ह—

विक्रिणइ माहमासम्भि पामरो पाइडिं वइलेण ।

णिद्धममुंमुर विवअ सामलीअ थैणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥

[विक्रीणीति भाषमासे पामर प्रौढरण बलीवर्देन ।

निर्धूममुंराविष्य श्यामल्या स्तनौ पश्यन् ॥]

मत्वेन शीतनिस्तारहेतुत्वामिधूमतुषामिसादृश्यम् । तवापीदानीं लब्धामिनवव-
धौ किं मया कार्यमिति भाव ॥

कदापि विश्वासो न वर्तव्य, इति बन्धुजनशिक्षार्थं काचिदाह—

सच्च भणामि मरणे द्विअस्सि पुण्णे तडम्मि तावीए ।

अज्ज वि तत्थ कुड्ढे णिउड्डइ दिट्ठी तह सैअ ॥ ३९ ॥

[सत्य भणामि मरणे स्थितास्मि पुण्ये तटे ताप्या ।

अद्यापि तत्र निकुञ्जे निपतति दृष्टिस्थैर्न ॥]

रणे स्थितास्मि गृहीतमरणप्रताप्सीत्यर्थः । तत्राभिसारस्थाने । तथैव अभिसारो-
व । अतः स्त्रीषु न विश्वसेदित्यर्थः ॥

प्रसतीभिरभिसार्यमाणमर्तुका कुलवधूः सखीजनमाह—

अन्धअरवोर्पत्त व माउआ मह पइ विलुम्पन्ति ।

ईसाअन्ति मह विअ छेप्पाहिन्तो फणो जाओ ॥ ४० ॥

[अन्धकरवदरयानैमिव मैतरो मम पतिं विलुम्पन्ति ।

ईर्ष्यन्ति मममेव लाङ्गलेभ्यः फणो जात ॥]

१ 'पासिडिं' इति ख पुस्तके, 'पावलं' इति च ग पुस्तके पाठः । २ 'मुंमुसच्छ' इति ग पाठः । ३ 'यणए पडिच्छन्तो' इति ख पुस्तके 'यणएणिअच्छन्तो' इति ग-पुस्तके पाठः । ४ 'विक्रीणीति' इति ग घ पाठः । ५ 'पटी' इति ग पुस्तके, 'रं' इति च घ पुस्तके पाठः । ६ 'निर्धूममाहारसदृशयो श्यामाया स्तनयोनियच्छन्' ग पुस्तके, 'निर्धूममुंराविष्य श्यामल्या स्तनौ प्रतीक्षमाण' इति च घ पुस्तके । ७ 'कुड्ढे' इति घ पाठः । ८ 'पत्थि' इति ख ग-पाठः । ९ 'भाङ्गनमिव' इति पुस्तके, 'प्रस्यमिव' इति च घ-पुस्तके पाठः । १०. 'मायाविन्य' इति ग पाठः । 'ईर्ष्यन्ते ममेव पुच्छादेव फणो' इति ग पुस्तके, 'ईर्ष्यायति मममेव पुच्छाफणो' च घ पुस्तके पाठः ।

कृतप्रणयकलहयोर्दपत्यो. प्रणयरोपभङ्गार्थं सखी भाह—

जिवित्तं असासत्तं विअ ण णिवत्तइ जोव्वणं अत्तिकन्वम् ।
दिअहा दिअहेहिं समा ण होन्ति किं णिट्टुरो लोणो ॥ ४७ ॥

[जीवित्तं गशाश्वतमेव न निर्वर्तते यौवनमतिक्रान्तम् ।
दिवसा दिवसैः समा न भवन्ति किं निष्ठुरो लोकः ॥]

अहरहयौवनकालस्य च हासार्त्तिक रोषपादघ्नेणात्मानं वक्ष्यथ इति भावः ॥
वैश्योपभुज्यमानविभवं प्रियं कापि सासूयमन्यापदेशेनाह—

उत्पाइअदव्वणं वि खलणं को भाअणं खलो खेअ ।
पकाइ वि णिम्बफलाइं णवरं काएहिं खज्जन्ति ॥ ४८ ॥

[उत्पादितद्रव्याणामपि खलानां को भाजनं खल एव ।
पकान्यपि निम्बफलानि केवलं काकैः खाद्यन्ते ॥]

उत्पादितं द्रव्यं यैस्तेषां खलानाम् । भाजनं दानपात्रम् ॥
द्वित्रितशतां स्थापयन्नागरिकः सहचरमाह—

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरे वि तस्स सुहअस्स ।
अज्जा णिमीलिअच्छी पअपरिवाहिं घरे कुणइ ॥ ४९ ॥

[अद्य मया गन्तव्यं घनान्धकारेऽपि तस्य सुभगस्य ।
आर्या निमीलिताक्षी पदपरिपाटीं गृहे करोति ॥]

नाविकानुरागं प्रकाशयन्त्या दूत्याः कामुक प्रत्युक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतविप्रिय प्रति प्रतिदूलाचरणप्रवृत्तस्य कस्यचिन्निवारणाय कश्चित्सुजनचरित्रं व
र्णयति—

सुअणो ण कुप्पइ विअ अह कुप्पइ विप्पिअं ण चिन्तेइ ।
अह चिन्तेइ ण जम्पइ अह जम्पइ लज्जिणो होइ ॥ ५० ॥

१. 'जीअ असासित्तं विअ' इति ग-पाठः. २. 'णिअत्तइ' इति ग-पाठः. ३. 'अ-
इकन्त' इति ख-ग-पाठः. ४. 'जीवमाभासितमेव' इति ग-पाठः. ५. 'न भवन्ति
समाः' इति ग-पाठः. ६. 'उत्पादितद्रव्याणामपि' इति ग-पाठः. ७. 'को भवति
भाजन' इति ग-पाठः. ८. 'पकानीव निम्बफलानि काकेनेव खाद्यन्ते' इति ग-पाठः.
९. 'ईश्वरसुता' इति ग-पाठः. १०. 'लज्जितो' इति ग-पाठः.

[सुजनो न कुप्यत्येव अथ कुप्यति विप्रिय न चिन्तयति ।

अथ चिन्तयति न जल्पति अथ जल्पति लज्जितो भवति ॥]

तस्मादनुचितमिदं सुजनस्य भवत इति भावः ॥

भाविधनप्रत्याशया भुजगे कृतानुरागा दुहितरं वारयन्ती वेश्यामाता धनादीनामुपा-
देयतप्रयोजकमाह—

सो अत्यो जो हत्ये तं मित्त ज णिरन्तर वसणे ।

त रूअ जत्थ गुणा त विण्णाणं जाहिं घम्मो ॥ ५१ ॥

[सोऽर्थो यो हस्ते तन्मित्रं यन्निरन्तरं व्यसने ।

तद्रूपं यत्र गुणास्तद्विज्ञानं यत्र धर्मः ॥]

द्रव्यमादायैव त्वया भुजगं स्वीकार्यं इति भावः । यद्वा काचिद्रूपगर्वितां निर्गुणं
मिन्दन्त्या स्वगुणोत्कर्षं सूचयन्त्या इयमुक्तिः ॥

चिरप्रवासादागतो नायकः प्रियतमाया परितोषार्थमाह—

चन्दमुहि चन्द्रधवला दीहा दीहच्छि तुह विओअम्मि ।

चउजामा सअजाम व्व जामिणी क्हँ वि बोलीणा ॥ ५२ ॥

[चन्द्रमुखि चन्द्रधवला दीर्घा दीर्घाक्षि तव वियोगे ।

चतुर्यामा शतयामेव यामिनी कथमप्यैतिजान्ता ॥]

मयेति शेषः ॥

दुर्जनमैत्री न चिरकालस्यामिनीति सखी नायिका शिक्षयितुमाह—

अउलीणो दोमुहओ ता महुरो भोअणं मुहे जाव ।

मुरओ व्व खलो जिण्णम्मि भोअणे विरसमारसइ ॥ ५३ ॥^५

[अकुलीनो द्विमुखस्तावन्मधुरो भोजनं मुखे यावत् ।

मुरज इव खलो जीर्णे भोजने विरसमारसति ॥]

अकुलीनोऽसत्कुलप्रसूतः । मुरजपक्षे कौ पृथिव्यां न लीनः । द्विमुखः समक्षपरोक्ष-
वचनभेदात् । पक्षे उभयमुखः । यावन्मुखे भोजनमाहारः । पक्षे पिष्टादिलेपः । मधुर-
यवकाः । पक्षे श्रुतिमुखावहः । भोजने जीर्णे विरसमश्रियम् । पक्षे रूक्षध्वनिम् ।
रसति । यद्वा दुर्जनमुखपिष्टदानार्थं कुलटां शिक्षयन्त्या कुट्या इयमुक्तिः ॥

१ 'कुप्यत एव' इति ग घ पाठ २ 'यस्मिन्' इति ग-माठ ३ 'व्यतिकारता'
उ ग घ-माठ ४ 'जिण्णे' इति ग पाठ ५. 'मधुरे' इति घ पाठ ६ 'रज इव
उलीणो भाजने' इति घ पाठ

दर्शनमात्रेणैव विदग्धा भावमाविष्कुर्वन्ति लक्षयन्ति चेति दर्शयन्नागरिकः सहचर-
शिष्यार्थमाह—

तद् सोर्णहाइ पुलइओ दैरवलिअन्तद्धतारअं पहिओ ।

जह वारिओ वि घरसामिएण ओलिन्दए वसिओ ॥ ५४ ॥

[तथा स्रुपया प्रलोकितो दैरवलितार्घतारकं पथिकः ।

यया वारितोऽपि गृहस्थामिना अलिन्दके सुतः ॥]

अलिन्दो बहिर्द्वारप्रकोष्ठः ॥

कार्यमप्रसाध्य श्लाघनपरस्य, प्रसाध्य वारमगुणोत्कीर्तनपरस्य निषेधाय कथितस्वरूपा-
ह्वयानेन विश्रुतं प्रकटयन्माह—

लहुअन्ति लहुं पुरिसं पव्वअमेत्तं पि द्यो वि कज्जाइं ।

णिव्वरणमणिव्यूढे णिव्यूढे जं अ णिव्वरणम् ॥ ५५ ॥

[लघयतो लघु पुरुषं पर्वतमात्रमपि द्वे अपि कार्ये ।

निर्व्वरणमनिर्व्यूढे निर्व्यूढे येन निर्व्वरणम् ॥]

पर्वतमात्रमप्यत्यन्तगुरुमपि पुरुषं द्वे कार्ये लघु शीघ्रं लघयतो लघूकृतः । अनि-
र्व्यूढे अकृते कार्ये निर्व्वरण निवेदनम् । अकृतकार्यस्य निवेदनवैयर्थ्यात् । कृते च कार्ये
स्वयमेव प्रतिष्ठिरित्यर्थः ॥

द्वारस्थितिकलितशीलखण्डनो कुलजा कुटनी विभासयितुमाह—

कं तुङ्गयणुविस्सत्तेण पुत्ति दागट्टिआ पलोएसि ।

उण्णामिअकलसणिवेसिअग्घकमलेण य मुहेण ॥ ५६ ॥

[कं तुङ्गस्तनोक्षिप्तेन पुत्रि द्वारस्थिता प्रलोकयामि ।

उष्णामितकलशनिवेशितार्धकमलेनेन मुखेन ॥]

१. 'सुर्णहाइ' इति ग-पाठः. २. 'दैरवलिअवइतारअं' इति ग-पाठः. ३. 'उलि-
न्दए' इति ग-पाठः. ४. 'मनागवलितविषयतारक' इति ग-पुस्तके, 'दैरवलितान्तर्द्वा-
रकं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'गृहस्थामिकेन' इति घ-पाठः. ६. 'अलिन्दके उ-
पितः' इति ग-पुस्तके, 'अलिन्दे वसितः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'लघयन्ति'
इति क-ख-पाठः. ८. 'अपि' इति क-ख-ग-पुस्तकेषु नास्ति. ९. 'यदनिर्व्वरणम्',
इति घ-पाठः.

दूरादवलोकनार्थं पूर्वकायस्योन्नामितत्वात्तुहस्तनोत्क्षिप्तेन उन्नामितयो कलशयोन
वेशितेनार्थकमलेनेव मुखेन हे पुत्रि, द्वारि स्थिता त्व क प्रलोभयति कथय । तमहमचि
रान्नेव साधयामीति भाव ॥

गुप्त्यर्थं निवेशितोऽपि खल प्रत्युत रहस्यमेव प्रकाशयतीति प्रदर्शनभागरिक सह
चरमाह—

वइविवरणिग्गअदलो एरण्डो साहइ व्व तरुणाणम् ।

एत्थ घरे हल्लिअवहू एदहमेत्तत्थणी वसइ ॥ ५७ ॥

[वृत्तिविवरनिर्गतदल एरण्ड साधयतीव तरुणेभ्य ।

अन गृहे हल्लिकवधूरेतावमात्रस्तनी वसति ॥]

वृत्तिघनोवरणार्थं तदुपा ते रोपितवाटवृत्तिविवरेण निगत दल यस्य स । साधयति
कथयति । एरण्डव्यपदेशेन हल्लिकवध्वा स्तनौ वर्णयत्या दूया कामुक प्रतीदमुक्ति
रित कथित ॥

सवर तामानयति भुजगेनोक्ता कुट्टनी दुहितुपगमामि वगुणेन भुजग सामिलाप कु
वाणा निदाव्यापेन स्तनयो स्तुतिमाह—

गअकलहकुम्भसणिहयणपीणणिरन्तरेहिं तुझेहिं ।

उस्ससिउ पि ण तीरइ किं उण गन्तु हअथणेहिं ॥ ५८ ॥

[गजकलभकुम्भसनिमघनपीननिरन्तराभ्या तुङ्गाभ्याम् ।

उच्छ्वसितुमपि न तीरयति किं पुनगतु हतस्तनाभ्याम् ॥]

गज इव प्रौढ कलभो गजकलभस्तदीयकुम्भसनिभौ घनौ निविष्टौ पीनी स्थूरी
नतएव निर तरौ यौ तुङ्गौ स्तनौ ताभ्यामित्यर्थ । तीरयति शक्नोति । कचिद्वृणोऽपि
लोपता यातीति निदर्शयभागरिकोऽभिसारिकाया सवराभिसरगमनविरोधिस्तनभारं
मयुद्वेगनेदमाहेति केचित् ॥

रम्याणा तत्तद्विशेषप्राप्त्या रम्यतासिंशयो भवतीति प्रतिपादयती कुट्टनी भुजग न
वी स्त दुहितरं प्रति सामिलाप कर्तुमाह—

मासपसूअ छम्मासगन्निमणिं एकदिअहजरिअ च ।

रकुत्तिण्ण च पिअ पुत्तअ कामन्तओ होहि ॥ ५९ ॥

१ 'शसतीव' इति घ पाठ २ तीयसे इति ग पुस्तके. 'रकोदि' इति च घ
पुस्तके पाठ

[मासप्रसूतां षण्मासगर्भिणीमेकदिवसज्वरितां च ।

रङ्गोत्तीर्णां च प्रियां पुत्रक कामयमानो मय ॥]

मासप्रसूतादीनामतिशयितसुरतमुखोत्पादकतायाः कामशास्त्रसिद्धत्वात् । नर्तकीं स्वदुहितरं प्रति लोभयन्त्याः कुड्या भुजगं प्रतीयमुक्तिरित्यप्याहुः ॥

काचिदुत्तुङ्गपीनस्तनीं नायिका कथियुवा साभिलाष प्रकाशयन्माह—

पडिवस्त्रमण्णुपुञ्जे लावण्यउडे अणङ्गगअकुम्भे ।

पुरिससअहिअधरिए कीस थणन्ती थणे वहसि ॥ ६० ॥

[प्रतिपक्षमन्युपुञ्जौ लावण्यकुटावनङ्गगजकुम्भौ ।

पुरुषशतहृदयधृतौ किमिति स्तनन्ती स्तनौ वहसि ॥]

प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनस्य मन्युपुञ्जौ चित्तक्षोभजननात् । लावण्यस्य कुटौ (घटौ) सौन्दर्यातिशयात् । अनङ्गलक्षणस्य गजस्य कुम्भौ । पुरुषशतेन हृदये मनसि धृतावभिलषितौ । एतादृशौ स्तनौ स्तनन्ती कुन्यन्ती किमिति वहसि । अस्माद्विधं जन कथं न कृतार्यमसीति भावः ॥

विरोधिनाऽपि कदाचिदनुकूला भवन्तीति निदर्शयन्कथिमाह—

यरिणिघणत्थणपेहणसुहेहिएडिअस्स होन्तपहिअस्स ।

अव्रसउणङ्गारअवारविट्ठिदिअहा सुहावेन्ति ॥ ६१ ॥

[गृहिणीघनस्तनप्रेरणमुखकेलिपतितस्य भविष्यत्पथिकस्य ।

अपशकुनाङ्गारकवारविष्टिर्दिवसाः सुखयन्ति ॥]

कमपि युवानं प्रति दूती कस्याचिदनुरागातिशयमाह—

सा तुह कएण बालअ अणिसं घरदारतोरणणिसण्णा ।

ओससई वन्दणमालिअ ठव दिअहं बिअ वराई ॥ ६२ ॥

[सा तव कृतेन बालकानिशं गृहद्वारतोरणनिषण्णा ।

अवशुष्यति वन्दनमालिकेव दिवसमेव वरावी ॥]

सहजगुणहीनानामाहास्यगुणाधानं न निरकालस्यायीति काचिदन्यापदेशेनाह—

हसिअं सहत्थतालं सुखखवडं उवगएहिं पहिएहिं ।

पसअफलाणं सरिसे उड्डीणे सूअविन्दम्मि ॥ ६३ ॥

१. 'उडे' इति ग पाठः. २. 'उले' इति ग-पाठः. ३. 'गृहिण्या' इति क-ख-ग-पाठः. ४. 'विष्टिर्भेदस्य' इति. ५. 'उवगएहिं' इति ग-पाठः. ६. 'पुनरागमि' इति ग-पाठः. 'पुनरागमि' इति कुलबालदेवः.

[हसितं सहस्रतालं शुष्कवटमुपगतैः पथिकैः ।

१. पत्रफलानां सदृशे उडोने शुक्लवृन्दे ॥]

पत्रफलान्योऽयं वृक्ष इति युग्मा विभ्रामार्थं शुष्कवटमुपगतैः पथिकैः पत्रफलसदृशे शुक्लवृन्दे उडोने सति सहस्रतालं यथा स्वात्तया दक्षितमित्यर्थः । सेकेनस्थाने जनावस्थितिसूचनेनाभिसारिद्धौ निवारयन्त्या इत्या इयमुक्तिरिति केचित् ॥

पत्ना सह वृत्तलह्वयाः सम्या रात्रिवृत्तान्तमनुगंधामागता सखी मातुलान्या वृष्टा तत्सौभाग्यमाह—

अञ्ज म्मि हासिआ मामि तेण पाएमु तह पडन्तेण ।

तीए वि जलन्ति दीववत्तिमच्छुण्णअन्तीए ॥ ६४ ॥

[अद्यास्मि हासिता मातुलानि तेन पादयोस्तथा पतता ।

तथापि ज्वलन्ती दीपवर्तिर्मभ्युत्तेजयन्त्या ॥]

अन्येऽपि मम सौभाग्यं परमदिवति युग्मा दीशोत्तेजनं वृत्त्याः । दिवा तथा परवचन-दिनस्य स रात्रौ तादृगदैन्य इष्टा तस्याथ योग्यताभिमानजं पतिं प्रत्यनादरे इष्टा मम हासो जात इत्यर्थः ॥

पूर्वगुभगामनुवर्तमानं पतिं इष्टा स्वसौभाग्यमवहुमन्यमानां नपसुभगां सान्त्वयितुं सखी मुजनस्तभावमाह—

अणुउत्तणं वुण्णसो वेसे वि जणे अहिण्णमुहराओ ।

अप्पवसो वि हु सुअणो परव्वसो आदिआईए ॥ ६५ ॥

[अनुवर्तनं कुर्वन्हेत्येऽपि जनेऽभिन्नमुत्तरागः ।

औत्मवशोऽपि सत्तु मुजनः परवशः कुलीनताया ॥] आभिजात्या

त्वदेतरतोऽपि कुलीनतया तामनुदग्धे, न तु अहेनेति भावः ॥

मानिन्याः पूर्वमुभगायास्तिरस्कारेणान्यवनितासक्तं दुर्विदग्धं शिक्षयन्ती जरद-भूराह—

अणुदिअह्वट्ठिआअग्गिण्णायणुणेहि जणिअमाहप्पो ।

पुत्तअ अहिआअजणो विरज्जमाणो वि दुहम्हो ॥ ६६ ॥

१. 'उपगतेन पथिकेन' इति ग-पाठः. २. 'पत्रपत्रसदृशे' इति ग-पाठः. ३. 'मामि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'अभ्युत्तेजयन्त्या' इति घ-पाठः. ५. 'दिशे' इति ग-पाठः. ६. 'अप्पेवसो वि हि' इति ग-पाठः. ७. 'आ-त्मवशोऽपि हि' ग-पाठः. ८. 'आभिजात्याः' इति ग-पुस्तके, 'आभिजात्यस्य' इति च घ-पुस्तके पाठः.

[अनुदिवसर्वधितादरविज्ञानगुणैर्जनितमाहात्म्यः ।

• पुत्रकामिजातजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लक्ष्यः ॥]

अनुदिवसं वर्धित आदरो यैरेवभूतैर्विज्ञानप्रमुखैर्गुणैर्जनितं माहात्म्यं महत्त्वं यस्य एता-
दृशः कुलीनजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लक्ष्यः । सत्यपि कोपे कुलीनत्वादादरातिशय वि-
दधानामिमां प्रणिपातेन प्रसादयेति भावः ॥

चिदम्भं प्रति सामिलापा कापि स्वभर्तारि वैराग्यं सूचयन्त्याह—

विष्णाणगुणमहग्ये पुरिते वेसत्तणं पि रमणिज्जम् ।

जणनिन्दिए उण जणे पिअत्तणेणावि लज्जामो ॥ ६७ ॥

[विज्ञानगुणमहार्घे पुरुषे द्वेष्यत्वमपि रमणीयम् ।

जननिन्दिते पुनर्जने प्रियत्वेनापि लज्जामहे ॥]

ऽपि पीनोत्पुङ्गवजायां कस्याचिदतुरकोऽचिरेणैव कालेन तस्याः स्तनपतन इष्टा
वयस्यमाह—

• कहँ णाम तीअ तह सो सहावगुरुओ चि थणहरो पडिओ ।

अहवा महिलाणँ चिरं को वि ण हिअअम्मि संठाइ ॥ ६८ ॥

[कथ नाम तस्यास्तथा स स्वभावगुरुकोऽपि स्तनभरः पतितः ।

अथवा महिलानां चिर कोऽपि न हृदये संतिष्ठते ॥]

स्त्रीणामस्मिन्प्रेमभावप्रकाशनं वा ॥

नायकप्रलोभनाय सखी नायिकामुखं वर्णयति—

सुअणु वअणं छिचन्तं सूरं मा साउलीअ चारेहि ।

एअस्स पङ्कअस्स अ जाणउ कअरं सुहण्फसम् ॥ ६९ ॥

[सुतनु वदन स्पृशन्तं सूर्यं वा सैन्धवलेन वारय ।

एतस्य पङ्कजस्य च जानातु कतरत्सुखस्पर्शम् ॥]

साउलीति वक्ष्याथलवाचको देशी ॥

१. 'वधितादरं' इति ग-पाठः. २. 'लज्जाम.' इति ग-पाठः. ३. 'गुरुओ' इति ग-
पाठः. ४. 'स्तनभारः' इति ग पाठः. ५. 'हृदये कः संतिष्ठते' इति ग पुस्तके, 'हृदये
न संस्थासी' इति च घ पुस्तके पाठः. ६. 'साकुलीअ' इति ग-पाठः. ७. 'साउल्या'
इति ग-पुस्तके, 'पञ्चवच्छत्रिकाया' इति च घ-पुस्तके पाठः. 'साकुलीशब्दो पञ्च-
८. '३' इति कुलबालदेवः.

सीधुवानेन मत्ताया मानभङ्गमाकलय्य मानिनीमानशमनोपायशिक्षार्थं नागरिकः
गह्वरमाह—

माणोसहं व पिज्जइ पिआइ माणंसिणीअ दइअस्स ।

करसंपुडवल्लिउट्ठाणणाइ मइराइ गण्डूसो ॥ ७० ॥

[मानौषधमित्र पीयते प्रियया मनैस्त्रिन्या दयितस्व ।

करसंपुटवलितोर्ध्वाननया मदिराया गण्डूपः ॥]

सुरापूर्णेन मुखेन मुखे दत्ता सुरा पीता सती मानमपनयतीति भावः ॥

नायकप्रलोभनाय दूती नायिकायाः सौन्दर्यातिशयमाह—

कहँ सा णिब्बणिज्जइ जीअ जहा लोइअम्मि अङ्गम्मि ।

दिट्ठी दुब्बलगाई व्व पङ्कपडिआ ण उत्तरइ ॥ ७१ ॥ ✓

[कथं सा निर्गन्धतां यस्या यथालोकितेऽङ्गे ।

दृष्टिर्दुर्बला गौरिव पङ्कपतिता नोत्तरति ॥]

यत्र पतिता तत्रैवावतिष्ठत इत्यर्थः ॥

कश्चिदर्थे वदन्ती दूती कापि तस्यास्थिरस्नेहतां वर्णयन्त्याह—

कीरन्ती विअ णासइ उअए रेह व्व खलअणे मेत्ती ।

सा उण सुअणम्मि कआ अणहा पाहाणरेह व्व ॥ ७२ ॥

[क्रियमाणैव नश्यत्सुदके रेखेव खलजने मैत्री ।

सा पुनः सुजने कृता अनघा पापाणरेखेव ॥]

अनघा निरपाया ॥

विरप्रसादागच्छ पुनरविराद्गन्तुमिच्छन्तं नायकं कापि सदेव्यमाह—

अव्वो दुक्करआरअ पुणो वि तन्ति करेसि गमणस्स ।

अज्ज वि ण होन्ति सरळा वेणीअ तरङ्गिणो चिउरा ॥ ७३ ॥

[अव्यो दुष्करवारक पुनरपि विन्तां करोषि गमनस्य ।

अद्यापि न भवन्ति सरला वेण्यास्तरङ्गिणश्चिकुराः ॥]

१. 'पिआए' इति ग पाठः. २. 'उत्ताणणाइ मइराए' इति ग-पाठः. ३. 'मानिन्या' इति ग पाठः. ४. 'वल्लोत्तानया' इति ग पाठः. ५. 'वदनमदिराया' इति घ-पाठः. ६. 'णिब्बणिद्वीड' इति ग-पाठः. ७. 'यथावलोकिते' इति ग-पाठः. ८. 'दुर्बलगौरिव' इति ग-पाठः. ९. 'दृष्टं दुष्कर' इति ग-पाठः. 'अव्वो दु सहस्रशो-
यनेवे' इति कुलबालदेवः. १०. 'केसाः' इति ग पाठः.

अथो इति साधर्थचमन्कारे । दुष्करेति स्त्रीवधपातककारित्वादिति भावः । घेणीव-
न्धेन तरङ्गिणः कौटिल्यभाजधिकुरा अद्यापि सरला न भवन्तीति संबन्धः ॥

अव्युत्पन्नत्वादनुत्पन्नमानस्य दुर्विदग्धधनिकस्य प्रवृत्तिपाठवार्थं धूर्ता काचित्सद्भाव-
ज्ज्ञेहप्रशंसामाह—

ण वि तह छेअरआइँ वि हरन्ति पुणरुत्तगाअरसिआइँ ।

जह जत्थ व तत्थ व जह व तह व सद्भावणेहेरमिआइँ ॥ ७४ ॥

[नैपि तथा छेकरतान्यपि हरन्ति पुनरुत्तरागरेसिकानि ।

यथा यत्र वा तत्र वा यथा वा तथा वा सद्भावज्ञेहरमितानि ॥]

छेकानामपूर्वापूर्वरतशिष्यकुशलानां रतान्यपि तथा न हरन्ति । पुनरुक्ते पुनः पुनः
परिशीलिते रागे रघने रतव्यापारे रसिकानि ॥

किमिति कृशासीति श्रियेण पृथ्वा पूर्वमुभगा तमाह—

उज्जसि पिआइँ समअं तह वि हुँ रे भणसि कीस किसिअं त्ति ।

उवरिभरेण अ अण्णुअ मुअइँ वइँलो वि अज्जाइँ ॥ ७५ ॥

[उज्जसे प्रियया समं तथापि खलु रे भणमि किमिति केशेति ।

उपरि(भरेण) च हे^१ अज मुचति बलीवदौज्यज्ञानि ॥]

प्रकासादागतेन श्रियेणाद्य कथं त्वरया रमितमिति वदन्तीं सखी नायिका साधु-
रागमाह—

दिहमूलवन्धगण्ठि व्व मोइआ कहँ वि तेण मे वाहू ।

अम्हेहिँ वि तरस उरे खुत्त व्व समुक्खआ यणआ ॥ ७६ ॥

[दिहमूलवन्धधेन्धी इव गोचित्तौ कथमपि तेन मे वाहू ।

अस्माभिरपि तस्योरसि निष्ठाताविव समुत्खातौ स्तनौ ॥]

१. 'छेअरुरआइँ' इति ग-पाठः. २. 'वेह' इति ग-पुस्तके नास्ति. ३. 'नैव तथा
छेकसुरतान्यपि' इति ग-पाठः. 'छेकशब्दः खिन्नवचनः' इति कुण्डबालदेवः. ४. 'र-
सितानि' इति घ-पाठः. ५. 'सद्भावरमितानि' इति ग-पाठः. ६. 'उज्जसि' इति
ग-पाठः. ७. 'हुँ' इति ग-पुस्तके नास्ति. ८. 'वुध्यसे प्रियायाः समय' इति ग-पाठः.
९. 'खलु' इति ग-पुस्तके नास्ति. १०. 'कृचातेति' इति घ-पाठः. ११. 'भरेण
च अजअ (१) मुचति वृषभो' इति ग-पाठः. १२. 'हे' इति घ-पुस्तके नास्ति.
१३. 'गूडबद्ध' इति ग-पाठः. १४. 'दृढगूढबद्धप्रन्धी' इति घ-पाठः. १५. 'प्रन्धि-
रेव' इति ग-पाठः.

अनुरागनिर्भरालिङ्गनवशादन्योन्यलम्बौ मे बाहू तेन कथमपि मोक्षिती अन्मानि-
रपि स्तनौ निखात्ताविव कथमपि समुत्खातौ ॥

कलहान्तरि नामनुनीयागता सखी तत्त्वान्तमाह—

अणुणअपसाइआए तुज्झ धराहे चिरं गणन्तीए ।

अपहुत्तोहअहत्थङ्गुरीअ तीए चिरं रुण्णम् ॥ ७७ ॥

[अनुनयप्रसादितया तवापराधाश्चिरं गणयन्त्या ।

अप्रभूतोभयहस्ताङ्गुल्या तया चिरं रुदितम् ॥]

अपराधानां बहुत्वादप्रभूता उभयहस्ताङ्गुल्यो यस्यास्तया । कथं कथमपि मया प्र-
सादिता इतः परं मेघं वायीरिति भावः ॥

नर्तनध्रुमप्रसिन्नाङ्गना दुहितुः सौन्दर्यातिशयं कामुकचित्तप्रलोभनाय कुटनी व-
र्णयति—

सेअच्छलेण पेच्छह तणुए अङ्गम्मि से अमाअन्तप् ।

लावण्णं ओसरइ व्व तिवालिसोवाणअत्तिप् ॥ ७८ ॥

[स्नेदच्छलेन पश्यत तनुकेऽङ्गे तस्या अमात् ।

लावण्यमपसरतीव निवलीसोपानर्पङ्किभिः ॥]

तनुके तस्या अङ्गे समातुनसमर्थं लावण्यं स्नेदच्छलेनापसरतीवेति प्रोज्झा । चीरं
रतगोपनार्थं सख्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

भुजगमभिमुखीकर्तुं कुटनीं यस्याधिदलव्धलामसत्कारतारूपं दोषं परिहरन्ती सौ-
न्दर्यातिशयमन्यापदेशेन वर्णयति—

देव्वाअत्तम्मि फले किं कीरइ एत्तिअं पुणो भणिमो ।

कङ्केलिपहवाणं ण पहवा होन्ति सारिच्छा ॥ ७९ ॥

[देवायत्ते फले किं क्रियतामिथैत्पुनर्भणामः ।

कङ्केलिपहवानां न पहवा भवन्ति सदृशा ॥]

कङ्केलिरसोरुः । अन्ये पहवा अशोरुपहवानां सदृशा न भवन्तीत्यर्थः । देवाधीनी
लामसत्कारौ मा भवतां नाम । तत्सदृशी सुन्दरी पुनरन्या नास्तीत्याशयः ॥

१. 'रुणं धराइए' इति ग-पाठः. २. 'अप्रभवदुभय' इति घ-पाठः. ३. 'रुदितं
वराक्या' इति ग-घ-पाठः. ४. 'प्रेक्षते' इति ग-घ-पाठः. ५. 'अमायमानं' इति
ग-पुस्तके, 'अमायत्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'पहवा' इति ग-घ-पाठः. ७.
'कीरउ एत्तिअ उण भणामो' इति ग-पाठः. ८. 'करोतु' इति ग-पाठः. ९. 'एतावत्'
इति ग-घ-पाठः. १०. 'अशोरुपहवानां नवपञ्चवा' इति. घ-पाठः.

ससौभाग्यस्यापनाय विरहविपुलां कलहान्तरितां रुदतीं कान्तां दर्शयन्तदनुनय-
यमागतः कान्तः सहचरमाह—

washes

धुअइ व्व मअकलङ्कं कपोलपडिअस्स माणिणी, उअह ।

अणवरअवाहजलभरिअणअणकलसेहि चन्द्रस्स ॥ ८० ॥

[धावतीव मृगकलङ्कं कपोलपतितस्य मानिनी पश्यत ।

अनवरतवाष्पजलमृतनयनकलशाम्भ्यां चन्द्रस्य ॥]

कपोलप्रतिबिम्बितस्य चन्द्रस्य कलङ्क मानिनी धावतीव प्रक्षालयतीवेति योऽना ।
एतेन प्रियायाः सौन्दर्यमात्मनः सौभाग्यं च वर्णितम् ॥

बहुपद्मीकस्य भर्तुर्नयमतीव बहूभा भविष्यति, अतः पुनरागमिष्यत्येवात्र तत्किमेवं
विह्वोऽसीति वयस्येनाश्वासमानो ज्ञातिगृहात्पतिगृहं प्रस्थिताया जारस्यमन्यापदे-
शेनाह—

गन्धेण अप्पणो मालिआणं णोमालिआ, ण फुट्टिइइ ।

अण्णो को वि ह्मासाइ मंसलो परिमलुगारो ॥ ८१ ॥

[गन्धेनात्मनो मालिकानां नयमालिका नै च्युता भविष्यति ।

अन्यः कोऽपि हताशया मांसलः परिमलोद्गारः ॥]

नानापुष्पमयितमालिकानां मध्ये नयमालिकाएव पुष्पविशेष आत्मनो गन्धेन न
च्युतो भविष्यति । यतो हता आशा अन्य ता यया तस्याः । अन्य इतरविलक्षणः
कोऽपि मांसलो बहलः परिमलोद्गारः ॥

नटपनं भुजंगमुत्साहयितुं कुट्टनी सत्पुरुषप्रशंसायाह—

फलसंपत्तीअ समोणआइं तुझाईं फलविपत्तीए ।

हिअआइं सुपुसिसाणं महातरुणं व सिहराईं ॥ ८२ ॥

[फलसंपत्त्या समवनतानि तुझानि फलविपत्त्या ।

हृदयानि सुपुरुषाणां महातरुणामिव शिखरानि ॥]

समवनतानि नद्यानि । तुझानि उन्नतानि ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपगमिनं पथिकमाह—

आसासेइ परिअणं परिवत्तन्तीअ पडिअजाआए ।

जित्थाणुवत्तणे वलिअइत्थमुहलो वलअसइो ॥ ८३ ॥

१. 'फुट्टिइइ' इति ग-पाठः. २. 'मालिनी' इति ग पाठः. ३. 'न न्यूना' इति
घ-पाठः. ४. 'हताशया' इति ग-पाठः. ५. 'सुपुसिसाणं' इति ग पाठः. ६. 'सि-
हराणीव' इति ग-पाठः.

[आश्वासयति परिजनं परिवर्तमानायाः पथिकजायायाः ।

निःस्थामवर्तने बलितहस्तमुखरो बलयशब्दः ॥]

परिवर्तमानायाः शयने पार्श्वपरिवृत्तिं कुर्वन्त्याः पथिकजायाया निःस्थाम निःसहं यद्भू-
तं तेन बलिते हस्ते मुखरोऽनुबद्धक्षणत्कारो बलयशब्दः परिजनमाश्वासयति जीवय-
तीति । श्लाघयतीत्यर्थः ॥

शौणविभवस्यापि नायकस्य महैच्छता सूचयन्ती दूती नायिकामनुरञ्जयितुमाह—

तुङ्गो च्चिअ होह मणो मणंसिणो अन्तिमासु वि दसासु ।

अत्थमणम्मि वि रइणो किरणा उद्धं चिअ फुरन्ति ॥ ८४ ॥

[तुङ्गमेव भवति मनो मनस्विनोऽन्तिमासुपि दशासु ।

अस्तमेनेऽपि रवेः किरणा ऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ॥]

एतेन निर्धनोऽप्यसौ वदान्यः न चाधमां कामयत इति सूचितम् ॥

महैच्छनादिकानुरञ्जनार्थं नायकस्य वदान्यतां परोपकारितां च प्रस्तावयितुं दूती
कृपणनिन्दां सत्पुरुषस्य च प्रशंसामाह—

पोट्टं भरन्ति सडणा वि माडआ अप्पणो अणुव्विणा ।

विहँलुद्धरणसहावा हुवन्ति जइ के वि सप्पुरिसा ॥ ८५ ॥

[उदरं विभ्रति शकुना अपि हे मातर आत्मनोऽनुद्विमाः ।

विहँलोद्धरणसहाया भवन्ति यदि केऽपि सत्पुरुषाः ॥]

पक्षिणोऽपि परमांसमक्षणदिना खोदरपूरणं कुर्वन्ति । दोनटुःखापहारधुरंधरास्तु
तादृशा विरला इति भावः ॥

कृत्रिमेणापि भावेन भामिन्यः पुरुषाननुरञ्जयन्तीति कथाविदुक्ता विदग्धवधू-
स्तमाह—

ण विणा सट्ठम्मणेण ग्गेप्पइ परमत्थजाणुओ लोओ ।

को जुण्णमत्तरं कच्चिएण वेआरिउं वरइ ॥ ८६ ॥

[न विना सट्ठावेन गृह्यते परमार्थज्ञो लोकः ।

को जीर्णमार्जारं काञ्चिकया प्रतारयितुं शक्नोति ॥]

१. 'नि स्थानोद्वर्तने' इति ग-पुल्लके, 'निःसहवर्तनवर्जित' इति च घ-पुल्लके पाठः.

२. 'उपमेव' इति ग-पाठः. ३. 'विहँलुद्धरणसहाया' इति ग-पाठः. ४. 'हे मातरः'

इति ग-पाठः. ५. 'विहँलोद्धरण' इति ग-पाठः. ६. 'काञ्चिकेन' इति ग-घ-पाठः.

अलंकारायदानादपरिदुष्टा नायिकामनुकूलयितुं दूती अकारणमेवहुमानमन्याप-
देशेनाह—

रण्याड तणं रण्याड पाणिअं सव्वअं सअंगाहंम् ।

तह वि मआणें मईणें अ आमरणन्ताई पेम्माइं ॥ ८७ ॥

[अरण्यात्तृणमरण्यात्वानीय सर्वतः स्वयम्राहम् ।

तथापि मृगाणा मृगीणा चा मरणात्तानि प्रेमाणि ॥]

निदृषाधिक प्रेम श्लाघ्यमिति भावः ॥

सतापातिशयखण्डनाय चन्दनलेपाद्युपचारं कुर्वाणा वारयन्ती विरहिणी काचिदाह—

तावमवणेइ ण तहा चन्दणपङ्को वि कामिमिहुणाणेश् ।

जह् दूसहे वि गिन्हे अण्णोण्णालिङ्गणसुहेली ॥ ८८ ॥

[तापमपनयति न तथा चन्दनपङ्कोऽपि कामिमिथुनानाम् ।

यथा दु सहेऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गनसुखवेलिः ॥]

यदुपचारेण यस्योपशमनं भवति तत्रान्य उपचारो विफल इति भावः ॥

सपत्न्या दुश्चारिभ्यस्यापनार्थं सुगन्धधूवत्तविरुद्धा प्रथमरजोयोगसूचनव्युत्पत्तिं तस्याः
सूचयन्ती काचिन्सौधमाह—

सुप्पण्णा किणो चिट्ठसि ति पडिपुच्छिभाएँ बहुआए ।

दिग्गुणवेट्ठिअजहणत्थलाइ लज्जोणअं हसिअम् ॥ ८९ ॥

[पृथुतिष्ठानना किमिति तिष्ठसीति परिपृष्टया वध्या ।

द्विगुणापेक्षितजघनस्थलया लज्जावनतं हसितम् ॥]

जघनस्थलप्रच्छादनेनैवातर्तवमाविष्कुर्वन्त्या लज्जयावनतं यथा स्यात्तथा हसितमित्यर्थः ॥
कुलव्रीहत्तशिशार्थं बन्धुवधू कुलवधूमाह—

दिअअ चेअ विलीणो ण साहिओ जाणिरुण घरसारम् ।

वान्धवदुब्बअणं विअ दोहलओ दुग्गअवहूए ॥ ९० ॥

[हृदय एव विलीनो न वैधितो ज्ञात्वा गृहसारम् ।

वान्धवर्दुर्वचनमिव 'दोहदो दुर्गतवध्या ॥]

१. 'स्वय म्राहम्' इति घ पाठ . २. 'किणो अट्ठसि ति' इति ख ग पाठ .
३. 'पृत्' इति ग पुस्तके नास्ति; 'पृत्तानना' इति घ-पाठ . ४. 'किमिदमिति' इति
घ-पाठ . ५. 'साधितो' इति ग-घ पाठ . ६. 'दुर्विनयमिव' इति ग-पाठ . ७. 'दो-
हदको' इति घ पाठ .

बुल्लुचरितविहङ्ग सपत्न्या धार्ढ्यं दद्यापयन्ती कापि बन्धुवधूजनमाह—

धावइ विअलिअधम्मिहसिचअसजमणवावडकरग्गा ।

चन्दिलभअविवलाअन्तडिम्भपरिमग्गिणी घरिणी ॥ ९१ ॥

[धावति विगलितधम्मिहसिचयसंयमनव्यापृतकरामा ।

• चैन्दिलभयविपलायमानडिम्भपरिमार्गिणी गृहिणी ॥]

विगलितयो शिथिलयोर्धम्मिहसिचययो सयमने व्यापृते कराग्रे यस्या सा । च-
न्दिलो नापितस्तस्य भयेन विपलायमानस्य डिम्भस्य परिमार्गणशीला गृहिणी धा-
वति । 'चन्दिल पुत्ति वास्तूकशाके गर्भे च नापिते' इति मेदिनीकोष । एव च च-
न्दिलशब्दो नापितवचनो देशीति कस्यचिदुक्ति कोपानालोचनमूलत्वादुपेक्ष्या । व्या-
जेन स्तनबाहुतुलादिदर्शयितुं धावतीति योजना वा ॥

भुजगप्रलोभनार्थं दूती नायिकाया वय सभि सौभाग्यं चाह—

जह जह उव्वहइ वहू णवजोव्वणमणहराई अङ्गाई ।

तह तह से तणुआअइ भज्जो दइओ अ पडिवक्खो ॥ ९२ ॥

[यथा यथोद्वेहते बधूर्नवयौवनमनोहराण्यङ्गानि ।

तथा तथा तस्यास्तनूयते मध्यो दयितश्च प्रतिपक्ष ॥]

चकारो भिन्नक्रम प्रतिपक्षधेति योज्य । स्तभावान्मध्य । अत्यासक्तया दयित ।
इत्थोसत्तापेन प्रतिपक्ष ॥

रुद्रपतिद्वेषिणी कुलवधू शिक्षयन्ती कापि पतिमतावृत्तमाह—

जह जह जरापरिणओ होइ पई दुग्गओ विरुओ विं ।

बुल्लवालिआणँ तह तह अहिअअरं वल्लहो होइ ॥ ९३ ॥

[यथा यथा जरापरिणतो भवति पतिर्दुर्गतो विरूपोऽपि ।

कुलपालिकाना तथा तथाधिवतरं वल्लभो भवति ॥]

कमपि युवान प्रति साभिलाषा कामिनी समानवय शीलं मातुलानीमाह—

एसो मामि जुवाणो वारंवारेण जं अडअणाओ ।

गिम्हे गामेक्कवडोअअ व किच्छेण पावन्ति ॥ ९४ ॥

१ 'मग्गोसिणी' इति ग पाठ. २. 'विगलितकेशवस्त्र' इति ग-पाठ ३ 'नापि-
तभयपलायमान' इति ग-पुस्तके, 'नापितभयविपलायमान' इति घ पुस्तके पाठ.
४. 'बालकमार्गविणी' इति ग-पाठ. ५ 'उद्वहति' इति ग घ-पाठ ६. 'मस्तिषिते'
इति ग पुस्तके, 'तनुकायते' इति च घ पुस्तके पाठ. ७. 'अ' इति ग पाठ.

[एष भौतुलानि युवा वारंवारोऽयं सत्यः ।

प्रीप्ते प्रामैकवटोदकमिव कृच्छ्रेण प्राप्नुवन्ति ॥]

अदृक्प्रभाओ भसत्यः । वारंवारोऽयं वारकमेण । पर्यायेणेति यावत् । यं युवानमसत्यः
कृच्छ्रेण प्राप्नुवन्ति स मयानायासेन प्राप्यत इति स्वसौभाग्यप्रकटनम् ॥

परवनितासुरस्तलम्पटस्य निजनायकस्य सकेतस्थानमग्नेन परितुष्टा कपि पतिप्रता
पितृष्वसारमाह—

गामवडस्त पिउच्छा आवण्डुमुदीर्णं पण्डुरच्छाभम् ।

हिअएण समं असईअं पडइ वाआहअं पत्तम् ॥ ९५ ॥

[गामवटस्य पितृष्वस्य आपाण्डुमुखीनां पाण्डुरच्छायम् ।

हृदयेन सममसतीनां पतति वाताहतं पत्रम् ॥]

गामवटस्य पत्रमसतीनां हृदयेन समं पततीति संबन्धः ॥

इतिप्रज्ञतामात्मनः ह्यापयन्नागरिकः सहचरमाह—

पेच्छइ अलद्धलक्खं दीहं णीससइ सुण्णअं हसइ ।

जह जम्पइ अफुडत्थं तह से हिअअट्ठिअं किं पि ॥ ९६ ॥

[पश्यत्वलब्धलक्ष्यं दीर्घं निश्चिति शून्यं हसति ।

यथा जल्पत्यस्फुटार्थं तथा तैसा हृदयस्थितं विमपि ॥]

नागरिकः सहचरशिक्षार्थमसतीनां प्रत्युत्पन्नमतिरवमाह—

गह्वइ गओम्ह सरणं रक्खमु एअं त्ति अहअणा भणिरी ।

सहसागअस्स तुरिअं पइणो व्विअ जारमप्पेइ ॥ ९७ ॥

[गृहपते गतोऽस्माकं शरणं ईक्षेममित्यसनी भणित्वा ।

सहसागतस्य स्वरितं पत्युरेव जारमर्पयति ॥]

निद्वयमानोऽपि भावः स्वभावादेवाविर्भवतीति प्रतिपादयन्ती कपि'सखी' शिक्ष-
यितुमाह—

हिअअट्ठिअस्स दिज्जउ तनुआजन्ति ण पेच्छइ पिउच्छा ।

हिअअट्ठिओम्ह कंतो भणिउं मोहं गआ कुंमरी ॥ ९८ ॥

१. 'भगिनि' इति ग-गुल्फे, 'मात्रुति' इति च ग-गुल्फे पाठः. २. 'यं च लक्ष-
नाः' इति ग-पाठः. ३. 'प्रेषते' इति ग घ-पाठः. ४. 'शून्यकं' इति घ-पाठः.
५. 'अस्मा' इति ग-पाठः. ६. 'अनिउणा अनिउम्' इति ग-पाठः. ७. 'गृहपति' इति
ग-पाठः. ८. 'इक्षेममित्यदिनिपुणं भणित्वा' इति ग-पाठः. ९. 'मग्नशोला' इति
घ-पाठः. १०. 'पिउच्छा' इति ग-पाठः. ११. 'कुमरी' इति ग-पाठः.

[हृदयेष्वितस्य दीयतां तैर्नूभवन्तीं न पश्यथ पितृघ्नसः ।

हृदयेष्वितोऽस्माकं कुतो भणित्वा मोहं गता कुमारी ॥]

अयमर्थः—कौमारदशायामेव कस्मिन्नपि पुरुषे कस्याधिदुःखं दृष्ट्वा कथापि विदग्धया पितृघ्नस्य प्रत्युक्तम्—इयं हृदयेष्विताय कस्मैचिदीयतामिति । ततः स्वाशयनिवृत्त्यर्थं तयास्माकं कुमारीणां हृदयेष्वितः कुत इत्युक्त्वा प्रियस्मरणावेगान्मोहः प्राप्त इति ॥

सुजंगमलोभनाय दूती नायिकायाः सुरतावसानोपचारचातुर्यमाह—

खिण्णस्त घरे पैङ्गो ठवेइ गिम्हावरण्हरमिअस्त ।

धोलं गलन्तकुसुमं ण्हाणसुअन्धं चिउरभारम् ॥ ९९ ॥

[खिन्नसोरसि पर्युः स्थापयति ग्रीष्मापराह्वरमितस ।

आर्द्रं गलत्कुसुमं आनसुगन्धं चिकुरभारम् ॥]

स्योत्सायां केलिरसिको युवा कान्तायाः कपोलकान्तिं वर्णयति—

अह सरसदन्तमण्डलकपोलपडिमागओ मैअच्छीए ।

अन्तो सिन्दूरिअसङ्खवत्तकरणि वहइ चन्दो ॥ १०० ॥

[असौ सरसदन्तमण्डलकपोलप्रतिमागतो मृगाक्ष्याः ।

अन्तः सिन्दूरितशङ्खपौत्रसादृश्यं वदति चन्द्रः ॥]

सरसदन्तमण्डलं मण्डलाकारं दन्तद्वयं ययोः कपोलयोः । प्रतिमागतः संक्रान्तप्रति-
म्बचन्द्रः अन्तर्मेख्ये सिन्दूरितं संजातसिन्दूरे यच्छङ्खपात्रं तत्सादृश्यं वहतीत्यर्थः ।
तद्वत्तत्सारकत्वात्सिन्दूरसाम्यम् । कपोलयोश्च स्वच्छत्वाच्छङ्खपात्रसादृश्यं बोध्यम् ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्माअए ।

सचसअग्निम समत्तं तीअं गाहासअं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखमुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्तं तृतीयं गाथाशतकमेतत् ॥]

१. 'हृदयस्थितस्य' इति घ-पाठः. २. 'दुर्बल्ययमानां' इति ग-पुस्तके, 'तनुकाय-
जनां' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'हृदयस्थितो' इति घ-पाठः; 'हृदयेष्वितमस्माकं
त' इति भणित्वा मोहमुपागता' इति ग-पाठः. ४. 'वैङ्गो' इति ग-पाठः. ५. 'सुगन्धि'
इति घ-पाठः. ६. 'मिअच्छीआ' इति ग-पाठः. ७. 'पात्रकरणि' इति ग-पुस्तके,
'पात्रधमतां' इति च घ-पुस्तके पाठः.

चतुर्थं शतकम् ।

अविदग्धे भर्तरे यथा तथा जारनिद्वय कुलटाः कुर्वन्तीति सहचरशिष्यार्थं नाग
रिक्त आह—

अह अन्ह आअदो अज्ज कुलहराओ सि छेञ्छई जारम् ।

सहसागअस्स तुरिअ पइणो कण्ठ मिलेवैइ ॥ १ ॥

[असावसाकमागतोऽद्य कुलगृहादित्यसती जारम् ।

सहसागतस्य त्वरितं पत्युः कण्ठे लैगयति ॥]

छेञ्छईत्यसतीवाचको देशीशब्दः ॥

अविषयेऽपि पत्युस्तुनयादरेण सखी नायिकायाः सौभाग्यं ख्यापयितुमाह—

पुंसिआ अण्णाहरणेन्दणीलकिरणाहआ ससिमऊहा ।

माणिणिवअणम्मि सकज्जलसुसङ्काइ दइएण ॥ २ ॥

[प्रोञ्जिता वर्णाभरणेन्दनीलकिरणाहता सशिमयूखा ।

मानिनीवदने सकज्जलाधुशङ्कया दयितेन ॥]

नायकप्रलोकनाय दूती कस्याधिःसीदयतिशयं वर्णयति—

एइहमेत्तम्मि जए सुन्दरमहिलासहस्रभरिए वि ।

अणुहरइ णवर विस्सा वामद दाहिणदस्स ॥ ३ ॥

[एतावन्मात्रे जगति सुन्दरमहिलासहस्रभृतेऽपि ।

अनुहरति केवलं तस्या वामार्धं दक्षिणार्धस्य ॥]

कृतापराधेऽपि प्रिये किं मानविमुखी स्वमसीति सशयोक्ता काप्यामनोऽनुरागं स्थि
रभेहतां च सूचयतीति तामाह—

जह जह बाएइ पिओ तह तह णञ्चामि चञ्चले पेम्मे ।

वही वलेइ अङ्ग सहाययेद्वे वि रुक्कम्मि ॥ ४ ॥

[यथा यथा चादयति प्रियस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि ।

वही बलवत्यङ्गं स्वमावस्तन्धेऽपि वृष्टे ॥]

यद्वा निराश्रयतया स्यादनुमन्ता एता यथा सन्धं वृष्टमाधिलं तिष्ठति तथाहमा

१ 'आअओ' इति क-स्त्र पाठ २ छिञ्छई इति क-पाठ ३ मिलणइ
इति ग पाठ ४ 'अयमसाक' इति ग-पाठ ५ 'लगयति' इति क घ पाठ ६
पुञ्जिअ' इति ग-पाठ ७ 'विण्णा' इति ग-पाठ ८ 'सीउहस' इति ग-पाठ
९ 'दिण' इति क पुस्तके, 'उद्वे' इति घ ग-पुस्तके पाठः.

नटप्रायमधममननुरक्तमप्याधिल्य तिष्ठामि यावदुत्तमं कमप्यासादयामीति दूरीं प्रति कु-
लदायाः कस्याधिदियमुक्तिः ॥

महता प्रयत्नेन लब्धस्य नायकस्यानभिज्ञतां प्रकटयन्ती कापि सखीं चनिर्वेदमाह-
दुक्सेहिं लन्मइ पिओ लद्धो दुक्सेहिं होइ साहीणो ।

लद्धो वि अलद्धो विअ जइ जइ हिअअं तइ ण होइ ॥ ५ ॥

[दुःखैर्लभ्यते प्रियो लब्धो दुःखैर्मयति स्वाधीनः ।

लब्धोऽप्यलब्ध एव यदि यथा हृदयं तथा न भवति ॥]

कलहान्तरिता जातानुतापा प्रियसखीमाह—

अब्बो अणुणअसुहकङ्किरीअ अकअं कअं कुणन्तीए ।

सरलसहावो वि पिओ अविणअमगं घलणीओ ॥ ६ ॥

[कष्टमनुनयमुखैर्काङ्क्षणीलयाकृतं कृतं कुर्वत्या ।

सरलसमावोऽपि प्रियोऽविनयमार्गे बलात्नीतः ॥]

कष्टमित्यर्थे अब्बो इति देशी । करोतिरप्रोच्चारणे । अकृतमप्यपराधं कृतमिति स-
मुच्चारयन्त्येत्यर्थः । मयेति शेषः ॥

प्रोषितपतिकाया विरहाति मुग्धतां च सूचयन्ती दूती नायकसमीपगामिन
पान्यमाह—

हत्थेसु अ पाप्सु अ अङ्गुलिगणणाइ अइगआ दिअहा ।

एण्हि उण केण गणिज्जउ त्ति भेणिअ रुअइ सुद्धा ॥ ७ ॥

[हस्तयोश्च पादयोश्चाङ्गुलिगणनयातिगता दिवसाः ।

इदानीं पुनः केन गण्यतामिति भणित्वा रोदिति मुग्धा ॥]

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काव्यपशकुनगर्भं वसन्तं वर्णयति—

कीरमुहसैच्छहेहिं रेहइ वसुहा पलासकुसुमेहिं ।

बुद्धस्स चरणवन्दनपट्टिएहिं वै भिक्खुसंघेहिं ॥ ८ ॥

[कीरमुखसंदेष्टै राजते वसुधा पलाशकुसुमैः ।

बुद्धस्य चरणवन्दनपतितैरिव भिक्षुसंघैः ॥]

अथ बुद्धस्येत्याद्युत्तरार्धमपशकुनसूचनार्थमेवोपात्तम् ॥

१. 'अब्बो' इति ग-पुल्लके, 'अहो' इति च घ-पुल्लके पाठः. २. 'काङ्किण्या' इति ग-पाठः. ३. 'गणणाहि' इति क-पाठः. ४. 'भणेउ' इति ख-पाठः. ५. 'सच्छ-
इहि' इति क-पाठः. ६. 'उ' इति क-पाठः. ७. 'सरसो' इति ग-श-पाठः. ८. 'स-
पाते' इति घ-पाठः.

अनुनयं ग्राहयितुं सखी मानवतीमाह—

जं जं पिङ्गलं अङ्गं तं तं जाअं किसोअरि किसं ते ।

जं जं तणुअं तं तं पि णिट्ठिअं किं त्य माणेण ॥ ९ ॥

[यद्यत्पुल्लमङ्गं तत्तज्जातं कुरोदरि कुरां ते ।

यद्यत्तनुकं तत्तदपि निष्ठितं किमन मानेन ॥]

निष्ठितं निष्ठां प्रकथं गतम् । अतिदुर्बलं जातमित्यर्थः ॥

निजभङ्गुरेव न सा यत्तभा तत्कथं तस्या गुणानस्तौपीरित्यभियोज्येनोक्ता इती

तमाह—

ण गुणेण हीरइ जणो हीरइ जो जेण भाविओ तेण ।

मोचूण पुलिन्दा मोत्तिआइ गुञ्जाओं गेहन्ति ॥ १० ॥

[न गुणेन ह्रियते जनो ह्रियते यो येन भावितस्तेन ।

मुक्त्वा पुलिन्दा मौक्तिकानि गुञ्जा गृह्णन्ति ॥]

ह्रियते वशीक्रियते ॥

गमनाय पृष्टा किमिति किमप्युत्तरे न ददातीति श्रियेणोक्ताया वध्वाः संबन्धिनी
इदा काविदाह—

लङ्कालआणं पुत्तअ वसन्तमासेकलद्धपसराणम् ।

आपीअलोहिआणं धीहेइ जणो पलासानम् ॥ ११ ॥

[लङ्कालयानां पुत्रक वसन्तमासैकलब्धप्रसराणाम् ।

आपीतलोहितानां विमेति जनः पलासानाम् ॥]

पलाशानामिति शेषविवक्षया पश्यमर्थे यष्टी । पलाशेभ्यः किञ्चुक्पुष्पेभ्यो वधूभ्यो
विभेतीत्यर्थः । अथ च पलं मांसमदन्ति मशयन्तीति पलाशा रक्षसाः । तेभ्यो जनो
विभेतीति श्लेषः । पुण्यपक्षे लङ्का शाखा । पक्षे राक्षसगरी । 'लङ्का रक्षःपुत्रीशाखा-
शाकिनीकुलटागु च' इति मेदिनीशेषः । तथा (राक्षसपक्षे छाया) वताश्रमाधिकलम्प-
प्रसराणम् । पुण्यपक्षे आ ईष्यतीतवर्णानि च तानि लोहितानि च । पक्षे आ व-
मन्तात्पीतं लोहितं रुधिरं यैस्तेषाम् । वसन्तसूचकपलाशकुमुदभीता तत्र गमनं नष्टी-
करोतीति भावः ॥

१. 'गुणे' इति ग-पाठः. २. 'गुजाउ' इति क-ख-पाठः. ३. 'गुपे' इति
ग-पाठः. ४. 'भावीअ' इति ख-पाठः. ५. 'धिहेइ' इति ग-पाठः.

सखी सख्या कान्तं प्रत्यनुरागातिशयमाह—

घेचूण चुण्णमुष्टिं हरिसूससिआपे वेपमानाए ।

भिसणेमित्ति पिअअमं हत्थे गन्धोदअ जाअम् ॥ १२ ॥

• [गृहीत्वा चूर्णमुष्टिं ह्येषोत्सुकिताया वेपमानाया ।

अवकिरामीति प्रियतम हस्ते गन्धोदक जातम् ॥]

प्रियतम विच्छुरामीति चूर्णमुष्टिं गृहीत्वा ह्येषोत्सुकिताया वेपमानाया हस्ते गन्धो-
दक जातमित्यन्वयः । कान्तदर्शनजनितसार्वकभावात्मकस्नेदाचूर्णमुष्टिरेव गन्धोदकं
जातमित्यर्थः । चूर्णमुष्टिं कर्पूरादिगुद्गन्धद्रव्यधूलि । भिसणेमि इति विच्छुरणे देशी ॥

घषल्या देवराभिसारं सूचयन्ती सपत्नी तामाह—

पुट्ठि पुससु किसोअरि पेडोहरङ्कोटपत्तचित्तलिअम् ।

छेआहिं दिअरजांआहिं उज्जुए मा कलिजिहिसि ॥ १३ ॥ ✓

[पृष्ठ प्रोञ्छ कुशोदरि पश्चाद्गृहाङ्कोटपत्रचित्रितम् ।

विदेग्याभिर्देवरजांयाभि ऋजुके मा कैलिष्यसे ॥]

ऋजुके अभिसरणप्रच्छादनानभिज्ञे । पश्चाद्गृहे विपमानो योऽङ्कोटवृक्षस्तस्य पत्रैर्वि-
तं पृष्ठ प्रोञ्छ । पडोहरान्द पश्चाद्गृहवचनो देशी ॥

कृतापराधे प्रिये मान कारयन्ती सखी काप्यात्मनोऽनुरागातिशयेन मानाक्षमता-
ह—

अँच्छीइं वा यइस्स दोहिं वि हत्थेहिं वि तस्सिं दिट्ठे ।

अहं कैलम्बकुसुमं य पुलइअं कहँ णु ढक्किस्सम् ॥ १४ ॥

[अक्षिणी तावत्सर्वगविष्यामि द्वाभ्यामपि हस्ताभ्या तस्मिन्देहे ।

अहं कदम्बकुसुममिव पुलकितं कथं नु चैवादिष्यामि ॥]

१ 'भिसणेमि' इति ख पुस्तके, 'भसलेमि' इति च क-पुस्तके पाठः. २. 'वर्ण
[टि] इति घ-पाठः. ३. 'ह्येषोत्सुकिताया' इति ग घ-पाठः. ४. 'भरिष्यामि प्रियतम
मेति हस्ते' इति ग पुस्तके, 'विजहामीति प्रियतमहस्ते' इति च घ पुस्तके पाठः.
५. 'पुलोहर' इति ग पाठः. ६. 'छेआहि' इति क पाठः. ७. 'जाआहि' इति क
पाठः. ८. 'प्रोञ्छय' इति ग-पाठः. ९. 'छेआमि' इति ग घ पाठः. १०. 'भायां-
मे' इति घ पाठः. ११. 'हिरयसे' इति ग-पाठः. १२. 'अच्छीइ' इति ख-ग-पाठः.
१३. 'कअम्ब' इति ग-पाठः. १४. 'स्त्रीष्ये' इति ग पाठः. १५. 'सादयिष्ये' इति
ग-पाठः.

नायकसमीपगमामुकपथिकमुखेन सखीजनो नायिकाया अवस्थां गृहस्य विशीर्णता च सदृशग्राह—

झञ्झावाततृणिए घरमि रोकुण णीसहणिसण्णम् ।

दावेइ व गजवइअं विजुओओ जलहराणम् ॥ १५ ॥

[झञ्झावातोत्तृणिते गृहे रुदिरवा निःसहनिषण्णम् ।

दर्शयतीवै गतपतिका विद्युद्गोतो जलघराणाम् ॥]

झञ्झावातो वर्षानिलः । तेनोत्तृणिते तृणशून्यीकृते गृहे नि सहे यथा स्यात्तथा निषण्णां प्रोषितपतिकां विद्युद्गोतो जलघरेभ्यो दर्शयति । भवदुःखादियमेतामवस्थां प्राप्ता, तदस्याः पत्युस्तृणितं कुत येनासौ शटिल्यायास्यतीत्याशयेनेति भावः ॥

ग्राम्यलोचसोमे मन्दादरे नायकं प्रवर्तयितुं दूती अन्यापदेशेनाह—

मुअसु जं साहीणं कुतो लोणं कुगामरिद्धमिं ।

सुहअ सलोणेण वि किं तेण सिणोहो जहिं णत्थि ॥ १६ ॥

[मुहस्य यस्वाधीन कुतो लवण कुगामरिद्धे ।

सुमग सलवणेनापि किं तेन खेहो यत्र नास्ति ॥]

लवण सामुद्रिकम् । खेहो लावण्यम् । खेहो घृतादिः । पक्षे प्रेम । यद्यपि कुगाम-
वास्तित्वादियं कुवेवा तथापि त्वमि प्रेमातिशययुकेति भावः ॥

विरसमप्यनुरागवशात्सुरसं भवतीति कापि सखीमाह—

सुहपुंछिआइ हलिओ सुहपङ्कअसुरहिपवणणिज्जविअम् ।

तह पिअइ पैअइकड्डअं पि ओसहं जह ण णिट्ठाइ ॥ १७ ॥

[सुखपृच्छिकाया लिवो मुखपङ्कजसुरभिपवननिर्वापितम् ।

तथा पिबति प्रकृतिकटुकमप्यौषध यथा न तिष्ठति ॥]

अयमर्थ—ज्वरितस्य नायकस्य सुखप्रशार्पमाणतया नायिकया उष्ण ज्ञायौषध पू-
त्कारेण शीतल कृतम् । ततस्तेन तिष्ठमपि तन्निःशेष पीतमिति ॥

सा तत्र न गता, अह तु निकुञ्जे चिरे स्थित्वा समागत इति वदन्तं जारं दूती ना-
यिकायास्तत्र गमनं प्रतिपादयन्त्याह—

अह सा तहिं तहिं विअ वाणीरवणमि चुक्कसंकेआ ।

सुह दंसणं विमग्गइ पन्मट्टणिहाणठाणं व ॥ १८ ॥

१. 'दावेइ पडत्यपइअ' इति क पुस्तके, 'दावेइअ' इति च ख पुस्तके पाठ
२. 'इव' इति क ख घ-पुस्तकेषु नास्ति ३. 'विद्युद्गोतो' इति घ-पाठः. ४. 'व-
च्छिआइ' इति ग पाठः. ५. 'पक्किदिकड्डअमि' इति ग-पाठः. ६. 'मुखपृच्छिकाया
—' इति घ-पाठः. ७. 'निर्वाति' इति ग घ पाठः.

[अथ सा तैः तत्रैव बानीरवने विस्मृतसंकेता ।

तव दर्शनं विमौर्गति प्रग्रथनिधानस्यानमिव ॥]

अथ त्वद्गमनानन्तरं विस्मृतं संकेतस्थानं यया सा एतादृशी सा यत्र त्व गतस्तत्रैव बानीरवने त्वामन्वेषयतीति भावः ॥

कृतापरोधं नायकसहचरं मयाप्रायकोपसर्पणविमुखमभिमुखयितुं काचिदाह—

दृढरोषकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिं विप्पिअं कन्तो ।

राहुमुद्धम्मि त्रि सत्तिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ॥ १९ ॥ ५

[दृढरोषकलुषितस्यापि मुञ्जनस्य सुखार्दप्रियं कुतः ।

राहुमुखेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥]

कापि जाराभिमतगं पादनासमर्थां तत्कृतोपहारं परिहरन्ती कोऽत्र दोष इति वदन्तीं दूतीमाह—

अवमाणिओ वि ण तहा दुम्मिज्जइ सज्जणो विहवहीणो ।

पैडिकाउं असमत्थो माणिज्जन्तो जह परेण ॥ २० ॥

[अवमानितोऽपि न तथा ईयते सज्जनो विभवहीनः ।

प्रतिकर्तुमसमर्थो मन्यमानो यथा परेण ॥]

प्रतिकर्तुं प्रयुपकर्तुम् । मान्यमानो दानादिनां सत्क्रियमाणः ॥

विश्वासकथनाय प्रोत्साहयन्ती दूती नायिकामन्यापदेशेनाह—

कलहन्तरे वि अविणिग्गाआइं हिअअम्मि जरमुवगाआइं ।

सुअणकआइं रहस्साइं उहइ आउक्खए अग्गी ॥ २१ ॥

[कलहान्तरेऽप्यविनिर्गतानि हृदये जरामुपगतानि ।

मुजनश्रुतानि रहस्यानि दहत्यायुःक्षयेऽग्निः ॥]

कलहान्तरेऽपि कलहमध्येऽप्यविनिर्गतान्यप्रकटानि । हृदयान्तरे हृदयमध्ये ज पगतानि बहुकालं स्थितानि । आयुःक्षये सत्यमिदं इति । न पुनरन्यसिन्धुसकामः भावः ॥

१. 'तस्मिन् तस्मिन्नेव' इति ग-पाठः. २. 'अष्टसंकेता' इति ग-पुस्तके 'सुफ-संकेता' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'मार्गमति' इति ग-पाठः. ४. 'विप्रियं' इति ग-घ-पाठः. ५. 'पडिआउं' इति ग-पाठः. ६. 'दुर्मनायवे' इति ग-पाठः. ७. 'सं-मानितो' इति ग-पुस्तके, 'मन्यमानो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'कृतानि' इति ग-घ-पाठः.

द्विती प्रोषितभर्तृकाण्डाङ्गणस्य माधवीलताकुञ्जगहनत्वेन दिवैवाभिसरणयोग्यताम्,
नायिकायाश्च वसन्तकालप्राप्त्योत्कण्ठातिशयेन सुसाध्यता प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

लुम्बीओ अङ्गणमाहवीणं दारगगलाउ जाआउ ।

आसासो पन्थप्पलोअणे वि पिट्ठो गैअवईणम् ॥ २२ ॥

[स्वका अङ्गणमाधवीनां द्वारगला जाताः ।

आभासः पान्थप्रलोकनेऽपि नैद्यो गतपतिकानाम् ॥]

लुम्बीति स्वके देशी । यद्वा पन्थप्पलोअणे वर्तमानप्रलोकने । अर्थात्पत्युः । एतेन वस-
तोऽपि संवृत्तो वर्तमानप्रलोकनविनोदोऽपि नष्ट इति नायिकाया उत्कण्ठातिशयो ध्व-
नेतः ॥

सखी सख्याः कान्थं प्रत्यनुरागातिशयं नयनप्रशंसां वाह—

पिअदंसणसुहरसमउलिआई जइ से ण होन्ति णअणाई ।

ता केण कण्णरैइअं लक्खिज्जइ कुँवलअं तिस्सा ॥ २३ ॥

[प्रियदर्शनसुखरसमुकुलिते यदि तस्या न भवतो नयने ।

तैवा केन कर्णरचितं लक्ष्यते कुन्तलं तस्याः ॥]

आद्यस्य नयनपदेन द्वितीयस्य च कुन्तलयपदेनान्वयात्तस्या इति पदद्वयस्य न वैय-
र्थ्यमिति ध्येयम् ॥

अभ्युदयहेतुरपि कार्यवशादुद्रेग जनयतीति प्रतिपादयन्नागरिकः सहचरमाह—

चिक्खिहल्लुत्तहल्लसुहकड्डणसिठिले पँइम्मि पासुत्ते ।

अप्पत्तमोहणसुहा धणसमअं पामरी सवइ ॥ २४ ॥

[कर्दमममदलमुखकर्पणशिथिले पैल्यौ प्रसुप्ते ।

अप्राप्तमोहनसुखा घनसमय पामरी शपति ॥]

चिक्खिहल्लः कर्दमस्तत्र सुते मम सदलमुख तस्य कर्णेन शिथिले भान्ते पल्यौ
धमवशात्सुप्ते सति अप्राप्त मोहनसुखं सुरतसुखं यया सा पामरी घनसमय शपति । नि-
न्दतीत्यर्थः । यद्वा विद्यमानेऽपि पल्यौ हल्लिकवध्वाः सुलभतः प्रतिपादयन्त्या दूत्या जारं
प्रतीयमुक्तिः ॥

१. 'पन्थहिअपलोअणे' इति क-पाठः. २. 'गअपइआण' इति क-पुस्तके, 'गअव-
ईण' इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'विगतो' इति घ-पाठः. ४. 'लग' इति क-पाठः.
५. 'कुअलअं' इति क-पाठः. ६. 'तत्केन' इति घ-पाठः. ७. 'पिअम्मि' इति ग-
पाठः. ८. 'कर्दमाक्षित' इति ग-पाठः. ९. 'प्रिये' इति ग-पाठः.

गमनोद्यतस्य भर्तुर्गमनाक्षेपाय विरहदुःसहत्वं प्रकाशयन्ती कापि स्मरशरनमस्कार-
च्छेदनाह—

दुष्मेन्ति देन्ति सोकखं कुणन्ति अणुराजअं रमावेन्ति ।

अरद्दरद्वन्द्ववाणं णमो णमो मअणवाणाणम् ॥ २५ ॥

• [दुष्मन्ति ददति सोख्यं कुर्वन्त्येवमणं रमयन्ति ।

अरतिरतिबान्धवेभ्यो नमो नमो मदनबौणेभ्यः ॥]

विरहे दुःखदातृत्वात्संगमे च सुखदातृत्वादरतिरतिबान्धवत्वम् ॥

कापि कामबाणव्यापारवैचित्र्यवर्णनेन कमपि युवानं प्रत्यागतो मन्मथव्यथामाह—

कुसुममआ वि अइखरा अलद्धफंसा वि दूसहपआवा ।

भिन्दन्ता वि रइअरा कामस्स सरा बहुविअप्पा ॥ २६ ॥

[कुसुममया अप्यतिखरा अलब्धस्पर्शा अपि दुःसहप्रतोषाः ।

भिन्दन्तोऽपि रतिकराः कामस्य शिरा बहुविकल्पाः ॥]

बहुप्रकारा इत्यर्थः ॥

उत्कृष्टाधिकोदनार्थं प्रेषितमर्तुं वा प्रियशुणानाह—

ईसं अणेन्ति दीवेन्ति मम्महं विप्पिअं संहवेन्ति ।

विरहेण देन्ति मरिउं अहो गुणा तस्स बहुमग्गा ॥ २७ ॥

[ईर्ष्या जनयन्ति दीर्षयन्ति मन्मथं विप्रियं सौहृयन्ति ।

विरहे न ददाति मर्तुमहो गुणास्तस्य बहुमार्गाः ॥]

ईर्ष्या जनयन्तीत्यनेनाव्यवनिताभिः काम्यमान्तव्यासोन्दर्शातिशयः । दीर्षयन्ति मन्म-
थमिति मुरतकलाकौशलम् । विप्रियं साहयन्तीत्यनुनयवाद्वाच्यम् । विरहे न ददाति
मर्तुमित्यनेन पुनः समागमाशानिबन्धः प्रेमसद्भावश्च व्यज्यते । तस्य प्रियस्य गुणा ब-
हुमार्गा बहुप्रकाराः । 'तस्य कामशरस्य गुणा इत्यर्थः' इति कथितम् ॥

त्वय्यनुरक्ता सा बायनकदानव्याजेन गृहं गृहं अमन्ती तवापि गृहं गता । तत्रापि
त्वं तया न गृह इति दूरी शोपालम्भ कमप्याह—

णीआई अज्ज निक्खिअ पिणद्धणधरद्धओइ वराईए ।

परपरिवाडीअ पहेणआई तुह संसणासाए ॥ २८ ॥

१. 'दुर्मेनायन्ते' इति ग पुल्लके, 'द्वयन्ति' इति च घ पुल्लके पाठः. २. 'कारयन्ति'
इति ग-पाठः. ३. 'अणुराज' इति घ-पाठः. ४. 'अमिरति बान्धवानां' इति ग-पाठः.
५. 'बाणानाम्' इति ग-पाठः. ६. 'विभारा' इति ग-पाठः. ७. 'भिन्दमाना' इति
ग-पाठः. ८. 'बाणा' इति ग-पाठः. ९. 'दीवेन्ति' इति ग-पाठः. १०. 'दययन्ति'
इति घ-पाठः. ११. 'गृहयन्ति' इति ग पुल्लके, 'साधयन्ति' इति च घ-पुल्लके पाठः.

[नीतान्यद्य निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया वराक्या ।

गृहपरिपाट्या प्रहेणकानि तव दर्शनाशया ॥]

नवरङ्गकं नूतनरक्तवस्त्रम् । प्रहेणकानि वायनकानि । 'प्रहेणकं वायनकम्' इति हारावली । अयं भावः—धन्यस्त्वमस्ति यमुत्सवज्वालेन गृहगृहभ्रमणखेदमगणयन्ती सा त्वां दिदृक्षते । अतस्तामात्मदर्शनेनानुकम्पस्वेति ॥

दरिद्रनायकासक्त्या नायिकां तद्वक्ष्यन्सूचनेन सखी निवारयितुमाह—

सूक्ष्महेमन्तम्मि दुग्गओ पुष्कुआसुअन्धेण ।

धूमकविलेण पँरिविरलतन्तुणा जुण्णवड्ढएण ॥ २९ ॥

[सूच्यते हेमन्ते दुर्गतः करीपाप्रिसुगन्धेन ।

धूमकविलेन परिविरलतन्तुना जीर्णपटकेन ॥]

पुष्कुआ इति करीपाप्रौ देशी ॥

शिशिरसमये प्रवासोयतस्य नायकस्य गमनाद्येपाय नायिका शिशिरप्रवासिनोऽवस्य वर्णयति—

✓ सरत्तिप्पिरँउड्डिहिआइँ कुणइ पडिओ हिमागमपहाए ।

आअमणजलोद्धिअहत्थफँसमसिणाईँ अङ्गाइँ ॥ ३० ॥

[तीक्ष्णपलालोद्धिखितानि करोति पथिको हिमागमप्रभाते ।

आचमनजलार्द्रितहस्तस्पर्शमसृणान्यङ्गानि ॥]

सिप्पिरं पलालः । ओड्डिओ आर्द्रितः । देशी द्वयम् । यदीदानीं त्वया गम्यते तव सत्वापीयमवस्था भविष्यतीति भावः ॥

परिशुद्धीतोत्तमस्त्रीकमधर्मं चौरं कामुकजनेऽभिद्ववति सति कोऽप्युत्कृष्टनायिकाप रिप्रहरसिक्तस्य निकृष्टस्य निषेधावान्यापदेशेमाह—

✓ णक्खक्खुड्डिअं सहआरमअरिं पामरस्स सीसम्मि ।

बन्दिम्मिव हीरतिं भमरजुआणा अणुसरन्ति ॥ ३१ ॥

[नखोत्खण्डितां सहकारमञ्जरीं पामरस्य शीर्षे ।

बन्दीमिव, ह्रियमाणां भ्रमरसुवानोऽनुसरन्ति ॥]

त्वयाप्युत्तमस्त्रीपरिग्रहे कृते युवान उपद्रावविष्यन्तीति भावः । यद्वा विपद्भ्रष्टाव

१. 'परिपाला पथिनयनानि' इति घ पाठः. २. 'धुम्म' इति ग पाठः. ३. 'पँरिविरल' इति ग-पाठः. ४. 'सुगन्धिना' इति ग पाठः. ५. 'सिप्पिरँउड्डिहि' इति क-पाठः. ६. 'पुस' इति क-स्व-पाठः. ७. 'तीक्ष्णतृणाप्रो' इति ग-पुस्तके, 'सरपलाल' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याधिनायिकायाः सखी तस्या विपदुद्धरणायान्यापदेशेन नायकमाह—नवस्तण्डनपा-
मरशिरोवस्थानरूपविपत्यतितां सहकारमञ्जरीं तिर्यञ्चो भ्रमरा अप्यनुसरन्तीति रत्तिक-
शिरोमणेश्वरीदासीन्यमनुचितमित्याशयः ॥

विदिताभिप्रायोऽसि मयेति व्यञ्जयन्ती दूती नायक विश्वासयितुमाह—

सूरच्छलेण पुत्तञ्च कस्स तुमं अज्झलिं पणामेसि ।

हासकडक्खुम्मिस्सा ण होन्ति देवाणं जेकारा ॥ ३२ ॥

[सूर्यच्छलेन पुत्रक कैसै त्वमज्जलिं प्रणामयसि ।

हासकटाक्षोन्मिथा न भवन्ति देवानां जेयकाराः ॥]

जयकारा जयजयेत्यादिकाः स्तुतयः । जेकारो नमस्कारे देशीति कथित् ॥

चौरैरतग्रसंयया दूती नायिका मुत्कण्ठयितुमाह—

मुहविज्झविअपईवं णिरुद्धसासं सैसद्धिओल्लवम् ।

सवहसअरक्खिओटुं चोरिअरमिअं सुहावेइ ॥ ३३ ॥

[मुहविज्झापितप्रदीपं निरुद्धासं सैसद्धिलोलापम् ।

शपथशतरक्षितोष्टं चोरिकारमितं सुखयति ॥]

मुधेन मुखपातेन विष्मापितो निर्वापितः प्रदीपो यत्र तत् ॥

रहस्यकथया दूती नायिका विश्वासयितुमाह—

गेअच्छलेण भरिअं कस्स तुमं रुअसि णिअमरुक्कण्ठम् ।

मण्णुपडिरुद्धकण्ठद्वणिन्तखलिअक्खरुल्लवम् ॥ ३४ ॥

[गेयच्छलेन स्मृत्वा कस्य त्वं रोदिपि निर्मरोत्कण्ठम् ।

मण्डुप्रतिरुद्धकण्ठार्धनिर्यस्तखलिताक्षरोल्लापम् ॥]

कस्य स्मृत्वा त्वं रोदिपि । नैवविध गीतं भवतीति मया ज्ञातम् । यदर्थं खिद्यसे तमहं
अधिष्ठामीति भावः ॥

स्वयदूती प्रतिपेशिजारे प्रति स्वावसरं व्यापयितुमाह—

यहलतमा हजराई अज्ज पडत्यो पई घरं सुण्णम् ।

तह जग्गेसु सअज्जिअ ण जहा अम्हे मुंसिज्जामो ॥ ३५ ॥

१. 'दिष्माण' इति क-पाठः. २. 'जेकारा' इति ख पुस्तके, 'जेकारा' इति च
मुस्तके पाठः. ३. 'कस्य' इति ग घ-पाठः. ४. 'हास' इति घ-पाठः. ५. 'जो-
जरा' इति ग-पाठः, 'जेकाराशब्दो नमस्कारे वर्तते' इति कुञ्जबालदेवः. ६. 'तसं-
दकावम्' इति क-ग-पाठः. ७. 'निर्वापित' इति ग घ-पाठः. ८. 'चोरैरत' इति
पाठः. ९. 'निर्मच्छत्' इति ग-पाठः. १०. 'मुविज्झामो' इति क-पाठः.

[बहुलतमा हतरात्रिरथ प्रोषित पतिर्गृह शून्यम् ।

तथा जागृहि प्रतिवेशिन् यथा वैय मुष्यामहे ॥]

बहुल तमो यस्यामित्यनेन गाढाभकार आगच्छन्त कोऽपि न लक्ष्यतीति सूचितम् ।
अथ प्रोषित इत्यनेन तदागमनशङ्का निरस्य । गृह शून्यमित्यनेनेदं स्वच्छदमाग-
च्छेति ध्वनितम् ॥

प्रोषितमर्तुकाया सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपगामिन पथिकमाह—

संजीवणोपहिमिव सुअरस रक्खइ अण्णवावारा ।

सासू णवन्मदंसणकण्ठागज्जीविम सोहम् ॥ ३६ ॥

[संजीवनौषधिमिव सुतस्य रक्षत्यनन्यव्यापारा ।

अथूर्नवाभ्रदर्शनकण्ठागतजीवितां क्षुषाम् ॥]

अथ क्षुषां सुतस्य संजीवनौषधिमिव रक्षतीति संबन्ध ॥

अविज्ञता प्रातरागतं नखदन्तस्यताद्यद्विद कान्तं सेष्यमाह—

णूणं हिअअणिहिताइ वससि जाआइ अम्ह हिअअम्मि ।

अण्णइ मणोरहा मे सुहअ कइ तीअ विण्णाआ ॥ ३७ ॥

[नून हृदयनिहितया वससि जाययासाक हृदये ।

अन्यथा मनोरथा मे सुभग कथं तथा विशाता ॥]

जायया सहासाक हृदये वसति । अन्यथा नखस्यतादिक यन्मया चिकीर्षितं तत्तथा
कथं कृतमित्यर्थः ॥

इती नायिकाया अनुरागविषय सूचयती नायकमाह—

सइ सुहअ अईसन्ते तिरसा अछ्छीहिं कण्णलगोहि ।

दिण्ण घोळिरवाइहिं पाणिअ दंसणसुहाणम् ॥ ३८ ॥

[त्वयि सुभग अहृदयमाने तस्मा अक्षिभ्यां कर्णलग्नाभ्याम् ।

दत्तं पूर्णनशीलशोभाभ्यां पानीय दर्शनमुन्नेम्य ॥]

अहृदयमाने दंसनपथमतिक्रम्य गते । कर्णलग्नाभ्यां स्पर्शनचोतुकविक्रिताभ्यामि-

१ 'बहुलाभकारा' इति ग-पाठः. २. 'अस्मासुप्पीयु' इति ग-पुस्तके, 'बद-
समुद्रिजाम' इति क घ-पुस्तके पाठः. ३. 'संजीवनौषधिमिव' इति क-ग-पाठः.
४ 'कण्ठेइत' इति घ-पाठः. ५. 'तागृहअ' इति ग-पुस्तके, 'तागृभ' इति क-
पुस्तके पाठः. ६ 'मे हृदय कथ' इति क ख-पुस्तकयो, 'मे हृद कथ' इति घ-
पुस्तके पाठः. ७ 'अरिउते' इति क-पाठः. ८ 'अक्षिभ्यां' इति ग-पाठः.
९ 'पूर्णमानभ्यां' इति ग-पाठः. १०. 'वाद्याभ्यां' इति घ-पाठः.

त्यर्थः । अतः परं त्वदर्शनं दुर्लभमिति मत्वा तस्यै परलोकगताय जलं दत्तमित्युपेक्षा ।
यद्वा त्वत्प्रेक्षाप्रदितं तथा, किंतु सुखाय जलाप्रतिर्दत्त इत्यपद्धतिः ॥

श्रोयितभर्तृका कान्तं प्रति गायया सदेशमाह—

उपेक्षस्वागर्तुअमुहदंसणपडिरुद्धजीविआसाइ ।

दुहिआइ मए कालो केत्तिअमेत्तो व्व णेअव्वो ॥ ३९ ॥

[उपेक्षागतत्वनमुखदर्शनप्रतिरुद्धजीविताशया ।

दुःखितया मया कालः कियन्मानो वै नेतव्यः ॥]

उपेक्षया भावनयागतस्य प्राप्तस्य तव मुपदर्शनेन प्रतिरुद्धा स्थापिता जीविताशा-
यस्यास्तया । अन्यथा जीविताशा गच्छेदेवेति भावः ॥

गलितरूपयोवनां कामपि कुलटा कुटन्याह—

बोलीणालक्खिअरूअजोव्वणा पुत्ति कं ण दुम्मेसि ।

दिट्ठा पणट्ठोपोराणजणवआ जम्मभूमि व्व ॥ ४० ॥

[व्यक्तिकान्तोपलक्षितरूपद्वौ रता पुरि कं न दुँतोषि ।

ईष्टा प्रणष्टपौराणजनपदा जन्मभूमिरिव ॥]

व्यक्तिकान्तगत एवालक्षितं रूपं यौवनं च यस्याः सा । जनपदो लोकः ॥

वयस्यस्याभिमतं संपरस्वत इति नायकसहचरेण पृष्टा दूती तमाह—

परिओसविअसिएहिं भणिअं अच्छीहिं तेण जणमज्जे ।

पडिक्खणं तीअ वि उव्वमन्तसेएहिं अज्जेहिं ॥ ४१ ॥

[परितोषविकसिताभ्यां भणितमश्विभ्यां तेन जनमध्ये ।

प्रतिपन्नं तयाप्युद्धमत्सेदैरङ्गैः ॥]

भणितमर्थास्त्राभिमतम् । प्रतिपन्नमङ्गीकृतम् ॥

परस्परानुरागवतोरपि कयोश्चित्तमागमयोग्यसकेतस्थलाभावादभिप्रेतसिद्धिर्न जा-
तेति नागरिकः सहचरमाह—

एक्ककमसंदेसाणुराअवहुन्तकोउह्लाई ।

दुक्खं असमत्तमणोरहाई अँच्छन्ति मिहुणाइ ॥ ४२ ॥

१. 'तुह' इति ग-पाठः. २. 'दुहदया' इति ग-पाठः. ३. 'इति' इति ग-पुस्तके,
'इव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'बोलीणोलेखिअ' इति ग-पाठः. ५. 'दिट्ठपणट्ठ'
इति क-पाठः. ६. 'व्यक्तिकान्तोपलक्षित' इति ग-पाठः. ७. 'दुर्मनायमाना भवसि'
इति ग-पुस्तके, 'दुर्मसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'ईष्टा प्रनष्ट' इति ग-घ-पाठः.
९. 'वच्छन्त' इति क-पाठः. १०. 'अहन्ति' इति ग-पाठः.

[अन्योन्यसंदेशानुरागनर्घमानकौतूहलानि ।

दुःखमसमाप्तमनोरथानि तिष्ठन्ति मिथुनानि ॥]

प्रियं प्रति जातमनुरागं गोपयन्तीं नायिकां सखी आह—

जैह सो ण बल्लहो छिअ गोत्तमगहणेण तस्स सखि कीस ।

होइ मुहं ते रविअरफंसव्विसदं व तामरसम् ॥ ४३ ॥

[यदि स न बल्लभ एव गोत्रमहणेन तस्य सखि किमिति ।

भवति मुखं तव रविकरस्पर्शविकमितमित्र तामरसम् ॥]

गोत्रं नाम । विसदं विकसितम् ।

कथं कृपिता त्व प्रसन्नासीति मातुलान्या पृथा कापि मानापनयहेतुमाह—

माणदुमपरुषपवणस्स मामि सव्वङ्गणिं वुइअरस्स ।

अवऊहणस्स भदं रइणाढअपुण्वरङ्गस्स ॥ ४४ ॥

[मानदुमपरुषपवनस्य मातुलानि सर्वाङ्गनिर्वृतिकरस्य ।

अनगूहनस्य भद्रं रतिनाटकपूर्वरङ्गस्य ॥]

अनगूहनस्यालिङ्गनस्य । भद्रं भवत्विति शेषः । प्रियालिङ्गनान्मानोऽपगत इति

भावः ॥

कमपि युवानं प्रति जातानुरागा कापि स्वहृदयनिषेधच्छेदेन संगमोत्सुक्यमाह—

णिअआणुमाणणीसङ्क छिअ दे विरम एत्ताहे ।

अमुणिअपरमत्थजणाणुलगा कीस म्ह लहुएसि ॥ ४५ ॥

[निजकानुमानेन शङ्क हृदय दे प्रसीद विरमिदानीम् ।

अज्ञातपरमार्थजनानुलभ किमित्यकाङ्क्षयामि ॥]

निजकानुमानेन निःशङ्केति हृदयविशेषणम् । स्वमिव परमपि परदुःखदुःखितं ज्ञात्वा
त्यक्तमनोरथमङ्गभवेत्यर्थः । देशन्दः संरोधने । अज्ञातपरमार्थे परव्ययानभिज्ञे अने-
ऽनुत्तरं भाषणम् ॥

१. 'एकैकमसंदर्शनानुराग' इति ग-पुस्तके, 'एकक्रमसंदेशानुराग' इति च घ-
पुस्तके पाठः. २. 'सन्ति' इति घ-पाठः. ३. इयं सटीका याया क पुस्तके नास्ति.
४. 'मिव' इति ग-पाठः. ५. 'ममिनि' इति ग पुस्तके, 'मातुलि' इति घ घ-
पुस्तके पाठः. ६. 'हे हृदय' इति क-ख-ग-पाठः. ७. 'विरमैतावती' इति ग-पाठः.

जारव्यामोदनाय दूती नायिकामाः सौन्दर्यातिशयं व्यापयितुमाह—

ओसंहिभजणो पङ्कजा सलाहमाणेण अइचिरं हसिओ ।

चन्दो त्ति मुज्झ वज्जे विईण्णकुसुमज्जलिविलक्खो ॥ ४६ ॥

[आवसथिकजनः पत्या स्नायमानेनातिचिरं हसितः ।

चन्द्र इति तव वदने वितीर्णकुसुमाञ्जलिविलक्षः ॥]

आवसथिकश्चन्द्रार्धदानादिव्रतनियमस्थो जनश्चन्द्रधमेण त्वन्मुखे प्रक्षिप्तपुष्पाञ्जलिः पत्या विहसित इत्यर्थः ॥

किमिति दुर्बलासीति सखीभिः पृथया त्वया किमुत्तरं दीयत इति धूर्तनायकेनोक्ता नायिका तमाह—

छिज्जन्तोहिं अपुदिणं पच्चक्खंमि वि तुमम्मि अक्खेहिं ।

बालअ पुच्छिज्जन्ती ण आणिमो कस्स किं भणिमो ॥ ४७ ॥

[क्षीयमाणैरनुदिनं प्रत्यक्षेऽपि त्वय्यज्ञैः ।

बालक पृच्छयमाना न जानीमः कस्य किं भणामः ॥]

बालक उचितानभिज्ञ । क्षीयमाणैरज्ञैरुपलक्षिता । पृच्छयमाना किमिति दुर्बलासीति शेषः । पूर्वं तव प्रवासो दुर्बलत्वे कारणमासीत्, अधुना तु सनिहिते त्वमि तव दुधेश्वरप्रतीयतीषु सखीषु किं वक्तव्यं तत्र जानीम इति भावः । प्राकृते वचनस्यानियमात्पृच्छयमानैरेकवचनं जानीम इति बहुवचनं च न विरुद्धमिति ध्येयम् ॥

प्रथमतः कृतशीलखण्डनं ततो मन्दादरं कमपि नायकमनुकूलयितुं दूती सोपास्ममाह—

अङ्गाणं तणुआरअ सिक्खावअ दीहरोइअव्वाणम् ।

विणआइक्कमआरअ मा मा णं एम्हसिज्जासु ॥ ४८ ॥

[अङ्गानां तनुकारक शिक्षक दीर्घरोदितव्यानाम् ।

विनयातिक्रमकारक मा मा एनां प्रेसरिष्यसि ॥]

तन्विति भावप्रधानो निर्देशः । तनुत्वकारकेत्यर्थः । विनयस्य शीलव्यातिक्रमः खण्डनं तत्कारक ॥

१. 'समुद्दि सहिभजो' इति ग-पाठः. २. 'विमुक्' इति क-पुस्तके, 'विक्रिण्' इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'समुद्धि सखीजनो' इति ग-पाठः. ४. 'विधीर्ण' इति ग-पाठः. ५. 'क्षीयमाणैः' इति ग-पाठः. ६. 'त्वयाज्ञैः' इति ग-पाठः. ७. 'तनुत्व-कारक' इति घ-पाठः. ८. 'शिक्षापक' इति ग-घ-पाठः. ९. 'प्रमार्जय' इति ग-पुस्तके, 'प्रभंशय' इति च घ-पुस्तके पाठः.

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काचिदाह—

अण्णह ण तीरइ च्चिअ पैरिवडुन्तगरुअं पिअअमस्स ।

मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खम् ॥ ४९ ॥

[अन्यथा न शक्यत एव पैरिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।

मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

प्रियतमस्य विरहदुःखं प्रियतमविरहेण जातं दुःखं स्वस्य मरणविनोदेन विना अन्यथा प्रकारान्तरेण विरमयितुं न शक्यत एवेत्यर्थः ॥

काप्यात्मनोऽनुरागं तस्य चान्यासक्तिं सूचयन्ती नायकमाह—

वण्णन्तीहिं तुह गुणे बहुसो अम्हेहिं छिञ्छईपुरओ ।

वालअ सअमेअ कंओसि दुहोहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीभिस्तव गुणान्वद्भुशोऽस्मामिरसतीपुरतः ।

बालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कैसौ कुप्यामः ॥]

छिञ्छई असती । त्वद्गुणमुखरायाः स्वरुत एवाय ममानर्थ इति भावः ।

कापि स्वसौभाग्यप्रकटनायात्मनः प्रियस्य चान्योन्यानुरागमाह—

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुवगूढो ।

पढमोसरिअस्स णिअंसणस्स गरिठ विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलक्षो मयापि हसित्वा गाढमुपगूढः ।

प्रथमापस्तस्य निवसनस्य ग्रन्थि विमोर्गयमाणः ॥]

प्रथमेलनुरागातिशयेन प्रियस्पर्शात्पूर्वमेव स्खलितस्त्वेत्यर्थः । वैलक्ष्यापनयनाय मयापि गाढमालिङ्गित इति भावः ॥

अन्यासक्तं नायकमनुकूलयितुं दूती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

कण्डुल्लुआ वराई अज्ज तए सा कआवराहेण ।

अलसाइअरुण्णविअम्भिआइ दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥

[कण्डर्जुका वराकी अय त्वया सा कृतापराधेन ।

अलसायितरुदितविमृन्मितानि दिवसेन शिक्षिता ॥]

१. 'पैरिवडुन्तस्स गरअपेम्मस्स' इति क-ख-पाठः. २. 'पैरिवर्धमानस्य गुण-
क्रेमणः' इति घ-पाठः. ३. 'कस्स कुप्पामि' इति ग-पाठः. ४. 'निअंसणशब्द-
परिधानवज्रवाचकः' इति कुलबालदेवः. ५. 'विमोर्गन्' इति ग-पुस्तके, 'विमृगमाण-
इति घ-पुस्तके पाठः. ६. 'सिक्खइआ' इति ग-पाठः. ७. 'कर्णकण्डुका' इति घ-पाठः

काण्डवद्वज्रका । 'कण्णुज्जुआ' इति पाठे कर्णकजुवा कर्णदुर्बलेत्यर्थः । 'कन्या
कजुवा इत्यर्थः' इति कथितम् ॥

वापि दाक्षिण्यादनुनयन्तं शठं नायकमाह—

अवराद्धेहिं वि ण तद्वा पत्तिअ जह मं इमेहिं दुम्मेसि ।

अवहत्थिअसत्तमावेहिं सुहअ दक्खिण्णभणिएहिं ॥ ५३ ॥

[अपराधैरपि न तथा प्रतीहि यथा भोगेभिर्दुनोपि ।

अपहस्तितसद्भावैः सुभग दाक्षिण्यमणितैः ॥]

निद्राव्याजेन प्रियाशयजिज्ञासया परिभ्रमन्ती भुजा निर्भर्त्सयन्ती नायिकां नायक
आह—

मा जूर पिआलिङ्गणसरहसभमिरीणं वाहुलइआणम् ।

तुहिकपरुण्णेण अ इमिणा माणंसिणि सुहेण ॥ ५४ ॥

[मा कुप्यस्व प्रियालिङ्गनसरभसभ्रमणशीलाम्या वाहुलतिकाम्याम् ।

तूष्णीकप्रवृत्तिर्नैवैतेन मनस्विनि सुखेन ॥]

वाहुलतिकाम्यामित्यत्र 'कुप्यद्देर्घ्यासूयार्थानां यं प्रति क्रोधः' इति चतुर्थी । अत्र
सापराधं प्रियं प्रति क्रोधाभावेन विशेषोक्तिः । अदोषी दोषी प्रति क्रोधेन च विभावना
दृष्टव्या । तादृशेण तु 'विशेषोक्तिरसंश्लेषेण कारणेषु फलवचः' 'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि
फलव्यक्तिर्विभावना' इति काव्यप्रकाशकारोक्तं दृष्टव्यम् ॥

पुष्पावचयच्छलेन सवेतस्थानं गच्छन्तं वामुकं क्वपि जरत्तुहनी सपरिहासमाह—

मा वञ्च पुष्फलाविर देवा उअअज्जलीहिं तूसन्ति ।

गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाइं कूलाइं ॥ ५५ ॥

[मा व्रज पुष्फलयनशील देवा उदवाञ्जलिमिस्तुष्यन्ति ।

गोदावरी. पुत्रक शीलान्मूलानि कूलानि ॥]

पुष्पाणां लवनं छेदनम् । शीलं सञ्चरितसुन्मूलयन्ति निर्मूलं कुर्वन्तीति तथामृतानि ॥

कस्मिन्नपि यूनि जाताभिलाषी स्त्राभिलाषं लब्ध्वा गोपयन्ती नायिकां सखी आह—

वअणे वअणम्मि चलन्तसीसमुण्णावहाणहुंकारम् ।

सहि वेन्ती पीसासन्तरेसु कीस म्ह दुम्मेसि ॥ ५६ ॥

१. 'दुम्मेसि' इति ग-पाठः. २. 'मामेतैरपहुर्मनायसे' इति ग-पुस्तके, 'मामेभिर्नो-
दुम्मेसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'जल' इति ग-पाठः. ४. 'अयि सुवसु मणंसिणि
हुहेण' इति ग-पाठः. ५. 'अयि सपिहि मनस्विनि सुखेन' इति ग-पाठः. ६. 'पि-
सासन्तरेण' इति ग-पाठः.

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काचिदाह—

अण्णह् ण तीरइ खिअ परिवहुन्तगरुअं पिअअमस्स ।

मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खम् ॥ ४९ ॥

[अन्यथा न शक्यत एव परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।

मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

प्रियतमस्य विरहदुःखं प्रियतमविरहेण जातं दुःखं स्वस्य मरणविनोदेन विना अन्यथा प्रकारान्तरेण विरमयितुं न शक्यत एवेत्यर्थः ॥

काप्यात्मनोऽनुरागं तस्य चान्यासक्तिं सूचयन्ती नायकमाह—

वण्णन्तीहिं तुह् गुणे बहुसो अन्हेहिं छिञ्छइपुरओ ।

वालअ सअमेअ कंओसि दुल्लहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीभिस्तव गुणान्बहुशोऽस्माभिरसतीपुरतः ।

बालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कैसौ कुप्यामः ॥]

छिञ्छइ असती । त्वद्गुणमुखरायाः सकृत् एवायं ममानये इति भावः ।

कापि स्वसौभाग्यप्रकटनायात्मनः प्रियस्य चान्योन्यानुरागमाह—

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुवगूढो ।

पढमोसरिअस्स णिअंसणस्स गण्ठ विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलक्षो मयापि हसित्वा गाढमुपगूढः ।

प्रथमापसृतस्य निवसनस्य ग्रन्थि विमोर्गयमाणः ॥]

प्रथमेत्यनुरागातिशयेन प्रियस्पर्शात्पूर्वमेव स्तलितस्येत्यर्थः । वैलक्ष्यापनयनाय मया गाढमालिङ्गित इति भावः ॥

अन्यासक्तं नायकमनुकूलयितुं दूती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

कण्डुज्जुआ वराई अज्ज तए सा कआवरोहेण ।

अलसाइअरुण्णविअम्भिआई दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥

[कण्डर्जुका वराकी अद्य त्वया सा कृतापराधेन ।

अलसायितरुदितविजृम्भितानि दिवसेन शिशिता ॥]

१. 'परिवहुन्तस्स गरुअपेम्मस्स' इति क-ख-पाठः. २. 'परिवर्धमानस्य गुरु कप्रेष्णः' इति घ-पाठः. ३. 'कस्य कुप्पामि' इति ग-पाठः. ४. 'णिअंसनशब्दः परिधानवस्त्रवाचकः' इति कुलबालदेवः. ५. 'विमार्गन्' इति ग-पुस्तके, 'विमृगमाणः' इति घ-पुस्तके पाठः. ६. 'खिखरआ' इति ग-पाठः. ७. 'कर्णकजुका' इति घ-पाठः.

काण्डवहजुका । 'कण्णुज्जुआ' इति पाठे कर्णेऋजुका कर्णदुर्वलेत्यर्थः । 'कन्या
ऋजुका इत्यर्थः' इति कश्चित् ॥

कापि दाक्षिण्यादनुनयन्त शठ नायकमाह—

अवराहेहिं वि ण तहा पत्तिअ जह मं इमेहिं दुम्मेसि ।

अवहत्थिअसत्तमावेहिं मुहअ दक्खिण्णभणिण्हिं ॥ ५३ ॥

[अपरधैरपि न तथा प्रतीहि यथा भौमेभिर्दुनोपि ।

अपहस्तितसद्भावे सुभग दाक्षिण्यभणितै ॥]

नेत्राभ्यानेन प्रियाशयजिज्ञासया परिभ्रमन्ती भुनो निर्भर्त्सयन्ती नायिका नायक

मा जैर पिआलिङ्गणसरहसभमिरीणं बाहुलदआणम् ।

तुहिकपरुण्णेण अ इमिणा माणंसिणि मुहेण ॥ ५४ ॥

[मा कुप्यस्त प्रियालिङ्गनसरभसभ्रमणशीलाम्या बाहुलतिकाभ्याम् ।

तूष्णीकप्ररुदितेन चानेन मनस्विनि मुखेन ॥

बाहुलतिकाभ्यामित्यत्र 'कुपडुहेध्यासूयायां ना य प्रति कोप' इति चतुर्थी । अत्र
राध प्रिय प्रति श्रोधाभावेन विशेषोक्तिः । अदोषी दोषी प्रति क्रोधेन च विभावना
य्या । तद्वक्ष्य तु 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलवच' 'क्रियाया प्रतिषेधेऽपि
प्रत्यक्तिर्विभावना' इति काव्यप्रकाशकारोक्तं द्रष्टव्यम् ॥

पुष्पार्चयच्छलेन सकेतस्थान गच्छन्त कामुक कापि जरत्कुन्ती सपरिहासमाह—

मा वय पुष्फलाविर देवा उअअञ्जलीहिं तूसन्ति ।

गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाइं कूलाइं ॥ ५५ ॥

[मा व्रज पुष्पलवनशील देवा उदकाञ्जलिमिस्तुप्यन्ति ।

गोदावर्या पुत्रक शीलो मूलानि कूलानि ॥]

पुष्पाणां लवन छेदनम् । शील सञ्चरितमु मूलवन्ति निर्मूल कुर्वन्तीति तथामूलानि ॥

कस्मिन्नपि मूनि जाताभिलाषां स्त्राभिलाष लब्धया गोपयन्ती नायिका सखी आह—

घअणे चअणम्मि चलन्तसीसमुण्णावहाणहुंकारम् ।

सहि देन्ती णीसासन्तरेसु कीस म्ह दुम्मेसि ॥ ५६ ॥

१. 'दमेसि' इति ग-पाठ . २. 'नामेतैरपदुर्मनायसे' इति ग-मुख्ये, 'नामेमिनो-
ति' इति घ-मुख्ये के पाठ . ३ 'जूल' इति ग पाठ . ४ 'अयि सुवसु मणसिलि
न' इति ग पाठ . ५ 'अयि स्वपिहि मनस्विनि मुखेन' इति ग-पाठ . ६. 'नि-
पन्तरेण' इति ग-पाठ .

[वचने वचने चलच्छीर्षशून्यावधानहुंकारम् ।

सखि ददती निःश्वासान्तरेषु किमित्यस्मान्देनोपि ॥]

कृतापराध कान्त प्रति प्रियाया अनङ्गीकारं बोधयन्ती दूती आह—

सद्भावं पुच्छन्ती बालञ्च रोआविआ तुह पिआए ।

णत्थि चिअ कअसवहं हँसुम्मिस्सं भणन्तीए ॥ ५७ ॥

[सद्भावं पृच्छन्ती बालञ्च रोदितौ तव प्रियया ।

नास्त्येव कृतशपथं हँसोन्मिश्रं भणन्त्या ॥]

रोदिता अहमिति शेषः । नास्त्येवेत्यनन्तरं दूतीति शेषः । अपि नाम स्थिरश्लेहोऽयं तव पतिरिति पृष्टे नास्त्येव सद्भावं इति वक्ष्यन्त्या रोदिताहमिति भावः ॥

संकल्पमानात्सत्त्विकभावा भवन्तीति कापि खवैदम्भ्यं हयापयितुं सखीमाह—

एत्थ मए रमिअव्वं तीअ समं चिन्तिऊण हिअण्ण ।

पामरकरसेओहँ णिवअइ तुवरी धविज्जन्ती ॥ ५८ ॥

[अत्र मया रन्तव्यं तया समं चिन्तयित्वा हृदयेन ।

पामरकरसेदार्या निपतति तुवरी उप्यगाना ॥]

सममित्यनन्तरमितीति शेषः । इति चिन्तयित्वोप्यमानेति योजना । तुवरी आढरी । 'आढरी तु तुवर्या' धी परिमाणान्तरे त्रिषु' इति मेदिनी ॥

काव्यप्रमनः पत्नौ कस्याधिदुःखरागं सूचयन्ती सखीमाह—

गह्वइमुओषिएसु वि फलहीवेण्टेसु उअह बहुआए ।

मोहं भमइ पुलइओ बिलंगसेअहुली हत्थो ॥ ५९ ॥

[गृहपतिसुतावचितेष्वपि कर्पासवृन्देषु पश्यत वप्याः ।

मोघं क्रमति पुलनितो मिलमस्तेदाहुर्हिंसः ॥]

१. 'निःश्वासान्तरेण' इति ग-पाठः. २. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ३. 'हँसो' इति ग-पाठः. ४. 'रोदितामि' इति ग-पाठः. ५. 'उहा' इति ग-पाठः. ६. 'अविजन्ती' इति र-पाठः. ७. 'रमिअव्व' इति घ-पाठः. ८. 'तुवरी वयमा' इति ग-पाठः. ९. 'ओहा' इति घ-पाठः. १०. 'गह्व' इति ग-पाठः. ११. 'मोघं' इति ग-पाठः. १२. 'मल्ल' इति ग-घ-पाठः.

शोऽप्यतमनो विश्रुत्वं ख्यापयन्सखायमाह—

अज्जं मोहणसुद्धिअं मुअत्ति मोत्तू पलाइए हल्लिए ।

दरुद्धिअवेण्टभारोणआइ हसिअं व फैलहीए ॥ ६० ॥

[आर्यो मोहनसुखितां मृतेति मुक्त्वा पलायिते हल्लिके ।

• दरस्फुटितवृन्तभारावनतया हसितमित्र कार्पासा ॥]

आर्यो तदणीं गुरतयेदेन निमीलितनयनां मृतेति ह्लात्वा हल्लिके पलायिते सति ईप-
स्फुटितवृन्तभारया लज्जावशादिबावनतया कार्पासा हसितमित्र ॥

काप्यात्मनो निन्दाछलेन वान्तं प्रलनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती सखीमाह—

णीसामुकम्पिअपुलइएहि जाणन्ति णसिउं घण्णा ।

अम्हारिसीहि दिट्ठे पिअम्मि अप्पा वि वीसरिओ ॥ ६१ ॥

[नि.भासोत्कम्पितपुलरितैर्जानन्ति नर्तितुं घन्याः ।

अस्मादशीभिर्दृष्टे प्रिये आत्मापि विस्मृतः ॥]

अत्र ता अधन्या वयं तु घन्या इति व्यतिरेवालंकारो व्यङ्ग्यः ।

इदं सिद्धये दूती नायिकाया व्याजमुक्तिमाह—

तणुएण वि तणुइअइ रीएण वि रिअए बला इम्मिणा ।

मन्मथेण वि मज्जेण पुत्ति कह मुअ पडिवक्खो ॥ ६२ ॥

[तनुकेनापि तनूयते क्षीणेनापि क्षीयते बलादनेन ।

मध्यस्थेनापि मध्येन पुत्रि कथं तत्र प्रतिपद्यः ॥]

यो हि मध्यस्थत्वादिरुणयुक्तः स परं न पीडयति । अयं तु तव मध्यस्तनुरपि क्षी-
नोऽपि मध्यस्थोऽपि परं पीडयतीत्यभिप्रायस्योक्तो विरोधाभासः ॥

काव्यात्मनो वैदग्ध्यमनुरागे च सूचयन्ती कमप्याह—

वाहिव्व चेअरहिओ धजरहिओ मुअणमज्जवासो व्व ।

रिवरिद्धिदंसणम्मिव दूसहणीओ तुह विओओ ॥ ६३ ॥

१. 'मोह' इति ग-पाठः. २. 'पुडिअ' इति क-ग-पाठः. ३. 'फलहीहि' इति ग-पाठः. ४. 'ईश्वरपुता' इति ग-पुस्तके, 'वरतनुं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

५. 'कणभारावनतया' इति ग-पुस्तके, 'वृन्तभारावनतयेन' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'दरुद्धिअवेण्ट' इति ग-पाठः. ७. 'दरुद्धिअवेण्टे एतैते' इति पुलयात्वेन. ८. 'कार्पासा' इति ग-पाठः. ९. 'तानेन सन्निव' इति ग-पाठः. १०. 'तनुकेनापि तनुः कियते क्षामः' इति ग-पाठः.

११. 'तनुकेनापि तनुः कियते क्षामः' इति ग-पाठः.

[व्याधिरिव वैधरहितो घनरहित सजनमैघवास इव ।
रिपुऋद्धिदर्शनमिव दुःसहनीयस्तव वियोग ॥]

प्रिय प्रति नायिकायाः सदेशगायेयमिति केचित् ॥

वैश्यामाता खदुहितुः पीनोन्नतपयोधरता प्रतिपादयन्ती चाद्रकला राजानमनुकूल-
यितुमाह—

कोत्थ जअम्मि समत्थो थइउ 'वित्थिण्णणिम्मलुत्तुङ्गम् ।

हिअअं तुज्झ णराहि वअणं च पओहर मोत्तुम् ॥ ६४ ॥

[कोऽत्र जगति समर्थः स्थगयितुं विस्तीर्णनिर्मलोलुङ्गम् ।

हृदयं तव नराधिप गौगनं च पयोधरान्मुक्त्वा ॥]

पयोधरः स्तन । पक्षे मेघ ॥

सकेतस्थानगतः जारः कुट्टनी समाश्वासयितुमाह—

आअण्णेइ अँठअणा वुडङ्गहेट्टम्मि दिण्णसकेआ ।

अग्गपअपेहिआणं मम्मरअ जुण्णपत्ताणम् ॥ ६५ ॥

[आकर्णयत्यसती पुँञ्जाघो दत्तसकेता ।

अग्रपदप्रेरितानां मर्मरवः जीर्णपञ्चाणाम् ॥]

मर्मरः पत्रपत्राणि । 'अथ मर्मरः । स्तनिते वस्त्रपर्णानाम्' इत्यमरः ॥

भुजगप्रलोचनाय दूती वस्त्राश्विन्मुखसौरभवर्णयति—

अहिलेन्ति सुरहिणीससिअपरिमलावद्धमण्डलभमरा ।

अमुणिअचन्दपरिहवं अपुव्वकमलमुद्धतिस्सा ॥ ६६ ॥

[अभिलीयते सुरभिनि श्वसितपरिमलावद्धमण्डलभमरा ।

अज्ञातचन्द्रपरिमवमपूर्वकमलमुखतसा ॥]

भमरा भ्रमणशीला कामुका मृशश्च । सुरभिः यन्नि श्वसितं तस्य परिमलेनावद्धं म-

ण्डलं यस्मिन्कर्मणि यथा भवतीति क्रियाविशेषणम् । 'अहिलेन्ति अभिप्यन्तीत्यर्थः
इति कथितम् ॥

१ 'वयोधररहितो' इति ग-पाठः. २ 'खदुवास' इति ग-पाठः. ३ 'वित्थिण्णणिम्मलुत्तुङ्गम्' इति ग-पाठः. ४ 'क' समर्थो भवति पिपापयितुं विस्तीर्णं निर्मलं चमुत्तुङ्गम्' इति ग-पाठः. ५ 'गगनमिव' इति ग-घ-पाठः. ६ 'पयोधरी' इति ग-पाठः. ७ 'अइण्डणा' इति ग-पाठः. ८. 'आकर्णयत्यतिनिपुणा' इति ग-पाठः. ९. 'कुञ्जतले' इति घ-पाठः. १०. 'मण्डला भमरी' इति घ-पाठः. ११. 'अभिलयति सुरभिनिर्मयितु' इति ग-पाठः.

दूती नायिकाया अनुरागातिशय सूचयन्ती नायकमाह—

धीरावलम्बिरीअ वि गुरुअणपुरओ तुमम्मि वोलीजे ।
पडिओ से अच्छिणिमीलणेण पम्हट्ठिओ बाहो ॥ ६७ ॥
[धैर्यैवलम्बनशीलाया अपि गुरुजनपुरतस्तपयि व्यतिक्रान्ते ।
पतितस्तस्या अक्षिणिमीलनेन पद्मस्थितो बाष्पः ॥]

गुरुजनलज्जया तया नातुगमन कृतम्, बाष्पेण पुन कृतमेवेति भावः ॥
मानिन्या स्वस्मिन्ननुरागातिशयं स्वसौभाग्य च सूचयन्नागरिकः सहचरमाह—

भरिमो से सअणपरम्मुहीअ विअलन्तमाणपसराए ।
कइअवसुत्तुवत्तणर्थेणकलसप्पेहणसुहेट्ठिम् ॥ ६८ ॥
[सरामस्तस्या. शयनपराङ्मुख्या विगलन्मानप्रसराया ।
कैतवसुप्तोद्वर्तनस्तनकैलशप्रेरणसुखकेलिम् ॥]

कस्याधिदत्त आरेण कर्दमेनोक्षित वीक्ष्य कर्दमदातरि तस्या अनुरागातिशयं सूच-
यन्ती सखी सपरिहास्य तामाह—

फरगुच्छणणिहोसं केण वि कइमपसाहणं दिण्णम् ।
यणअलसमुहपलोद्वन्तसेअधोअ किणो धुअसि ॥ ६९ ॥
[फैलगुनोत्सवनिर्दोष केनापि कर्दमप्रसाधन दत्तम् ।
स्तनकलशमुखर्षलुठत्वेदघौतं किमिति धावयसि ॥]

धावयसि क्षालयघीलार्थः ॥

त्वद्वचनादह तत्समीप गत, तया तु मां विलोकयामि च किञ्चिदुक्तमिति नायकेनो-
दूती तमाह—

किं ण भणिओ सि बालअ गामणिधूआइ गुरुअणसमकरांम् ।
अणिमिसमीसीसिवलन्तवअणणअणद्विट्ठेहि ॥ ७० ॥

१. 'धीरमयिलम्बिरी' इति ख-पाठः. २. 'धैर्यमवलम्बन्त्या' इति ग पाठः. ३. 'यण-
जुअलमुहपेहण' इति ख-पुस्तके, 'यणकलसापीडन' इति च ग पुस्तके पाठः. ४. 'कलशा-
लिहणमुत्तकेलिम्' इति ग पुस्तके, 'कलशापीडनमुखम्' इति च घ-पुस्तके पाठः.
५. 'धम्मूत्तप' इति ख घ-पाठः. ६. 'प्रवर्तमान' इति ख घ-पाठः. ७. 'धावयसि' इति
क-ख-पाठः.

[किं न भणितोऽसि बालक आमणीपुत्र्या गुरुजनसमक्षम् ।
अनिमिषसीषदीपद्वलद्वदननयनार्धदृष्टैः ॥]

बालकः इति तानभिह । ईषदीपद्वलद्वदनं च नयनार्धदृष्टानि चेति कर्मधारयः ।
दृष्टानि निरीक्षणानि । कदाहनिरीक्षणेन सेनावित एवाति । श्वशुरादिदर्शनाविर्भूतः
त्रपया वाचा केवलं नोक्तोऽसीति भावः ॥

उक्तमेवायं मङ्ग्यन्तरेणाह—

णअण्वन्तरघोलन्तवाहभरमन्थराइ दिट्ठीए ।

पुणरुत्तपेछिरीए घालअ किं जं ण भणिओ सि ॥ ७१ ॥

[नयनाभ्यन्तरघूर्णमानवाष्पभरमन्थरया दृष्टया ।

पुनरुत्तप्रेक्षणशीलया बालक किं यत्न भणितोऽसि ॥]

कयापि तारुण्यावस्थायां भुरतसमये गणपतिरुपधानीकृतः, सैव वार्धकावस्थायां ए
मेव गणपतिं पूजयन्ती जरामुपालभते—

जो सीसम्मि विइण्णो मज्झ जुआणेहिं गणवई आसी ।

तं त्विअ एहं पणमामि हतजरे होदि संतुट्ठा ॥ ७२ ॥

[यः शीर्षे त्रितीणो मम युवभिर्गणपतिरासीत् ।

तमेवेदानीं प्रणमामि हतजरे भव संतुष्टा ॥]

कापि मृतचौरिकामहिलां शोचन्तं कमध्यन्यापदेशेनाह—

अन्तोहुत्तं डैज्जइ जाआमुण्णे घरे हलिअउत्तो ।

उक्खाअणिहाणाइं व रमिअट्ठाणाइं पेच्छन्तो ॥ ७३ ॥

[अन्तरभिमुखं दक्षते जायाशूरे गृहे हालिकपुत्रः ।

उत्खातनिधानानीव रमितस्थानानि पश्यन् ॥]

अन्तरभिमुखं हृदय एवेत्यर्थः । मृतधर्मपत्नीकः पामरोऽपि बाह्याकारेण दुःखं ना-
विष्कारोति, त्वं तु विशोऽपि सन्मृतचौरिकामहिलां प्रति शोचसीत्युष्कमेति भावः ॥

१. 'सुपमा' इति ग-पुस्तके, 'हुदिआ' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'अनिमिष-
तियंगवदनवलित' इति ग-पाठः. ३. 'वेत्तिरीए' इति ग-पाठः. ४. 'भ्लेच्छित्तकया'
इति ग-पाठः. 'भ्लेच्छित्तं युत्तमापितम्' इति कुलबालदेवः. ५. 'फियन्न' इति ग-घ-
पाठः. ६. 'शिरसि' इति ग-पाठः. ७. 'भुवइ' इति ग-पाठः. ८. 'अन्तरा दपवे'
इति ग-पुस्तके, 'अन्तर्भूतं दपवे' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'प्रेक्षन्' इति ग-पाठः.

मान वरस्वेति शिष्य-तीं सखीं काचिदाह—

णिद्राभङ्गो आवण्डुरत्तण दीहरा अ णीसासा ।

जाअन्ति जस्स विरहे वेण सभ कीरिसो माणो ॥ ७४ ॥

[निद्राभङ्ग आण्डुरत्व दीर्घाश्च निश्वासा ।

‘जायन्ते यस्य विरहे तेन सभ कीदृशो मान ॥]

कथं वृषितासीति नायकेन पृष्टाया धीरानाधिकाया उक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतापराध कात कापि सप्रणयरोपमाह—

तेण ण मरामि मण्णुहिं पूरिआ अज्ज जेण रे सुहअ ।

तोग्गअमणा मरन्ती मा तुज्ज पुणो वि'लग्गिस्सं' ॥ ७५ ॥

[तेन न म्रिये मनुभि पूरिताय येन रे सुभग ।

त्वद्गतमना म्रियमाणा मा तव पुनरपि'लंगिष्यामि ॥]

‘वद्गतचित्ताया मम मरणमेव युक्तम्, परं तु तव स्मरणायदि मम मरण भवति तदा
‘मातरैऽपि त्वमेव मम पतिर्दुःखदो भविष्यसीति भीता न म्रियेऽहमिति भावः ॥

कापि धैर्यमनुराग च व्यञ्जयती कृतापराध कातमाह—

अवरज्जसु वीसद्ध सब्ब ते सुहअ विसहिमो अम्हे ।

गुणणिच्चमरम्मि हिअए पत्तिअ दोसा ण माअन्ति ॥ ७६ ॥

[अपराध्यस्व विसंन्ध सर्वे ते सुभग त्रिषहामहे वयम् ।

गुणनिर्भरे हृदये प्रतीहि दोषा न मान्ति ॥]

अपराध्यस्वापराधं कुरु । शूरैर्यौत्वक्षीयैर्निर्भरे पूर्णे हृदये दोषा न मान्ति अवकाश
न उभाते । अनुरक्तेन दोषो न गृह्यत इति भावः ॥

नायिकाया विरहोर्तं प्रतिपादयती दूती नायकं त्वरयितुमाह—

भैरिउचरन्तपसग्गिअपिअंमभरणपिमुणो घराईए ।

परिवाहो विअ दुक्खस्स बहइ णअणट्ठिओ वाहो ॥ ७७ ॥

[भ्रितोच्चरन्तपियसस्मरणपिमुणो घराक्या ।

‘परिवाह इव दुःखस्य यइति नयनस्थितो नायकः ॥]

- १ ‘केरियो’ इति ग पाठ २ ‘क्षीयं च निश्चितम्’ इति ग पाठ ३ ‘त्वद्गतमनस्क’ इति ग पाठ ४ ‘लंगिष्ये’ इति ग पाठ ५ ‘विषस्य’ इति घ-पाठ.
६ ‘विषग्रामहे’ इति ग पाठ ७ ‘भरिउचरन्त’ इति ख पाठ ८ ‘भ्रितोद्गममाण’
इति ग पुस्तके, ‘भ्रितोद्गमण’ इति च ख पुस्तके पाठ ९ ‘सूचको’ इति ग पाठ.
१०. ‘परिवाहो’ इति ग पाठ ११ ‘स्थित नायकम्’ इति ग पाठ

वृतः पूर्णः । उचरन्निर्गच्छन् । प्रसृतः प्रवृद्धः । तथा त्रियसंस्तरणस्य पिशुनः सू-
चकः । एतच्च परीवाहवाष्पयोरुभयोरपि विशेषणम् ॥

नायिकाया अनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

जं जं करेसि जं जं जप्पसि जह तुम निअच्छेसि ।

तं तमणुसिक्खिरीए दीहो दिअहो ण संपड्ढ ॥ ७८ ॥

[यद्यत्करोषि यद्यज्जल्पसि यथा त्वं निरीक्षसे ।

तैस्तदनुशिखणशीलाया दीर्घो दिवसो न संपद्यते ॥]

त्वचेष्टितमनुकुर्वन्त्यास्तस्या दिवसो लघुर्भवतीत्यर्थः ॥

काचित्पयिकेन समं रात्रौ कृतसंभोगा तद्वृणातिशयेन निरहकातरा प्रभाते रोदित्तीति
नागरिकः स्वस्य विज्ञातव्यापनाय सहचरमाह—

भण्डन्तीअ तणाइं सोत्तुं दिण्णाइं जाइं पडिअस्स ।

ताइं चेअ पहाए अज्जा आअट्ठइ रुअन्ती ॥ ७९ ॥

[भर्त्सयन्त्या तृणानि स्वप्नुं दत्तानि यानि पयिकस ।

तान्येव प्रभाते आर्या आकर्षति रुदती ॥]

भण्डन्ती भर्त्सयन्ती । कलहं कुर्वन्नेति यावत् ॥

कोऽपि सहचरस्य गाम्भीर्यशिक्षार्थं सत्पुरुषप्रशंशामाह—

वसणम्मि अणुविवग्गा विहवम्मि अगव्विआ मए धीरा ।

होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥ ८० ॥

[व्यसनेऽनुद्विष्टा विभवेऽगर्विता मये धीराः ।

भवन्त्यभिघ्नस्तमायाः समेषु विषमेषु सत्पुरुषाः ॥]

केनापि प्रवाहिना पुरदेण प्रेयसीं स्मृत्वा प्रभाते गानं कृतम्, तच्छ्रावणेनोदीनिपदि
रहानला काचि श्रेयिभर्तृका सखीमाह—

अज्ज सहि केण गोसे षं पि मणे वल्लहं भरन्तेण ।

अम्हं मअणसराहअहिअअव्वणफोडनं गीअम् ॥ ८१ ॥

१. 'निर्भ्यापसि' इति ग-पाठः. २. 'तत्तदनुशिखन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'स
विपु' इति घ-पाठः. ४. 'इभरणुना आकर्षयते' इति ग-पाठः. ५. 'वसन्तुराकर्षति'
इति च घ-पाठः. ६. 'विभवे' इति ग-पाठः. ७. 'प्रेयान्विताः' इति ग-पाठः.

[अथ सखि केन प्रातः कामपि मन्ये बह्वर्थां सरता ।

अस्माकं मदनशराहतहृदयव्रणस्फोटनं गीतम् ॥]

तद्दृष्टदर्शनेनास्माकं विरहदुःखं स्फुटितव्रणवदधिकं जातमिति भावः ॥

आयतिखेदकरं तदात्वेऽपि खेदयतीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

उदन्तमहारम्भे घणए ददूण शुद्धबहुआए ।

ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए ॥ ८२ ॥

[उत्तिष्ठन्महारम्भौ स्तनीं दृष्ट्वा सुग्धवध्याः ।

अवसन्नकपोलया निःश्वसितं प्रथमगृहिण्या ॥]

अवसन्नकपोलया शुष्ककपोलया । पतितस्तनीं मां पिहायातः परमस्यामन्योन्या-
लिष्टपनपीनकुचायामासक्तो भविष्यति कान्त इति चिन्तयेति भावः ॥

कापि मन्दस्नेहं नायकमनुकूलयितुमन्यापदेशेनाह—

गरुअट्टहाउलिअस्स वि बल्लहकरिणीमुहं भरन्तस्स ।

सरसो मुणालकवलो गअस्स हत्थे च्चिअ मिलाणो ॥ ८३ ॥

[गुरुकलुषाकुलितस्यापि बल्लमकरिणीमुखं सरतः ।

सरसो मृणालकवलो गजस्य हस्त एव म्लानः ॥]

मदविमोहितबुद्धिना विरथा गजेनापि प्रियास्नेहातिशयान्मृणालकवलस्त्यक्तः ।
पुनर्मांमपहाय महिलासदृशं रमयतीति ज्ञातस्त्व स्नेह इत्युपालम्भो व्यङ्ग्यः ॥

वाचापि प्रियो नोद्वेजयितव्य इति सखीं शिक्षयितुं कापि धीराया नायिकायाः ।
यकेन सहोक्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

पसिअ पिण्का कुँविआ; सुअण्ण तुमं परअणम्मि को कोवे; ।

को हु परो नाथ; तुमं कीस अपुण्णान मे सत्ती ॥ ८४ ॥

[प्रसीद प्रिये का कुपिता सुतनु त्वं परजने कः कोपः ।

कः खलु परो नाथ त्वं किमित्यपुण्यानां मे शक्तिः ॥]

विप्रलब्धाया अनुरागातिशयं विरहार्तं च प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

एहिसि तुमं त्ति णिमिसं व जग्गिअं जामिणीअ पढमद्वम् ।

सेसं सेलावपरव्वसाइ वरिसं क वोलीणम् ॥ ८५ ॥ वे ।

१. 'प्रभाते किमपि' इति ग-पाठः. २. 'कपोलया.' इति घ-पाठः. ३. 'गृहिण्याः'
इति घ-पाठः. ४. 'सरमाणस' इति ग-पाठः. ५. 'कुविदा' इति ग-पाठः. ६. 'प-
रिजने' इति घ-पाठः.

[ऐष्यसि त्वमिति निमिषमिव जौगरितं यामिन्याः प्रथमार्धम् ।

शेष सतापपरवशाया वर्षमिव व्यतिक्रान्तम् ॥

भूतादिप्रत्येयं स्त्री परिभ्रमतीति राश्रमान जनं प्रति प्रेषितभर्तृकाया सद्यः
काचिदाह—

अवलम्ब्य मा शङ्कह्य ण इमा गहलङ्घिता परिभ्रमह, १

अस्थङ्गगज्जि उवभन्तहित्यहिअआ पहिअजाआ ॥ ८६ ॥

[अवलम्ब्य मा शङ्कह्य नेय गहलङ्घिता परिभ्रमति ।

आकस्मिकगर्जितोद्भान्तप्रसङ्गदया पथिकजाया ॥]

हित्य व्रतम् । प्रहा भूतादय ॥

स्वस्य गुणोत्कर्षं कथययन्ती काप्यनेकक्षीलम्पटं कान्तं मधुकरव्याजेनोपालभते—

केसररअविच्छेदं मअरन्दो होइ जेन्तिओ कमले ।

जइ अमर तेन्तिओ अण्णहिंपि वा सोहसि भमन्तो ॥ ८७ ॥

[केसररंज समूहे मकरन्दो भवति यानान्कमले ।

यदि अमर तावानन्यनापि तदा शोभसे अमन् ॥]

विच्छेद समूहः ।

‘रम्याणां विहृतिरपि श्रियं तनोति’ इति निदर्शयन्कोऽपि वक्ष्यामाह—

पेच्छन्ति अणिमिसच्छा पदिआ हलिअस्स पिट्ठपण्डुरिअम् ।

धूअं दुद्धसमुदुत्तरन्तलच्छि विअ सअह्वा ॥ ८८ ॥

[मिथन्तेऽनिमिषाक्षाः पथिका हलिकस्य पिष्टपाण्डुरिताम् ।

दुहितर दुग्धसमुद्रोत्तरलक्ष्मीमिव सनृष्णाः ॥]

धूआ दुहिता । पिष्टं तण्डुलादे । यथानिमिषाक्षा देवा लक्ष्मीमपश्यत्तया पथिका
अपीमामित्यर्थः । हलिकमुतामपि साभिलाषं पश्यतामेषा वासो न देय इति सहचरं
प्रति नागरिकस्योच्चिरिति केचित् ॥

कल्हान्तरितायाः खेदातिशयं सूचयन्ती इती तत्क्रान्तमाह—

कस्स भरिसि त्ति भणिण को मे अत्थि त्ति जम्पमाणाए ।

उच्चिगगरोइरीए अम्हे वि रुआविआ तीए ॥ ८९ ॥

१. ‘आगमिष्यसि’ इति ग-पाठः . २. ‘जायत’ इति ग-पाठः . ३. ‘अल्पेक’ इति
ग-पाठः . ४. ‘अमर होइ तेन्तिओ’ इति क ग-पाठः . ५. ‘रजोनिस्तृते’ इति ग घ
पाठः . ६. ‘तावानन्यस्मिन्’ इति घ-पाठः .

[कस्य सरसीति भणिते को मेऽस्तीति जल्पमानया ।

उद्विधरोदनशीलया वयमपि रोदितास्तया ॥]

मानप्रदिलां नायिका भयं दर्शयन्ती सरसी मानभङ्गाय सरोपमाह—

पापपट्टिभं अहव्ये किं दार्णिं ण उट्टवेसि भत्तारम् ।

एभं विअ अयसाणं दूरं पि गअस्स पेम्मस्स ॥ ९० ॥

[पादपतितममव्ये निमिदानीं नोत्थापयसि भर्तारम् ।

ऐतदेवावसानं दूरमपि गतस्य प्रेम्णः ॥]

अमव्ये इति सप्रणयरोप संशोधनम् । अगृहीतानुनया द्वेषया भविष्यतीति भावः ॥

आत्मनो विपरीतरताभिलाष सूचयन्ती नायिका वान्तमाह—

तडविणिहिअग्गहत्था वारितरङ्गेहिं धोलिरणिअम्भा ।

सालूरी पडिविम्बे पुरिसाअन्तिव्व मडिहाइ ॥ ९१ ॥

[तडविनिहितप्रहृष्टा वारितरङ्गेर्दूरानुग्रीहीकृतमङ्गा ।

शालूरी प्रतिविम्बे पुरुषायमाणेव प्रतिमाति ॥]

शालूरी भेकी । प्रतिविम्बे अर्थाः स्त्रीये ॥

कुसुम्भवाटिकायां कुनसकेता काचिदात्मनश्चौर्यरतगोपनार्थमाह—

सिक्करिअमणिअमुहवेविआइं धुअहत्थसिअिअव्वाइं ।

सिक्करन्तु वोड्ढीओ कुसुम्भ तुम्ह प्पसाएण ॥ ९२ ॥

[सीत्कृतमणितमुखपेपितानि धुतहस्तशिञ्जितव्यानि ।

शिञ्जन्तु कुमारीः कुसुम्भं कुम्भप्रसादेन ॥]

वोड्ढी 'कुमारी' तदणी वा । सीत्कृत सीत्कारः । मणित रतिवृजितविशेषः । मुखपेपितमधरादिधुननम् । पृतानि नखक्षतमुष्वाघाताधरखण्डनैरपि भवन्ति कण्टकक्षतेन च भवन्ति । तथा च सीत्कारादयो नैम कुसुम्भकण्टकक्षताज्जाता न तु गुरतेनेत्याशयः ॥

१. 'जल्पन्त्या' इति घ-पाठः. २. 'उद्वटं रोदन्या' इति ग-पाठः. ३. 'माणस्स' इति ग-पाठः. ४. 'इदमेव' इति ग-पाठः. ५. 'दूरं गतस्य' इति घ-पाठः. ६. 'मानस्य' इति ग-पाठः. ७. 'मुहपरिवेविआइ' इति ख-ग-पाठः. ८. 'मुहपरिवेपितानि' इति ग-पाठः. ९. 'शिञ्जितानि' इति ग-पाठः. १०. 'शिञ्जन्तु प्राम्या' इति ग-पाठः. ११. 'तदण्यः' इति घ-पाठः. १२. 'कुम्भाक' इति ग-पाठः.

काप्यात्मनो जारं प्रत्यगुरागातिशयं श्रावयन्ती नितम्बोपालम्भव्याजेनाह—

जेत्तिअमेत्ता रच्छा णिअम्ब कह तेत्तिओ ण जाओसि ।

जं छिप्पइ गुरुअणलज्जिओ सरन्तो वि सो सुहओ ॥ ९३ ॥

[यौवत्प्रमाणा रक्ष्या नितम्ब कथं तौवन्न जातोऽसि ।

येन स्पृश्यते गुरुजनलज्जापसृतोऽपि स सुमग ॥]

तृणलतापृष्ठं सञ्जेतस्मानमिति जारं श्रावयन्ती काप्याह—

मरगअसूईविद्धं व मोत्तिअं पिअइ आअअर्गीओ ।

मोरो पाउसआले तणगगळगं छअअधिन्दुम् ॥ ९४ ॥

[मरकतसूचीविद्धमिव मौक्तिकं पितृत्यायतग्रीवः ।

मयूरः प्रावृट्टाले तृणाग्रलघुमुदकविन्दुम् ॥]

अन मरकतसूच्या मौक्तिकवेधस्यासमावितस्वोपमया दुष्प्रापनायिकाप्राप्तिं नायकस्य दूती सूचयतीति चेन्नित् ॥

अभिचारिकायाः कृष्णपक्षामिहारोचितं नीलकण्ठकं श्रावयन्ती दूती नायकमुत्तरं लयितुमाह—

अज्जाइ णीलकञ्चुअभरिउव्वरिअं विहाइ थणवट्टम् ।

जलभरिअजलहरन्तरदरुगअं चन्द्रविम्ब व्व ॥ ९५ ॥

[आर्याया नीलकण्ठकर्भृतोर्गौरित विभाति सनपृष्ठम् ।

जलभृतजलधरान्तरदरोद्गतं चन्द्रविम्बमिव ॥]

कण्ठकं मृता महत्तादुर्वरितमित्यर्थः ॥

प्रवासोद्यतस्य पर्युग्मनाशेराय कापि वसन्तमारास्य पथिकमयहेतुतो दर्शयति—

राअविरुद्धं व कहं पदिओ पदिअरस साहइ संसट्टम् ।

जत्तो अम्वाण दलं तत्तो दरणिग्गिअं किं पि ॥ ९६ ॥

१. 'जेण छिप्पिउइ गुरुअणलज्जोसरिओ' इति ख पाठः. २. 'यावन्मात्रा' इति ग-पाठः. ३. 'न तावन्मात्रो' इति ग पाठः. ४. 'यत्' इति ग पाठः. ५. 'लज्जा-पसरन्' इति ग-पाठः. ६. 'ग्रीवो' इति क-पाठः. ७. 'ईश्वरगुणाया' इति ग-पाठः. ८. 'मृतोद्गियमाणं' इति ग-मुल्लके, 'मृतोद्गत' इति व घ मुल्लके पाठः. ९. 'अत-परान्तरादोपदुत्तरं' इति ग-पाठः. १०. 'सपृष्ठो' इति क-पाठः.

[राजविरुद्धमपि कथां पथिकः पथिकस्य कैथयति सशङ्कम् ।

येत आम्नाणां दलं तैत् ईषन्निर्गतं किमपि ॥]

दलं पत्रम् । किमप्यङ्कुरः ॥

स्वप्ने प्रियदर्शनेन विरहदुःखं कथं न निनोदयसीति प्रतिवेशिनीभिरुक्ता काचिदा-
मनोऽनुरागातिशयं श्यापयितुमाह—

धण्या ता महिलाओ जौ दइअं सिविणए वि पेच्छन्ति ।

णिइ ङ्विअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सिविणम् ॥ ९७ ॥

[धन्यास्ता महिला या दयितं स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते ।

निद्रैव तेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥]

अत्र दूयमधन्याः, अहं तु धन्येति व्यज्यते ॥

पूर्वं समुद्रस्य कालवशेन गलितविभवस्य कस्यापि मत्तःसधाधानाय दूयन्या-
पदेशेनाह—

परिरद्धकणअकुण्डलगण्डत्थलमणहरेसु सवणेसु ।

तैत्थ वि समअवसेण अ पंहिरज्जइ तालवेण्टजुअम् ॥ ९८ ॥

[परिरब्धकनककुण्डलगण्डस्थलमणोहरयोः श्रवणयोः ।

तैत्रापि समयवशेन [च] परिप्रियते तौलवृन्तयुगम् ॥]

तालवृन्त तालपत्रताडकम् ॥

कथमेतादृशे ग्रीष्मे मम प्रिय आगमिष्यतीति विन्तयन्ती नायिका सख्याह—

मज्झह्वपत्थिअस्स वि गिम्हे पहिअस्स हरइ संवावम् ।

हिअअट्ठिअजाआमुहमअङ्कजोह्वाजलप्पवहो ॥ ९९ ॥

[मध्याह्नप्रस्थितस्यापि ग्रीष्मे पथिकस्य हरेरिति संतापम् ।

हृदयस्थितजायामुच्चमृगाङ्गज्योत्स्नाजलप्रवाहः ॥]

१. 'शंसति' इति घ-पाठः. २. 'वाक्कल्यामात्रा दलानि' इति ग-पाठः. ३. 'ता-
वदीषत्' इति ग-पुस्तके, 'ततो दर' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'जालो' इति ख-
पाठः. ५. 'पश्यन्ति' इति ग घ-पाठः. ६. 'कपोलदोक्षणमण' इति ग-पाठः.
७. 'अण्णअसमअ' इति क-ख पाठः. ८. 'परिहिम्बइ' इति ख-ग-पाठः. ९. 'प-
रि-
बद्ध' इति ग-पाठः. १०. 'कपोलतरल' इति ग-पाठः. ११. 'मनोहरेषु कर्णेषु' इति
घ-पाठः. १२. 'तयोरपि समय' इति ग-पुस्तके, 'अत्यन्तसमयमवसत्र परिप्रियते,
तालवृन्तयुगलम्' इति घ-पुस्तके पाठः. १३. 'तालपत्रयुगम्' इति ग-पाठः. १४. 'ह-
न्ति' इति ग-पाठः. १५. 'हृदयेस्थित' इति ग-पाठः.

प्राष्टमसासनां मला प्रियां दिदृशुवोऽगणितमोष्ममध्यंदिनदिनेशसंतापाः पथिकाः
पन्थानमतिवाहयन्तीत्यर्थः ॥

असमयप्रार्थितया कान्तया क्षिप्तं नायकं दूती सान्त्वयितुमाह—

भण को ण रुस्सइ जणो पत्थिज्जत्तो अपसकालम्भि ।

रतिवाजडा रुअन्तं पिअं वि पुत्तं सवइ माआ ॥ १०० ॥

[भेण को न रुध्यति जनः प्रार्थ्यमानोऽदेशकाले ।

रतिव्यावृता रुदन्तं प्रियमपि पुत्रं शेषते माता ॥]

ऐतय चउत्थं विरमइ गाहाण सअं सहावरमणिज्जम् ।

सोऊण जं ण लग्गइ हिअए मधुरत्तणेण अमअं पि ॥

[अत्र चतुर्थं विरमति गाथानां शतं स्वभावरमणीयम् ।

श्रुत्वा यत्र लगति हृदये मधुरत्वेनामृतमपि ॥]

पद्यम घातकम् ।

प्रणामकाटिणी नायकानुरक्त स्वहृदयमाह—

डङ्गसि डङ्गसु कट्टसि कट्टसु अह कुडसि हिअअ ता कुडसु ।

तह वि पैरिसेसिओ च्चिअ सोहुं मए गल्लिअसच्चावो ॥ १ ॥

[दङ्गसे दङ्गस्य कङ्कसे कङ्कस्य अध स्फुटति हृदय तत्स्फुट ।

तथापि पैरिशेषित एव स खलु मया गलितसद्भावः ॥]

परिशेषितः परिच्छिन्नः । निर्णत इत्यर्थः ।

यवक्षेत्रं सकेतस्थानमिति आरंभावयन्ती काचिदन्येषां भयप्रदर्शनार्थमाह—

दट्टूण रुन्दतुण्णं गगिग्गअं णिअमुअस्म दादग्गम् ।

भोण्डी विणावि कज्जेण गामणिअडे जवे चरइ ॥ २ ॥

[दट्टा विशालतुण्डोपनिर्गतं निजसुतस्य दंष्ट्रामम् ।

सूत्री विनानि कैयेंण ग्रामनिकटे यत्रांशरति ॥]

१. 'काडला' इति क-पाठः. २. 'वद' इति ग-पाठः. ३. 'अदेशकालयोरपि' इति ग-पाठः. ४. 'सपति' इति ग घ-पाठः. ५. इयं गाथा ग पुस्तके नास्ति. ६. 'कुड' ग. ७. 'परिशेषितव्यो' ग. ८. 'अत्र मए' ग. ९. 'परिशेषितव्योऽय मया' ग. १०. 'दुन्दतुण्ण' ग. ११. 'दुन्दतुण्ण' ग, 'वृहत्तुण्ण' घ. १२. 'काय' ग.

रुन्द विशालम् । भोण्डी सूकरी । यवक्षेत्रप्रस्थिताया अभिसारिकाया निवेधार्य
इत्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

अभिसारभीतां कामप्यनुकूलयितुं दूती नायकस्य ग्रामप्रधानतां निग्रहानुग्रहक्षमतां
चान्यापदेशेनाह—

हेलाकरगगअट्टिअजलरिकं साअरं पआसन्तो ।

जअइ अणिगगअवडवग्गिभरिअगगणो गणाहिर्वई ॥ ३ ॥

[हेलाकराग्रावृष्टजलरिकं सागर प्रकाशयन् ।

जयत्यनिग्रहवडवाभिभूतगगनो गणाधिपतिः ॥

हेलया कराग्रेणावृष्ट यज्जलं तेन रिक्तम् । जलनिग्रहान्निष्प्रतिबन्धोत्थितेन वडवा-
ग्रिना श्वेत गगन येन सः । गणाधिपतिर्विनायको मण्डलनायकश्च ॥

कौश्वि कामिनी जनानुरागनायासमनः स्त्रीपरतामशोकपल्लवच्छलेनाह—

एएण चिअ कक्केहि तुज्ज सं णत्थि जं ण पज्जत्तम् ।

उयमिज्जइ जं तुह पल्लवेण वरकामिणीहत्थो ॥ ४ ॥

[एतेनैव कक्केहे तत्र तन्नास्ति यन्न पर्यसिम् ।

उपमीयते यत्तत्र पल्लवेन वरकामिनीहस्तः ॥]

कङ्कलिरशोकः ॥

पूर्वगाथार्थमेव भङ्गवन्तरेणाह—

रसिअ विअट्ट विलासिअ समअण्णअ सच्चअं असोओ सि ।

वरजुअइचलणकमलाहओ वि जं विअससि सपहम् ॥ ५ ॥

[रसिक विदग्ध विलासिन्समयज्ञ सैत्यमशोकोऽस्ति ।

वरयुवतिचरणकैमलाहतोऽपि यद्विकससि सत्पुष्पम् ॥]

समय आचार । नायिकाचरणघातः प्रमाद एव मन्तव्य इति नायक शिक्षयितुं कु-
ट्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

दौ-साधिकाभिदासस्य जारस्य परिहासकौशलं दूती तत्प्रियमानन्दयितुमाह—

वलिणो वाआवन्धे चोज्जं जिउअत्तणं च पअडन्तो ।

सुरसत्थकआणन्दो वामणरूपो हरी जअइ ॥ ६ ॥

[बलेर्वाचावन्धे आश्रयं निपुणत्वं च प्रकटयन् ।

सुरसार्धकृतानन्दो वामनरूपो हरिर्जयति ॥]

बलेदौलविशेषस्य, पक्षे बलिनो बलवतः । वाचा वचनेन बन्धो नियमनं निरु-
सरीकरणं च । चोद्यमाध्वर्यम् । 'चोद्यं स्यादद्भुते प्रश्ने चोदनाहं तु वाच्यवत्' इति मे-
दिनीकोपात् 'चोद्यं' इत्येव मूलपाठः । निपुणत्वमिश्रितगुप्तिः । सुरसार्थो देवसमूहः शो-
भनरसवदर्थकं वचनं च । वामनः सर्वाकारो न्यग्भावापन्नश्च । इतिर्विष्णुः परदाराप-
हारी चेति यथायोगं योज्यम् ॥

वापि प्रियवित्तानुरञ्जनार्थं स्त्रीणां मृतेऽपि पलावनुरागातिशयं प्रतिपादयितुमाह—

विज्ञाविज्जइ जलणो गह्वइधूआइ वित्तअसिहो वि ।

अणुमरणघणालिङ्गणपिअममुहसिजिरङ्गीए ॥ ७ ॥

[निर्वाप्यते ज्वलनो गृहपतिरुद्दिग्ना वित्तृतशिखोऽपि ।

अनुमरणघणालिङ्गेन प्रियतममुखसेदशीलाश्रया ॥]

ग्राह्यते पूर्वनिपातानियमातिप्रियतमघणालिङ्गेनेति योज्यम् ॥

वापि जारचित्तहरणार्थं पूर्वोक्ताभिप्रायिका गायामाह—

जारमसाणसमुब्भवभूइमुहस्फंससिजिरङ्गीए ।

ण समप्पइ णैवकावालिआइ उद्धूलणारम्भो ॥ ८ ॥

[जारमशानसमुद्भवभूतिमुखस्पर्शसेदशीलाश्रयाः ।

न समाप्यते नवकापालिकया उद्धूलनारम्भः ॥]

नवकापालिकया गृहीताभिनवकापालिकमतायाः ।

तत्तत्कारणसंनिध्यादेकस्मिन्ननेके भावा भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

एको पहुअइ यणो वीओ पुलएइ णहमुहालिहिओ ।

पुत्तस्स पिअमस्स अ मज्झणिसण्णाएँ घरणीए ॥ ९ ॥

[एकः प्रह्वीति सूनो द्वितीयं पुलकितो भवति नखमुखालिखितः ।

पुत्रस्य प्रियतमस्य च मध्यनिपण्णया गृहिण्याः ॥]

जारं प्रलनवसरप्रकटनपरं दूत्या वचनमिदमिति केचित् ॥

ग्रामणीपुत्र्यां सामिलाय. कोऽपि ग्रहणमाह—

एत्ताइधिअ मोहं जणेइ वालत्तणे वि वट्टन्ती ।

गामणिधूआ विसंकान्दलित्वं वट्टीओं काहिइ अणत्थम् ॥ १० ॥

१. 'विज्ञा विज्जइ' ख. २. 'लिङ्गित' ग. ३. 'विज्ञा निर्वाप्यते' ख, 'विष्माप्यते'
ग, 'विनिर्वाप्यते' घ. ४. 'लिङ्गितप्रियतममुखसिखदश्रया..'. ग. ५. 'नवकावालिनीय'
ख. ६. 'पुलकति' घ. ७. 'विगतभस्व' ग.

[एतावत्येव मोह जनयति बालत्वेऽपि वर्तमाना ।

मामणीर्दुहिता विषकन्दलीव वर्धिता करिष्यत्यनर्थम् ॥]

त्रैविक्रमबन्धरत्नेन प्रियेण प्रीणिता कापि हरेरुर्ध्वगत चरणं नमस्यन्त्यन्यापदेशे-
नाह—

अपहुप्पन्तं महिमण्डलमिम णहसंठिअं चिरं हरिणो ।

तारापुष्पप्पअरच्चिअं व तइअं यअं णमह ॥ ११ ॥

[अप्रभवन्महीमण्डले नम सस्थित चिर हरे ।

तारापुष्पप्रकाराश्रितमिव तृतीय पद नमत ॥]

अप्रभवदसमात् । हरिर्विष्णु परदारापहारी च । तारानेत्रमध्य नक्षत्र च ।

कस्याविदुस्तृण्डितायां सखीभिरुक्त सुप्यतामिति सा तस्माद्—

सुप्पउं तइओ वि गओ जामोत्ति सहीओं कीस मं भणह ।

सेहालिआणं गन्धो ण देइ सोत्तु सुअह तुहे ॥ १२ ॥

[सुप्यता तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्य किमिति मा भणय ।

शेफालिकाना गन्धो न ददाति स्वसु स्वपत यूयम् ॥]

षष्टि, कथ तमेव निरनुकोश स्मरसीति सख्योक्ता विरहोत्कण्ठिता तस्माद्—

कहँ सो ण संभरिजइ जो मे तह संठिआइँ अज्जाइँ ।

णिज्जवत्तिए वि सुरए णिज्जाअइ सुरअरसिओव्व ॥ १३ ॥

[कथ स न संभर्यते यो मम तथासस्थितान्यङ्गानि ।

निवर्तितेऽपि सुरते निष्यात्यति सुरतरसिक इय ॥]

निष्यात्यति पश्यति । तथासंस्थितानीत्यनेनानुभवैकगोचरोऽवस्थाविशेषो बोध्यते ।

कापि जादं प्रति संकेतस्यानमाह—

सुक्कन्तवहलकदमघम्मविसूरन्तकमठपाठीणम् ।

दिट्ठ अदिट्ठउव्वं कालेण तल तटाअस्स ॥ १४ ॥

[शुष्यद्बहलवर्दमघर्मसिंघमानकमठपाठीनम् ।

दृष्टमदृष्टपूर्वं कालेन तल तटागस ॥]

कर्ममान्तस्य पाठीनान्तेन कर्मपारय । तथा च पूर्वं जलाद्याहरणार्थं लोकानां ग

* १. 'मुता विरततेय वर्धमाना' ग. २. 'उपपु' ग. ३. 'विशोर्धमान' ग
स्तिपत्' घ.

तान्तमासीत्, इदानीं तद्भावादिप्रत्युहं विहरेति भावः । कस्यचिदसि सपत्न्यं पश्चात्
स्त्रीभूतस्यान्यापदेशेन कापिदनुशोचनमनया गायया करोतीति चेदित् । अहं सकेत
स्थानं गता न त्वमिति जारं प्रयुक्तिर्वा । अतृप्तां सुरतभान्ति कान्तमुत्साहयितुमन्य
मनस्कं करोतीति वा ॥

. कापि सपरिहासं कामपि चाटुवादमाह—

चोरिअरअसद्धालुइ मा पुत्तिं उभमसु अन्धआरम्मि ।

अहिअअरं लक्खिअज्जसि तमभरिए दीवमीहव्व ॥ १५ ॥

[चौर्यरतप्रद्वालीले मा पुत्तिं भ्रमान्धकोरे ।

अधिकतरं लक्ष्यमे तमोभृते दीपशिखेव ॥]

तमोभृते प्रदेश इति शेषः ॥

सकेतस्थानदाहादसतीं दुःखितेति कारि सहचरमाह—

वाहित्ता पडिवअणं ण देइ रुसेइ एक्कमेक्कसस ।

असइं कज्जेण विणा पइप्पमाणे णईक्खे ॥ १६ ॥

[व्याहता प्रतिवचनं न ददाति रुप्यलेकैकस ।

असती कार्येण विना प्रदीप्यमाने नदीपच्छे ॥]

प्रदीप्यमाने दहमाने ॥

एव कुलटासीति प्रतिवेशिन्योक्ता कारि तामाह—

आम असइं ए ओमर पइव्वए ण तुहं महल्लिअं गोत्तम् ।

किं उण जणस्स जाअव्व च्चिन्दिलं ता ण कामेमो ॥ १७ ॥

[आम असत्यो वयमपसर पतिव्रते न त्वं मणिनिभं मोरम् ।

किं पुनर्जनस जायेय नापित तावन्न कामपागहे ॥]

आनेति सेषानुमर्ता । पतिव्रते इति शोषात्मकं लक्षोध्यम् । चाम् जायेय तस्मिन्
वेत्यर्थः । अथ भावः—भवामो वयं कुलटा, किं तुल्यमनायकाणां । तं तु त्वमिदं
नापितासचेति । अथ च तव मोरं नाम न मलिनितम्, किं तु कुलमेवेति ॥

काप्यमनोऽनुरागानिषयं प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

णिहं लहन्ति कदिअं सुणन्ति खल्लिअअरं ण जम्पन्ति ।

जाहिं ण दिट्ठो मि तुमं ताओ विअ मुहअ मुदिआओ ॥ १८ ॥

१. 'चौरिकरतप्रद्वालीले' श घ. २. 'चिन्दिलसदो नापिते देशा' इति कुलटासदो-

[निद्रा लभन्ते कथितं शृण्वन्ति स्वलिताक्षरं न जल्पन्ति ।

यामिर्न दृष्टोऽसि त्वं ता एव सुमगं सुखिताः ॥]

यस्य तु त्वदर्शनाच्चातमन्मथास्तद्विपरीता जाता इति भावः ॥

एतौ कस्ताधिद्वुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

वालभ तुमाह दिण्णं कण्णे काऊण घोरसंघाडिम् ।

लैज्जालुइणी वि वहुं घरं गआ गामरच्छाए ॥ १९ ॥

[वालकं त्वया दत्ता कर्णे कृत्वा बेंदरसंघाटीम् ।

लैज्जालुरपि बध्मर्गद्वं गता गामरभ्यया ॥]

घोरं बंदरीकल्म् । संघाटी युगलम् । एतेनारारं यत्किंचिदपि त्वया दत्तं धारयतीति
उक्तं तस्य सूचितं ॥

काचित्प्रियं प्रति गन्तव्यमाना पथात्तापेन सखीभेदमाह—

अहं सो विलङ्घयहिअओ मए अ हव्वाएँ अगहिआणुणओ ।

परवज्जणघरीहिं सुखेहिं उवेक्सओ गेन्तो ॥ २० ॥

[अथ स विलङ्घयदयो मया अमन्यया अगृहीतातुनय ।

परवाचनार्तनशीलाभिर्युष्माभिरुपेक्षितो निर्यन् ॥]

अपेति प्रभे । परस्य वाचपूर्वकं यत्नतः कुमार्यप्रापणं मानशिक्षणरूपं सच्छ्रीलाभिः
निर्यन् गच्छन् । युष्माभिर्मनशिक्षावसरे मया यदाशङ्कितं तदिदं जातमित्याशयः ॥

विदग्धं कात्तमलभमाना कापि सखीमाह—

दीसन्तो णअणसुहो णिवुइजणओ करेहिं वि छिवन्तो ।

अव्मत्थिओ ण लम्भइ चन्दो व्व पिओ कलानिलओ ॥ २१ ॥

[हृदयमानो नयनसुखो निवृत्तिनयनं कराम्या [अपि] स्पृशन् ।

अभ्यर्पितो न लभ्यते चन्द्र इव प्रियं कलानिलम् ॥]

निवृत्तिनयनः सुतापहरः । कराम्या हस्ताभ्याम्, पक्षे करे शिरणे । अभ्यर्पितः
अर्पितः, पक्षे अग्रस्थितो गगनस्थितः । कलानिलं पटि, पक्षे योद्धा ॥

कापि कालस्य तद्वैयर्थ्यां प्रतिपादयती आरं प्रति संकेतस्वानमत्र धारयति—

जे णीलभमरभग्गोलआ आसि णइअडुण्णत्ते ।

यातेण वज्जुला पिअवअस्स से यण्णुआ जाआ ॥ २२ ॥

१ 'लम्भइ' अथवा 'ग.' २ 'बंदरसंघाटीम्' ग. 'बंदरसंघाटीम्' इ. ३ 'लैज्जालु' इत्यप्युच्यते ग. ४ 'जे-ओ' ग. ५ 'अणुपेक्षितो गच्छन्' ग. ६ 'करेहि' इत्युच्यते ग. ७ 'विषयम्' ग.

[ये नीलभ्रमरभ्रमगुच्छका आसन्नदीतटोत्सङ्गे ।

कालेन वैकुला प्रियवयस्य ते स्थाणवो जाता ॥]

स्थाणवो निष्पन्नशाखा ॥

अस्थिरमेव नायक प्रत्युद्दिमा कापि दृढप्रेमप्रियप्राप्तीच्छाप्रकाशनच्छलेन कस्य
वकाशदानायाह—

खणभङ्गुरेण पेम्मेण माउआ दुम्मिअह एत्ताहे ।

सिखिणअणिहिलम्भेण व दिट्ठपणट्ठेण लोअम्मि ॥ २३ ॥

[क्षणमङ्गुरेण प्रेम्णा मानृष्यस्य दूना सा इदानीम् ।

स्वमनिधिलम्भेनेव दृष्टप्रणयेन लोके ॥]

काव्यचिरेणैव खण्डितप्रणया धूर्तं कान्तमन्यापदेशेनाह—

चावो सहावसरल विच्छिद्यह सर गुणम्मि वि पढन्तम् ।

वङ्कस्स उज्जुअस्स अ संघन्धो किं चिरं होइ ॥ २४ ॥

[चाप स्वमानसरल विक्षिपेति सरं गुणोऽपि पतन्तम् ।

वक्रस्य ऋजुकस्य च संबन्ध किं चिरं भवति ॥]

सरलो ऋजु, पक्षे निष्कपट गुणो मीर्वा । पक्षे सौन्दर्यादि । 'अथ प्रियौ । 'व्यापौ' इत्यमर ॥

कस्याधिकस्त्वनयोऽत्रिवत्स्याद्योत्कर्षं साभिलाषः कोऽपि वर्णयति ।—

पदम वामणविहिणा पच्छा हु कओ विअम्ममरणेण ।

धणजुअलेण इमीण् महुमहणेण ध्व वल्लिअन्धो ॥ २५ ॥

[प्रथम वामनविधिना पश्चात्खलु कृतो विनृम्भमाणेन ।

स्वमयुगलेनैतेत्या मधुमधनेनेव वल्लिवन्ध ॥]

वामन स्वरूप स्वयंघ । वल्लिवल्लिरगुरभेदघ । वययोत्भेद ॥

दुष्टो न केवलं साधूनामपकारमात्रं करोति, किं त्वसाधूनामुपकारमपीति कोऽप्यपदेशेनाह—

मालइकुसुमाइ कुलुअच्छिउण मा जाणि णिव्वुओ सिसिरो ।

काअव्वा अज्जवि णिगुणान्णं कुन्दाणं वि समद्धी ॥ २६ ॥

१ 'अशोका प्रियावतसस्थानका' ग. २. 'विपटयति' घ. ३ 'गुणे वर्णयान्तम्' ग. 'गुणे निपतन्तम्' घ. ४. 'मज्जस्स' ग. ५ 'ममस्य' ग. 'तस्या' घ ६ 'हं भुविउण' क. 'इण्णकभोण' ग.

[मालतीकुसुमानि दग्ध्वा मा जानीहि निर्वृतः शिशिरः ।

कर्तव्याद्यापि निर्गुणाना कुन्दानामपि समृद्धिः ॥]

न केवलं तव दौर्भाग्य मया कृतं किं तु त्वत्सपत्नीना सौभाग्यमपि विधेयमित्यग्नि-
यवादिनी नायिकां प्रति कुपितनायकेन ध्वनितमिति केचित् ॥

कोऽपि गलितयौवनायाः स्तनायालोक्य सपरिहासमाह—

तुङ्गाणं विसेसनिरन्तराणं [सरस]वगलद्धसोहाणम् ।

कमकजाणं भङ्गाणं च थणाणं पटणं वि रमणिजम् ॥ २७ ॥

[तुङ्गयोर्विशेषनिरन्तरयोः [सरस]वगलद्धसोभयोः ।

कृतकार्ययोर्भटयोरिव स्तनयोः पतनमपि रमणीयम् ॥]

तुङ्गयोरुन्नतयोर्मानोन्नतयोश्च । विशेषेण निरन्तरयोरन्योन्यलम्बयोः परस्परनिर्वि-
शेषयोश्च ॥

कोऽपि कस्याधियुवत्याः पीनोन्नतौ स्तनौ वर्णयति—

परिमलणसुहा गुरुआ अलद्धविवरा सलक्षणगहरणा ।

थणआ कब्बालां च व्व कस्स हिअए ण लग्गन्ति ॥ २८ ॥

[परिमलणसुहा गुरुका अलद्धविवराः सलक्षणाभरणाः ।

स्तनकाः पाप्यालापा इव कस्य हृदये न लगन्ति ॥

परिमलनं मर्दनं विचारश्च । गुरुकाः पीनोन्नता अर्धगुरुकाश्च । विवरं रन्ध्रं दूषणं ।
लक्षणं श्रीफलदिसादृश्यं पाणिन्यादिप्रोक्तं च । आभरण द्वारादिकमुपमानुप्रा-
देकं च ॥

उपादेयोऽर्थः कदाचिदनुपादेयतां यातीति निदर्शयन्कविदाह—

सिप्पइ हारो थणमण्डलाहि तरुणीअ रमणपरिम्भे ।

अधिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ॥ २९ ॥

[क्षिप्यते हारः स्तनमण्डलात्तरुणीभी रमणपरिम्भे ।

अर्चितगुणा अपि गुणिनो लभन्ते लघुत्वं कालेन ॥]

गुणः सूत्रं सौख्यदिकं च ॥

वाप्यारमनः कस्मिन्नप्यनुरागं मन्मथव्यर्षा च सूचयन्ती सतीमाह—

अण्णो को वि मुट्ठायो मम्महसिहिणो हला हआसस्स ।

विज्झाह णीरसाणं हिअए सरसाणं सत्ति पज्जलइ ॥ ३० ॥

१. 'मलानानि कृत्वा' वा, 'शल्य'यमानानीव निर्वृत.' घ. २. घ-पुस्तके तुङ्गाना-
मित्यादि बहुवचनं सर्वत्र वर्तते. ३. 'सिप्पइ' क.

[अन्यः कोऽपि स्वभावो मन्मथशिमिनो ह्येता हताशस्य ।

निर्याति नीरमानां हृदये सरसानां शटिति प्रथ्यलति ॥]

हला सति । हताशस्येतुद्वेगपूचम् । नीरमानामनुरागरक्षितानां शुष्कानां
सरसानां राभिणामार्द्राणां च ॥

कावि मानप्रद्विलायाः सहयाः गण्डितं सौभाग्यं मानुलान्यां सस्मिन्मयाह—

तद् तस्म माणपरिवर्द्धिअस्स चिरपणअवद्धमूलस्म ।

मांमि पडन्तस्स सुओ सहो वि ण पेम्मरक्खस्स ॥ ३१ ॥

[तथा तस्य मानपरिवर्धितस्य चिरपणपदमूलस्य ।

मानुलाने एततः ध्रुवः शब्दोऽपि न प्रेमवृक्षस्य ॥]

मानेन सत्कारेण परिवर्धितस्य । चिरपणय एव पदं मूलमस्य । बहुवचनस्य च
नुरागस्य कल्यणिग्रहा इवमुक्तिरिति केचित् ॥

अष्टदीतानुनयां गम्यीं सत्यो सत्येदमाह—

पाअपट्ठिओ ण गणिओ पिअं भणन्तो वि अप्पिअं भणिओ

वचन्तो वि ण रुद्धो भग कम्म कण् कओ माणो ॥ ३२ ॥

[पादपतितो न गणितः विषं मगधप्यप्रियं मणितः ।

वतश्चापि न रुद्धो भग कम्प कृते कृतो मानः ॥]

पादपतितोऽर्थात्रिय इति द्रष्टव्यम् । पादपतनादिकमेव मानस्य पदम् । मृतुः
मेवेत्यर्थः । भगवा कस्य कृते कं पुमानं रमन्ति तु एतया मानच्छब्देनाकगरः येषां
गोपालम्भं सत्या वचनम् ॥

सप्तम्या दुषरितं मृषयन्ती कावि गोपालम्भमाह—

मुसइ मणं धुवइ खणं पप्फोहइ तरणणं अआणन्ती ।

मुद्ववह् धणवट्ठे दिण्णं दइण्ण णहरमअम् ॥ ३३ ॥

[मोन्ठति क्षणं क्षाणयति क्षणं मग्गोटयति तैय्यममजानती ।

मुष्पसू स्रगर्भे दत्त दयितेन मंगरदम् ॥]

नायकमुष्पटयितुं नाविद्याया नवदीपनं प्रतिपादयन्त्या दृष्टा इवमुक्तिरिति ॥

आमनः संछेदस्थानममनं जारं प्रति धावयन्ती कावि कादम्भमाह—

धौमाहस्से उण्णअपओहरे ओन्नणे ठव योलीने ।

पटमेइकामधुमुमं धीमइ पळिअं च धरणीए ॥ ३४ ॥

[वर्षाकाले उन्नतपयोधरे यौवन इव व्यतिक्रान्ते ।

प्रथमैककाशकुसुमं दृश्यते पलितमिव धरण्याः ॥

उन्नतपयोधरे उन्नतमेघे । पक्षे उन्नतस्तने । अहं तां काशभूमिं गता त्वं तु नागत इति भावः । यद्वा न केवलं मामेव वार्धक्यं प्रसवे पश्य धरण्या अधीमामवस्थामिति हसन्तं विदं प्रति जरद्वेदवायाः कस्याधिदियमुक्तिः ॥

प्रवातोद्यतस्य प्रियस्य गमननिषेधाय कापि वर्षाकालं वर्णयति—

कथं गतं रविबिम्बं कथं पणट्टाओ चन्द्रताराओ ।

गमणे बलाअपेन्ति कालो होरं व कट्टेइ ॥ ३५ ॥

[कुत्र गतं रविबिम्बं कुत्र पणट्टाश्चन्द्रताराः ।

गमने बलाकापिङ्गं कालो होरानिवाकर्षति ॥]

होरा कठिनीरेखा । अन्योऽपि ज्योतिर्विस्तूर्यादिप्रहप्रतिगाधनार्थं कठिनीरेखामा-
र्णवीत्यर्थः । 'होरा लगेऽपि राश्यर्थे रेखाशास्त्रमिदोऽपि' इति मेदिनी ॥

सद्यङ्गं जारं नि.सङ्गं कर्तुं काचिदाह—

अविरलपटन्तणवजलधाराञ्जुघटिअं पअत्तेण ।

अपहुत्तो उअत्तेत्तुं रसइ व मेहो महिं उअह ॥ ३६ ॥

[अविरलपटन्तणवजलधाराञ्जुघटितां प्रयत्नेन ।

अप्रभवद्युत्थेतुं रसतीन भयो महीं पश्यत ॥]

अविरल पटन्तलो नवजलधारा एव रज्ज्वत्ताभिर्पटितां बद्धां महीमुत्थेतुमशक्वन्तः ॥
वन्मेधो रसतीव शब्दावत इव । अतिवृष्टौ जलप्रचाराभावाग्नि.सङ्गं रमयति भावः ॥

कापि क्षान्तानयनाय सखी स्वरयितु इदयोऽलम्भन्याजेनात्मवीर्यं धावयति—

ओ हिअअ ओहिदिअहं तइआ पडिअञ्जिऊण दइअरस ।

अत्येकाउल वीसम्भघाइ किं तइ समारद्धम् ॥ ३७ ॥

[हे इदय अवधिदिवसं तदा प्रतिपद्य दधितस्य ।

अकस्मादाकुल विसम्भघातिन् किं स्वया समारब्धम् ॥]

ओ इति दुःसायूचनपूर्वकं संबोधने । प्रतिपद्याहो ह्यह ॥

रतप्रवृत्ताभारभारसमायाः तपन्दाधारिप्रसङ्गनं प्रकाशयन्ती काचिदाह—

ओ वि ण आणइ तरस वि बहेइ भग्गाइ तेण यलआइ ।

अइउज्जुआ यराइ अह व पिओ से हमासाय ॥ ३८ ॥

[योजयि न जानानि तस्यापि कथयति भाषानि तेन बलवानि ।

अतिश्रुतुका चरापी अथवा प्रियस्ता हताशायाः ॥]

बलवानीत्यनन्तरं इतीति शेषः । अतिश्रुतुका अत्रकाशनीवार्थप्रकाशनात् । अथदेति मया भाषानि कथयानीति जतरोऽपि बहतीति भावः ॥

कोऽपि कस्ताधिरावण्यं वर्णयमाननधुम्वनाभिलाषं प्रकाशयति—

सामाद् गरजजोव्वणविसेसमरिण्ण कपोलमूलम्मि ।

पिप्पिह् अहोमुहेण व कण्णवअंसेण लावण्णम् ॥ ३९ ॥

[श्यामाया गुरुकयीरगभिशेषशृने कपोलमूले ।

पीयनेऽधोमुहेनेव वर्णावतंसेन लावण्यम् ॥

श्यामाया उत्तमनादिकाया । वीरनभिशेषेण भूते मीरिते ॥

अलामवत्तां बाधमसंभेदयन्ताः कस्यापिदुत काचि सतीतिशार्थमाह—

सेट्ठहिअसव्वद्दी गोत्तरगएणेण तम्म सुहअरत्ता ।

दूहं पट्टाण्णन्ती तरस्मेअ घरद्दणं पप्पा ॥ ४० ॥

[स्वेदेर्द्राश्लुतसर्वाक्षी गोपमहणेन तम् सुमगम् ।

दूती प्रस्थापयन्ती (मंदितान्ती वा) तन्मैव गृहाद्वनं प्राप्ता ॥]

काचि कुसुमसारममरकारण्यतेनरमनो दुःगहां विरहरेदनां प्रकाशयन्ती कान्ताय माय सतीजनं त्वरदिशुमाह—

[निजपक्षारोपितदेहभारनिपुणं रसं लभमानेन ।

विकास पीयेत मालतीकलिका मधुकरेण ॥]

यद्वा स्वामपीडयन्नेवासौ रमयिष्यतीति नववधूमाश्वासयितुं नायकस्य नववधूसंभोग-
कौशलमन्यापदेशेन प्रतिपादयन्त्या द्रव्या इत्यमुक्तिः ॥

विरमिद्विणी युवतीं सखी समाश्वासयितुमाह—

कुरुणाहो विवअ पहिओ दूमिज्जइ माहवस्स मिलिएण ।

भीमेण जहिल्लिआए दाहिणवाएण छिप्पन्तो ॥ ४३ ॥

[कुरुनाथ इव पथिको द्यूयते माधवस्य मिलितेन ।

भीमेन रैयेच्छया दक्षिणवातेन स्पृश्यमानः ॥]

कुरुनाथो दुर्योधनः । माधवस्य कृष्णस्य वैशाखस्य च । भीमेन भीमसेनेन भवान-
केन च । दक्षिणवातेन मलयानिलेन, पक्षे दक्षिणपादेन । वसन्तवातमथादचिरदेवा-
गमिष्यति ते प्रिय इति भावः । यद्वा आसन्ने वसन्ते कान्तस्य प्रवासनिषेधार्थं नायि-
काया इत्यमुक्तिः ॥

अज्ञातयौवनया जायया सह रममाण कापि सानुरागपरिहासमन्यापदेशेनाह—

जाव ण कोसविकासं पावइ ईसीस् मालईकलिआ ।

मअरन्दपाणलोहिह भमर तावचिअ मलेसि ॥ ४४ ॥

[यान्न कोपविहासं श्रमोतीर्षेन्मालनीकलिका ।

मकरन्दपानलोभयुक्तं भ्रमर तावदेव मर्दयति ॥]

कोप कुञ्चलः, पक्षे कुञ्चलाकारे वराहम् । मकरन्द पुष्परसः, पक्षे रस्तिमुत्तमम् ।
अयमाशयः—दुर्दिग्ध- रास्त्वष्टि यस्त्वमस्यद्विधं युवतिजन विहायास्थाने क्रियसीति ।
येद्वा—अस्यामेव दशायां श्रियः सुरावहा भवन्ति तस्मान्मर्दयन्मा भेष्यतीति सखीव-
चनमेतत् ॥

कापि मन्दस्नेहं जारमनुकूलयितुं दुष्करस्नेहचर्चांमाह—

अकअण्णुअ तुग्ग कए पाउसराईसु जं भए सुण्णम् ।

उप्पेकरामि अलज्जिर अज्ज वि तं गामचिक्खिसल्लम् ॥ ४५ ॥

[अश्रुतश्च तत्र कृते प्रावृद्धान्निपु यो मया सुण्णः ।

उत्प्रेक्ष्याम्यलज्जशीलं अद्यापि तं ग्रामपट्टम् ॥]

१. 'विहता' ग घ. २. 'दुर्मिज्जइ' ग. ३. 'दुर्मिज्जइः क्रियते' ग. ४. 'यह-
च्छया' ग घ. ५. 'दक्षिणवातेन' ग. ६. 'स्पृश्यन्' ग. ७. 'मनागमि' ग. ८. 'लेमिठ'
ग 'तुण्य' घ. ९. 'उत्प्रेक्षे' ग-घ.

उपेक्षामीलस्रोतप्रेक्षे स्मरामीति वार्थ । त्वनिमित्त मया बहुतरं दुःखमनुभूत
किमेति मा प्रत्युदासीनोऽपीति भाव ॥

विपरीतरते मुग्धवधूपरोचनापं नागरिक कस्याधिरुपायित वर्णयति—

गेहइ गलन्तरेसखलन्तरुण्डलललन्तहारलजा ।

अद्भुत्पद्मा विजाह्वरि वर पुरुसाहरी वाला ॥ ४६ ॥ .

[राजते गलत्वे शस्वत्पुण्डललललद्वारलता ।

अर्धोत्पत्तिना विद्याधरीव पुरुषायिता वाला ॥]

‘उद्भुत्पद्मा’ इति पाठे ऊर्ध्वोत्पत्तितेत्पर्य ॥

आत्माराम निरतिशयानन्दनिधिमपि भक्तामुपहास्य गृहीतलीलाविप्रहं लम्बितज्वर-
भावं धीकृष्ण सौभाग्यगर्विता वधूवी काचिन्नाह—

जइ भमसि भमसु एमेअ वहु सोहग्गगठिवरो गोटे ।

महिलाणं दोसगुणे विचारअइउं जइ रमो नि ॥ ४७ ॥

[यदि भ्रमसि भ्रम एवमेव कृष्ण सौभाग्यगर्वितो गोटे ।

महिलानां दोषगुणौ विचारयितु यदि क्षमोऽसि ॥]

भक्तदरी वधूभा दुर्लभा त्वदेति भाव ॥

मानिन्या सखी तत्कान्तमनुनयपरास्मृत्तमन्यापदेशेनाह—

संज्ञासमए जलपूरिअञ्जलिं विहडिण्णवामभरम् ।

गोरीअ कोसपाणुञ्जय य पमहादिव णमइ ॥ ४८ ॥

[सुध्याममये जलपूरिताञ्जलिं निषटितैव वामवरम् ।

गौर्यै कोषपानोद्यनमिव प्रमथाधिप नमत ॥]

विषटितोऽर्धाद्वीर्यां एको वाम करो यय । जानक्यन्तरसाहाया गौर्यां प्रपन्न
कोषपानाख्य दिव्य चंमुरारि करोतीति स्वपारीयमरदयमनुयेति भाव ॥

काचि सौभाग्यस्योपादेयतां प्रतिपादयन्ती गल्लीमह—

गामणिणो सख्यासु वि पिआसु अणुमग्गगह्मिअवेमासु ।

मम्मच्छेणसु वि चल्हाइ उषरी चल्ह दिट्ठी ॥ ४९ ॥

[मौमण्या सर्वान्पि प्रियाननुमरणगृहीतरेषासु ।

मर्मच्छेदेष्वपि वत्तमाया उपरि चल्हते इति ॥]

१ ‘पुरुषयितजीव्य’ घ २ ‘विचाररमो भवति वि न होति’ ग, ‘विचारित’
ग. ३ ‘एवमेव’ ग. ४ ‘दोसगुणविचारक्षमोऽप्यपि न भवति’ ग, ‘दोसगुणौ विचार-
निपुणयपि न क्षमोऽसि’ घ. ५ ‘ग्राममुन्यस्य’ ग.

यद्वयं नरणदशमापन्नोऽपि सुभगमेव पश्यति युष्माक्येषां विरक्तः तस्मादनु-
रणात्प्रवर्तध्वं कुरुध्वं च जारमित्यभिप्रायेण कुट्टन्या इयमुक्तिरिति ध्येयम् ॥

वयमेवं प्रियवादिनमपि कान्तमवधीरयसीति वदन्तीं मातुलानीं काचिदाह—

मामि सरसक्खराणं वि अत्थि विमेषो पअम्पिअव्वाणम् ।

ग्रेहमइआणं अण्णो अण्णो उवरोहमइआणम् ॥ ५० ॥

[मातुलानि सदृशाक्षराणामप्यस्ति विशेषः प्रजल्पितव्यानाम् ।

ग्रेहमयानामन्योऽन्य उपरोधमयानाम् ॥]

* प्रजल्पितव्यानां वचनानाम् । ग्रेहं विनापि शठः परान्वद्यितुं मधुरं भाषते । तथा-
प्यनुभवसाधिक* स्वरविशेष एव भेदक इति भावः । 'मामि' इति स्थाने 'मुहअ' इति
वचिष्वाठ । 'सुभग' इत्यर्थः । तत्र कथं मामवधीरयसीति वदन्त नायक प्रति नायिकाया
दयमुक्तियोज्या ॥

अन्यासक्त दाक्षिण्यात्प्रियवादिनं नायकं कापि सरोपमाह—

हिअआहिन्तो पसरन्ति जाइँ अण्णाइँ ताइँ यअणाइँ ।

ओसरमु किं इमेहिँ अहरुत्तरमेत्तभणिणहिँ ॥ ५१ ॥

[हृदयेभ्यः प्रसरन्ति यान्यन्यानि तानि वचनानि ।

अपसर विमेभिरधरोत्तरमात्रमणितैः ॥]

अपरेति मुखमात्रप्रवृत्तेर्न तु हृदयप्रवृत्तेरित्यर्थः ॥

गोत्रस्थलितं वान्त धीरा नायिका सदैवदग्ध्यमाह—

कइँ सा सोहग्गुणं मए संमं बहइ णिग्घिण तुमम्मि ।

जीअ हरिज्जइ गोत्तं हरिऊण अ दिज्जए मव्वइ ॥ ५२ ॥

[कथं सा सौभाग्यगुणं मया संमं वहति निर्घृण त्रयि ।

यस्य हियते नाम हत्वा च दीयते ममम् ॥]

विराजनितामात्मनः काश्यंमत्र नती कापि प्रीतिभर्तृका सखीमाह—

सहि साहसु सव्भावेण पुत्तिठमो किं असेसमहिलाणम् ।

वहुन्ति करठिआ त्विअ बलआ दइए पैउट्टम्मि ॥ ५३ ॥

[सखि वयस्य सद्भावेन पृच्छामः निमग्नोपमहिलानाम् ।

वर्धन्ते क्वरसिता एव बलया दयिते प्रीयिते ॥]

* 'बलयोऽन्नियम्' इत्यमरः ॥

१. 'मुहअ' रा-ग. २. 'सुभग' ग-घ. ३. 'हृदयस्थानि' ग. ४. 'जमं' ख-
'पउत्थे' घ. ५. 'करस्या.' ग.

दुर्गतरोगिणं वा पतिं लक्ष्मिच्छन्तीं पत्न्युपभिमुखीं निषेदुं कान्दिन्यापदेशेनाह—

भमइ पलित्तइ जूरइ उक्खियविउं से करं पसारइ ।

करिणो पङ्कक्खुत्तस्स णेहणिअलाइआ करिणी ॥ ५४ ॥

[अमतिं परितः खिद्यते उत्क्षेपुर्तेस करं प्रसारयति ।

वरिणं पङ्कनियग्रस्य संहनिगडिता करिणी ॥]

कापि सत्याः शिक्षार्थं पार्वत्या लज्जायामपि स्नेहाभिव्यक्तिवैदग्ध्यं वर्णयति—

रइकेलिहिअणिअंसणकरकिसलअरुद्धणअणजुअलस्स ।

रुहस्स तइअणअणं पव्वइपरिउम्बिअं जअइ ॥ ५५ ॥

[रतिवेलिहृतनिवसनकरकिसलयरुद्धनयनपुगलस्य ।

रुद्रस्य तृतीयनयनं पार्वतीपरिचुम्बितं जयति ॥]

ताडनाभिलाषाकृतकलितं हलिकस्य कस्यापिदुरागं सूचयतापरिकल्पमाह—

धावइ पुरओ पासेसु भमइ दिट्ठीपइन्मि संठाइ ।

णवलइकरस्स तुह हलिअउच्च दे पहरसु वराइम् ॥ ५६ ॥

[धावति पुरतः पार्श्वयोर्भ्रमति दृष्टिपथे सतिष्ठते ।

नवलतिकाकरस्य तव हलिकपुत्र हे प्रहरस्व वराकीम् ॥]

हेमचन्द्र उबोधने । यद्वा नवलताकुलं सकेतस्थानं त्वं गतो न त्वियमिति कृताप-
राधानेना प्रहरेति सोपहासं कुटूनीवचनमिदम् ॥

कृत्रिम सर्वमुपहासास्पदं भवतीति निदर्शयन्कश्चित्स्य वैदग्ध्यव्यापनाय सहचर-
माह—

कारिममाणन्दवडं भामिज्जन्तं यहूअ संहिआहिं ।

येच्छइ कुमारिजारो हासुन्मिस्सेहिं अच्छीहिं ॥ ५७ ॥

[कृत्रिममाणन्दपटं आम्यमाणं बध्वा सखीभिः ।

प्रेक्षते कुमारीजारो हासोन्मिश्राम्थानक्षिभ्याम् ॥]

१. 'मिअडीकिआ' ग. २. 'परितप्ता' ग, 'प्रत्यावर्तते' घ. ३. 'खियति' घ.
४ 'अस्य' ग. ५. 'पङ्कनिखातस्य' ग. ६. 'सेहे निरुक्तीकृता' ग, 'सेहनिगडा
यिता' घ. ७ 'णवलआए तुह' ख. ८ 'पार्श्वे' घ. ९. 'नवलताकरस्य तव' ग,
'नवलतिका तव' घ. १०. 'बन्धुहिं' क.ग.

आनन्दपटः प्रथमपुष्पवतीवस्त्रम् । प्रथमरजोदर्शने जाते तद्रूपं चन्द्रभिलोक्येपु प्रद-
स्येत इति देशविशेषे आचारः । जारसंयन्धदृष्टशोणिताया अस्थानं संभ्रमदर्शनेन जा-
रस्य हास इति बोध्यम् ॥

शिशिरसमये अधरे मधूच्छिष्टं लापयन्तीं तरुणीं वीक्ष्य कोऽप्यात्मनो वैदग्ध्य-
स्थापनायाह—

सणिअं सणिअं ललिअङ्गुलीअ मअणवट्टलाअणमिसेण ।

वन्धेइ धवलवणवट्टअं व वेणिआहरे तरुणी ॥ ५८ ॥

[शनकैः शनकैर्ललिताङ्गुल्या मदनपटलापनमिसेण ।

बधाति धनलवणपट्टमिव व्रेणिताधरे तरुणी ॥]

कापि कुलवधूतसं शिक्षयितुं सखीमाह—

रइविरमलज्जिआओ अप्पत्तणिअंसणाओ सैहस व्व ।

ढक्कन्ति पिअअमालिङ्गणेण जहणं कुलवहूओ ॥ ५९ ॥

[रतिविरामलज्जिता अप्राप्तनियसनाः सैहसैव ।

आच्छादयन्ति प्रियतमालिङ्गनेन जघनं कुलवधूः ॥]

कापि कस्याबिलगौभाग्यमन्यापदेशेनाह—

पाअडिअं सोहग्गं तम्बाए उअह गोठुमज्झम्मि ।

दुट्ठवसहस्स सिङ्गे अक्खिउडं कण्डुअन्तीए ॥ ६० ॥

[प्रकटितं सौभाग्यं गत्वा पश्यत गोष्ठमध्ये ।

दुष्टवृषभस्य शङ्गे अक्षिपुटं कण्डूयन्त्या ॥]

तम्या गौः ॥

जारप्रलोभनाय दूती कस्याधिदत्तकम्पदतामाह—

उह संभमविकिखत्तं रमिअव्वअलेहल्लायं असईए ।

णवरङ्गअं कुडङ्गे धअं व दिण्णं अविणअस्स ॥ ६१ ॥

[पश्य संभ्रमविक्षिप्तं रेतव्यकलम्पटया असत्या ।

नगरङ्गकं कुडङ्गे ध्वजमिव दत्तमविनयस ॥]

१. 'अङ्गुलीदि' ग. २. 'वेणिआहरा' ख. ३. 'पट्टिकाभिव' घ. ४. 'व्रेणिताधरा'
ख-घ. ५. 'निअंसणा हसन्तीओ' क. ६. 'सहसति' ख-ग. ७. 'सहसेति' ग घ.
८. 'पश्यत' क-ख पुस्तकयोर्नास्ति. ९. 'कण्डूयमानया' ग-घ. १०. 'रतिरङ्गविकि-
ग्धया' ग, 'रतिरङ्गवेहलया' घ. ११. 'निकुञ्जे' ग.

सुखानमिवादौ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । पादपतनारिभ्यः सुखेभ्यो भटासील्लभः । दर्शनमात्रेण प्रसन्न इति मुग्धाविशेषणम् । 'रमसो वेगहर्षयो' इति कोप ॥

प्रणयकुपितां कान्तां कोऽपि प्रसादयितुमाह—

दे सुअणु पसिअ एहिं पुणो वि सुलहाई रूसिअव्वाइ ।

‘एसा मअच्छि मअलञ्छणुज्जला गलइ छणराई ॥ ६६ ॥

[हे सुतनु प्रसादेदानीं पुनरपि सुखमानि रोषितव्यानि ।

एषा मृगाणि मृगग्रन्थनोज्ज्वला गलति क्षणरात्रि ॥]

रोषितव्यानि रोषा । क्षणरात्रिरुत्सवरात्रि । ‘दे मुहअ’ इति पाठे ‘हे सुभा’ इत्यर्थः । तत्रान्योन्यवृद्धीतमानीं प्रति दूतीविचनत्वेन व्याख्येयम् ॥

कान्तार्तायास्तस्याः प्रतीकारं कर्तुं त्वमेव शक्त इत्यन्यापदेशेन दूती कमप्याह—

आवण्णाई छुलाई दो विअ जाणन्ति उण्णइ णेउम् ।

गोरीअ हिअअदेइओ अहवा सालाहण्णरिन्दो ॥ ६७ ॥

[आपन्नानि कुलानि द्वायेव जानीत उन्नतिं नेतुम् ।

गौर्या हृदयदयितोऽथवा शालिग्रामनरेन्द्र ॥]

आपन्नायापद प्राप्तानि । पक्षे अण्णानि । अण्णां पावती तत्सबन्धीनि ॥

विरमशीलकुटिलनाथिरामामासक्त कमप्यन्यापदेशेन निवर्तयितुं काचिदाह—

जिक्कण्ड दुरारोहं पुत्तअ मा पाडलिं समारुइसु ।

आरुडणिवडिआ के इमीअ ण कआ हुआसाए ॥ ६८ ॥

[निष्काण्डदुरारोहा पुनक मा पाटकि सैमारोह ।

आरुडनिरतिता के अनया न कृता हताशया ॥]

काण्ड स्फण्डोऽवतराद्यः । तच्छून्यबाहुऽरोहो दुराक्रमणोवा प्रलयायहेतुसगमा च ॥

मामणीवनितासक्तो देवरो निवार्यतामित्यभिप्रायेण काव्यन्यापदेशेन श्रद्धमाह—

गामणिघरम्मि अत्ता एक विअ पाडला इह गामे ।

बहुपाडलं च सीसं दिअरस्स ण सुन्दर एअम् ॥ ६९ ॥

[मामणिगृहे श्वश्रु एकैव पाटला इह ग्रामे ।

बहुपाटलं च शीर्षं देवरस्य न सुन्दरमेतत् ॥]

बहूनि पाटलानि पाटत्रिपुष्पानि यस्मिन्स्वत् ॥

१. ‘णाहो’ ग. २. ‘जिक्कण्ड’ क. ख., ‘दुक्कण्ड’ ग. ३. ‘निष्कण्ड’ क. ख.
४. ‘पाटला’ घ. ५. ‘समारुह’ क. ख. ६. ‘मात’ ग.

भुजंगप्रलोभनाय दूती कस्याधि कृताक्षतैक्ष्ण्य वर्णयति—

अण्णाणं वि होन्ति मुहं पम्हलधवल्लोहं दीहकसणाहं ।

णअणाहं सुन्दरीण तह वि हु दट्ठ ण जाणन्ति ॥ ७० ॥

[अन्यासामपि मनन्ति मुखे पद्मलधवल्लानि दीर्घकृष्णानि ।

नयनानि सुन्दरीणा तथापि खलु द्रष्टु न जानन्ति ॥]

सहजा अथि गुणा भूविलासादि वैदग्ध्य विना न शोभन्त इति भाव ॥

दण्डयाश्रोतस्य राज्ञ प्रतिपेधाय राजस्तुतिव्याजेन वर्षांशाल राज्ञो वर्णयति—

हमेहिं व तुह रणजलअसमअभअचलिअनिहलवक्खोहिं ।

परिसेसिअपोम्मासेहिं माणसं गम्मइ रिज्जहिं ॥ ७१ ॥

[हंसरिव तव रणजलदसमयमयचलितविह्वलपक्षे ।

परिशेषितपद्मागैर्मानस गम्यते रिपुभि ॥]

हे राजन्, तव रिपुभिर्मानस मन । तवेत्यर्थात् । गम्यतेऽद्वयत्वं । त्वत्सेवया स्वी-
यत इति यावत् । हसपक्षे मानस सरोविशेष । गम्यते प्राप्यते । कीदृशै । रण एव ज-
लदसमय तद्गयाचलिता पलायिता अत एव विह्वला पक्षा सहाया येषां ते । हस
पक्षे—रणन्त शब्दायमाना ये जलदास्तद्गयाचलिता कम्पिता पक्षादुदा येषाम् ।
पुन कीदृशै । परिशेषिता त्यक्ता पद्माया लक्ष्म्या । पक्षे—पद्माना कमलानामाशा यै ।

अनायाससाध्वमेव प्रार्थनीयमिति सखीं शिक्षयितुं काचिदाह —

दुग्गअचरम्मि घरिणी रक्खन्ती आउलत्तणं पट्ठो ।

पुण्णिअदोहलसद्धा पुणो वि उअअ विअ कहेइ ॥ ७२ ॥

[दुर्गतगृहे गृहिणी रक्षन्ती आकुलत्वं पश्य ।

पृष्ठदोहदध्रद्धा पुनरप्युदकमेव कथयति ॥]

दुर्लभवस्तुप्रार्थनायामसौ व्याकुलो भविष्यतीति बुद्ध्या उदकमेव प्रार्थयत इत्यर्थ ॥
ज्ञाता एव युवत्यो मीमे रमयतीति वर्णय-कोऽपि वयसमाह—

आअम्भलोअणाणं ओल्लंसुअपाअडोरुजहणाणम् ।

अवरह्मजिरीण कए ण कामो वैहइ चावम् ॥ ७३ ॥

[आताम्रलोचनानामार्द्रांशुप्रकटोरुजघनानाम् ।

अपराह्मभैरवनशीलाना कृते न कामो बहति चापम् ॥]

आर्द्रांशुकेन प्रकटमूरु जघन यासामित्यर्थ । ईदृगवस्थान युवतीनां रक्षणाथमेव काम-
थाप बहति । अन्यथा निरर्थकत्वात्त्यक्तमेव स्यादिति भाव ॥

कोऽपि वेद्यास्त्रीणां सकलव्यामोहकतां प्रतिपादयितुमाह—

के उर्वरिआ के इह ण खण्डिआ के ण लुत्तगुरुविहवा ।

णह्माइ वेसिणिओ गणनारेहा उव वहन्ति ॥ ७४ ॥

[के उर्वरिता के इह न खण्डिता के न लुत्तगुरुविहवा ।

नखराणि वेद्या गणनारेखा इव वहन्ति ॥]

के उर्वरिता वेद्याभिरनाहृष्टा । के न खण्डिता । केपां व्रतखण्डन न कृतमित्यर्थ ।
खराणि मयस्कृतानि । 'नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमर । यद्वा—णहराद नखराणिम् । नख-
त्पक्षिमिति यावत् । कामुन्दत्तनखक्षतपक्षिव्यानेन के उर्वरिता इत्यादि गणनारेखा
इतीत्यर्थ ॥

प्रवासादागत कात् प्रति विरहदुःख निवेदयितुं कापि सवैदग्यमाह—

विरहेण मन्दरेण व ह्रिअअ दुद्धोअहिं व महिऊण ।

उम्मूलिआइँ अव्वो अम्ह रअणाइँ व सुहाइ ॥ ७५ ॥

[विरहेण मन्दरेणैव हृदय दुग्धोदधिमिव मथित्वा ।

उम्मूलितानि कैष्टमस्त्राक रत्नानीन मुखानि ॥]

उम्मूलितानि दूरीकृतानि । अव्वो इति कष्टसूचकमव्ययम् । 'अव्वो सपुद्धिदु-
खो' इति देशीरोप । लङ्घिरहे दुःखमेव केवलं मया अनुभूतमत परं मा विहाय न ग-
न्त्यमिति भावः ॥

पयु प्रियमेव सद्यदा कतव्यमिति वदन्ती सखी कापि पर्युर्वदग्यमीर्ष्या च
सोद्वेगमाह—

उज्जुअरण ण तूसइ यक्कम्मिअि आअम विअप्पेइ ।

एत्थ अहव्वार्हे मए पिए पिअ कहँ णु काअव्वम् ॥ ७६ ॥

[ऋजुकरते न तुष्यति वक्त्रेऽप्यागम विकल्पयति ।

अत्राभिव्यया मया प्रिये प्रिय कथं नु कर्तव्यम् ॥]

ऋजुके हावभावदिरहिते । वक्त्रं हावभावमणितसीकृतदन्तक्षतनखक्षतसुम्यनासन
विशेषादियुक्ते । कुतोऽनया शिक्षितमित्यागम विकल्पयति । 'आगम' इत्यस्य स्थाने
आशय' इति कश्चित्पाठः ॥

रतिकौशलदर्शनेनान्यथाभावशङ्किन काचिदाह—

यहुविहवित्तासरसिए मुरए महिलारँ को उवज्झाओ ।

सिक्खइ असिक्खिआइँ वि सव्वो जेहाणुवन्धेण ॥ ७७ ॥

१ 'वेक्षिन्यो गणनारेखा उपवहन्ति' घ २ 'अहो म घ.' ३ 'आशय घ.

[बहुविधविलाससिके सुरते महिलानां क उपाध्यायः ।

शिक्ष्यते अशिक्षितान्यपि सर्वः स्नेहानुबन्धेन ॥]

नायकसौन्दर्यं प्रकटयन्ती दूती नायिका प्ररोचयितुमाह—

वैष्णवसि ए विअत्थसि सच्चं विअ सो तुए ण संभविओ ।

ण हु होन्ति तस्मि दिट्ठे सुत्थावत्थाई अद्दाई ॥ ७८ ॥

[वैष्णवशिते विकरथसे सत्यमेव स त्वया न संभावितः ।

न खलु भवन्ति तस्मिन्दिष्टे स्वस्थावस्थान्वद्धानि ॥]

वर्णो गुणध्रुवण तेन वशीकृते इति संबोधनम् । 'वर्णो द्विजादिशुद्धादियशोगुणकथ
दिपु' इति मेदिनी । विकरथसे मया दृष्ट इत्यारम्भश्चाप्य उच्यते । न संभावितो न दृष्टः
अत्र हेतुमाह—न खल्विति । स्वस्थावस्थानि न भवन्ति, किं तु स्वेदकम्परोमाद्यनृम्म
श्रमश्रमोद्ययितादिभावाद्भुतानि भवन्तीत्यर्थः ॥

अग्निवविप्रयानुरक्तं. पूर्वाभूतमवधोरयतीति निदर्शयन्तेऽपि वक्ष्यमाह—

आसण्णविआहदिणे अहिणववहुसंगमस्सुअमणस्स ।

पढमचरिणीअ सुरअ वरस्स दिअए ण संठाइ ॥ ७९ ॥

[आसन्नविवाहदिने अग्निववधूसंगमोत्सुकमनसः ।

प्रथमगृहिण्या. सुरतं वरस हृदये न सतिष्ठते ॥]

अतिमदनाकान्तहृदयः कोऽपि दोष जानन्नपि रागीत्वव्याप्रेयस्या सहचरीमाह—

जइ लोकणिन्दिअं जइ अमद्दलं जइ विमुक्कमज्जाअम् ।

पुप्फवइदंसणं तंहवि देई दिअअस्स णिब्बाणम् ॥ ८० ॥

[यदि लोचनिन्दितं ययमद्दलं यदि विमुक्तमर्थादम् ।

पुष्पवतीदर्शनं तेषां ददाति हृदयस्य निर्माणम् ॥]

निर्वाणं सुतम् ॥

पुष्पवतीस्पर्शादुद्विजमान कान्त कांति सविनयोपाभम्भनाह—

जइ ण छिवसि पुप्फवइं पुरओ ता कीस वारिओ ठासि ।

छित्तोसि चुलचुलन्तेहिं धाविउण अम्ह इत्थेहिं ॥ ८१ ॥

१. 'रमिते' ग. २. 'एणरसि' ग. ३. 'सचरिओ' ग. ४. 'अरप्परसिके' ग.
५. 'एचरित.' ग. ६. 'स्वस्थान्वद्धानि' ग. ७. 'दिप्पेसु णव' ग. ८. 'दिप्पेसु नव' ग.
९. 'दद सहवि देः दिअअग्नि' ग. १०. 'तव तयापि ददाति हृदये' ग. 'तव तयापि
मम ददाति हृदये—'घ.

[यदि न स्पृशति पुष्पवतीं पुरतस्तत्किमिति वारितस्तिष्ठति ।]

स्पृष्टोऽसि चुलचुलायमानैर्धावित्वास्माकं हस्तैः ॥]

चुलचुलेलनुकरणमुत्कृष्टातिशयसूचकम् । कण्ठ्यमानैरित्यर्थः ॥

नायिकाया विप्रलम्भावस्थाकथनेन नायकापरार्थं प्रकटयन्ती दूती नायकमाह—

उज्जागरअकसाइअगुरुअच्छी मोहमण्डणविलकखा ।

लज्जइ लज्जालुइणी सा सुहअ सहीहिं वि बराई ॥ ८२ ॥

[उज्जागरेककपायितगुरुकाक्षी मोघमण्डनविलक्षा ।

लज्जते लज्जाशीला सा सुमग सैखीम्योऽपि वराकी ॥]

उज्जागरेण कपायिते गुरुके अक्षिणी बस्या । मोघेन निरर्थकेन मण्डनेन विलक्षा ॥

गर्भभरेण क्लाम्यन्ती सखी सखी तपरिहासमाह—

ण वि तह अइगरुएण वि तम्मइ हिअए भरेण गब्भरस्त ।

अह विपरीअणिहुअणं पिअम्मि सोह्वा अपावन्ती ॥ ८३ ॥

[नैपि तथातिगुरुकेणापि ताम्यति हृदये भरेण गर्भस्य ।

यथा विपरीतनिर्धुवनं 'मिथे स्नुषा अग्रामुवती ॥]

गर्भिणीपीवरादीनां विपरीतपुरतस्त निषिद्धत्वादिति भावः ॥

नायिकानुरागप्रकाशनेन दूती नायकमुत्कृष्टयितुमाह—

अगणिअजणाववाअं अवहत्थिअगुरुअणं बराईए ।

तुह गलिअदंसणाए तीए वलिउण चिरं रुण्णम् ॥ ८४ ॥

[अगणितजनापवादमपहस्तितगुरुजनं वराक्या ।

तथा गलितदर्शनया तथा धैलित्या चिर रुदितम् ॥]

वादान्त जनान्तं च क्रियाविशेषणम् ॥

प्रेयितपतिका, त'सखी वा लेखमुखेन नायकमाह—

हिअअं हिअए णिहिअं चित्तालिहिअ व्य तुह सुहे दिट्ठी ।

आलिङ्गणरहिआइं णवरं खिज्जन्ति अङ्गाइं ॥ ८५ ॥

१. 'लज्जावती' घ. २. 'सखीनां' घ. ३. 'नैव' ग. ४. 'पुरत' क. ख. ५. 'प्रियमपि' ग. ६. 'दर्शनाशया' क. ख. ७. 'चलित्वा' घ. ८. 'दुहिमाह' ग.

[हृदयं हृदये निहित चित्रालिखितेव तव मुखे दृष्टिः ।
आलिङ्गनरहितानि केवलं क्षीयन्तेऽङ्गानि ॥]

‘आलिङ्गनदुहिआश्’ इति पाठे आलिङ्गनं विना दुःखितानीत्यर्थः ॥

काचिदतिविरहदुःखिता मुक्तं सखीमाह—

अहं विओअतणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीअम् ।

अप्पाहिज्जउ किं सदि जाणसि तं चेव जं जुत्तम् ॥ ८६ ॥

[अहं वियोगतन्वी दुःसहो विरहानलस्थलं जीवम् ।

अभिधीयतां किं सखि जानासि त्वमेव यद्युक्तम् ॥]

प्रियानयनमेव युक्तमिति भावः ॥

कलहान्तरिताया नायिकाया विरहदुःखं प्रतिपादयन्ती दूरी नायकमाह—

तुह विरहुज्जागरओ सिविणे वि ण देइ दंसणमुहाई ।

वाहेण जहालोअणविणोअणं से हअं तं पि ॥ ८७ ॥

[तव विरहोज्जागरकः स्वप्नेऽपि न ददाति दर्शनमुखानि ।

बाष्पेण यदर्शोकनविनोदनं तैसा हतं तदपि ॥]

अनुरक्त कान्तं कापि सोपालम्भमाह—

अण्णावराहकुविओ जइतह कालेण गम्मइ पसाअम् ।

वेसत्तणावराहे कुविअं कहँ तं पसाइस्सम् ॥ ८८ ॥

[अन्यापराधरूपितो यथातथा कालेन गच्छति प्रसादम् ।

द्वेष्यत्वापराधे कुपितं कथं तं प्रसाददिष्यामि ॥]

अन्य आह्लाखण्डनादिरूपो योऽपराधस्तेन कुपितः । द्वेष्यत्वं सहाजिको द्वेषस्तद्
वेऽपराधे ॥

अहृदयप्रचारिणं प्रियवादिनं नायकं कापि सोपालम्भमाह—

दीससि पिआणि जम्पसि सअभावो मुहाअ एत्तिअ व्वेअ ।

फालेइऊण हिअअं साहसु को दावए कस्स ॥ ८९ ॥

१. ‘दुःखितानि’ ग-घ. २. ‘सदिश्यता’ ग, ‘आदिश्यता’ घ. ३. ‘विरहे जागरण’
ग. ४. ‘अवलोकनं’ क-ख. ५. ‘अपि तस्मात्कृतं जतु’ ग. ६. ‘गम्यते’ घ. ७. ‘प्रसाद’
विधे’ ग-घ. ८. ‘अणसि’ क-ख.

[दृश्यसे प्रियाणि जल्पसि सद्भावः सुमग एतावानेव ।

पौटयित्वा हृदयं कैयय को दर्शयति कस्य ॥]

तवाकृतिवचनादिकमस्तिमधुरम्, हृदय तु कालकूटघटितमिवेति भावः ॥

काव्यस्थिरश्लेहं पनिमुपालब्धुमन्यापदेशेनाह—

उज्ज्वलं लङ्घिष्य उच्चाणिआणणा होन्ति के वि सविसेसम् ।

रित्ता गमन्ति सुहरं रहट्टघडिअ व्व कापुरिसा ॥ ९० ॥

[उदकं लब्ध्वा उत्तानितानना भवन्ति केऽपि सविशेषम् ।

रित्ता गमन्ति सुचिरं रहट्ट(अरघट्ट)घटिका इव कापुरुषाः ॥]

रहट्टे घटीयन्त्रं तासंबन्धिनः धुश घटा इव । उक्तं च—‘जीवनप्रहणे नमो गृहीत्वा
उग्रमताः । किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥’ इति ॥

सुधामधुरमयूखमण्डलीधवलिते दिष्टुल्ले प्रियसंगममलभमानान्वकाराभिसारिका
मोदेष स्वगतमाह—

भगपिअसंगमं केत्तिअं व जोह्वाजलं णहसरम्मि ।

चैन्दअरपणालणिअसरणियहपडन्तं ण णिट्ठाइ ॥ ९१ ॥

[ममप्रियसंगमं कियदिव ज्योत्स्नाजलं नमःसरति ।

चन्द्रकरप्रणालनिर्गन्निवहर्पतर्जं निक्षिपति ॥]

मम प्रियसंगमो येन तद् । तथा चन्द्रकर एव प्रणालनिर्गन्निवहास्तेभ्यः पतन्
नि शेष तिष्ठति । न समाप्नोतीत्यर्थः ॥

कापिआदुरागं सूचयन्ती दृष्टी नायकमाह—

सुन्दरजुआणजणसंकुले वि तुह वंसणं विमग्गन्ती ।

रण्ण व्व भमइ दिट्ठी चराइआए समुच्चिग्गा ॥ ९२ ॥

[सुन्दरखुवजनसंकुलेऽपि तव दर्शनं विमोर्गयन्ती ।

अरण्य इव भ्रमति दृष्टिर्वराक्रियायाः समुद्रिणा ॥]

ययारण्ये शूलप्रदेशे कमपि न पश्यति तथा त्वद्गतवित्ता सतीऽपि बहून्यनो न प-
श्यति किं तु स्वामेवोद्गीयत इति भावः । ‘अशुचिक्णा’ इति पाठे त्वदर्शनकोतुकात्-
पणितसेद्वैत्यर्थः ॥

१. ‘मणसि’ घ. २. ‘कावयित्वा’ घ. ३. ‘निजहृदयं’ ग. ४. ‘संग’ घ. ५. ‘कस्यै-
व दर्शयति’ क. ग. ६. ‘रहट्टघटिका’ घ. ७. ‘पतन्तं’ ग. घ. ८. ‘न निर्गति’ ग,
‘न तिष्ठति’ घ. ९. ‘घट्टे’ ग. १०. ‘विमोर्गयणा’ ग.

प्रोषितपतिकया विरहावस्था सखी तरङ्गान्तसमीपगामिन पथिकमाह—

अङ्कोरणा वि सासू रुआविआ गअवईअ सोह्णाए ।

पाअपडणोण्णआए दोसु वि गलिणसु वलणसु ॥ ९३ ॥

[अतिकोपनापि श्वश्रू रोदिता गतपतिकया स्तुपया ।

पादपतनावनतया द्वयोरपि गलितयोर्नलययो ॥]

द्वयोर्भुवद्वयविधृतयो । पलययोरिति सतिससमी । एवमिय मत्पुनरुक्ते कुशा जाता येनानया मत्पादवन्दनावनतया वलयपातोऽपि न ज्ञात इत्याद्येक्य निष्टगपि श्वश्रूरो दीदिति भव ॥

प्रवासोद्यतस्य कांतस्य गमननिषेधाय प्रीप्सातरस्य दुःसहत्वं कापि वणयति—

रोधन्ति व्व अरण्णे दूसहरइकिरणफससतत्ता ।

अइतारझिल्लिविरुएहिं पाअवा गिम्हमज्झङ्गे ॥ ९४ ॥

[रुदन्तीनारण्ये दुःसहरविकिरणस्पर्शसतता ।

अतितारझिल्लीविरुहै पादपा श्रीष्ममध्याहे ॥]

चित्ती 'श्रीगुर' इति बान्धकुञ्जभाषया प्रसिद्ध कीर्तिशेष । अचेतनात् पादपाना मपीयमवस्था किं पुनश्चेतनानामिति भावः । यद्वा सकेतवनोत्पत्तौ लोकागम शङ्कमान कांत प्रत्यभिसारिकाया इयमुक्तिः । नायं जनचरणसचरणवर्तिनश्चरन्ति, किंतु त्रिगो ध्वनिरिति नि शङ्क रमस्वेति भावः ॥

सकेतितसरस्तीरमह गता, त्वं तु न गत, इति आरंभावयन्ती कापि कमलवनवण नच्छलेन सखीमाह—

पडमणिलीणमधुरमधुलोहलालिउलवद्वझकारम् ।

अहिमअरकिरणणिउरम्बचुम्भिअ दलइ कमलवणम् ॥ ९५ ॥

[प्रथमनिलीनमधुरमधुलुब्धालिकुलवद्वझकारम् ।

अहिमरकिरणनिकुम्बचुम्भित दलति कमलवनम् ॥]

प्रथमनिलीनेन मधुरमधुलुब्धेनाङ्गुलेन यद्धो क्षकारो यत्र तत् । पाठान्तरे प्रथमनिलीनमधुकरीडुब्धेनाथ । तत्र प्रथमनिलीनेति मधुकरिविशेषणम् । सुप्तस्य राजप्रबोधनाय वैसाद्रिस्त्वेदं वचनमिति केचित् । साध्यो विधिरनुष्ठीयतामिति, श्रमयो मुच्यतामिति, विक्रेयवस्तूनि प्रसार्यन्तामिति, नास्तीदानीं पिशाचादिभयमिति, पथिक प्रतिष्ठवेत्यादि प्रस्तावदेशकालादिभेदाः पुनरनेकविधो व्यङ्ग्योऽयं सहृदये स्वयमूहनीयः ॥

मानिनीमानापनोदाय नायक प्रेरयितुं दूती नायकसहचरमाह—

गोतृक्खलणं सोऊण पिअअमे अज्ज तीअ खणदिअहे ।

वज्झमहिस्स माल व्व मण्डण उअह पडिहाइ ॥ ९६ ॥

[गोत्रस्खलनं श्रुत्वा प्रियतमे अद्य तस्या क्षणदिनसे ।

वध्यमहिषस्य मालेन मण्डनं पश्यत प्रतिभाति ॥]

श्रुत्वेत्यनन्तरं स्थिताया इति शेषः । क्षणदिवसे उत्तरदिवसे । वध्येति देव्यै उपहा-
रं वन कल्पितस्य महिषस्य कृतमपि मण्डनं यथासत्प्रमरणतया न शोभते तथा अस्या अ-
पीलार्थः । तथा च यावदभिमानेन न भ्रियते तद्यदेव शीघ्रमनुनीयतामियमिति भावः ॥

वापि कान्तानयनाय सखीं त्वरयितुमात्मनो दुःसहा विरहावस्थामाह—

महमहइ मलअवाओ अत्ता चारेइ मं घराणेन्तीम् ।

अङ्कोटपरिमलेण वि जो कखु मओ सो मओ व्वेअ ॥ ९७ ॥

[महमहायते मलयवातं श्वधूर्नारयति श्वाङ्गरात्रिर्यान्तीम् ।

अङ्कोटपरिमलेनापि यः खलु मृतः सन्तु ख्यः ॥]

महमहायते अतिसौरभमुद्ब्रह्तीत्यर्थः । अङ्कोटेति । अङ्कोटो गृहवाटिकायामेव प्रा-
यशो भवतीति प्रतिदिः । अयमाशयः—सुरभिमलयमादृतस्पर्शोद्दीपितविषमविदमवाण-
वाणभिरहृदया हृदयस्फोटेन विमङ्गयतीति समाख्यं श्वधूर्मां बहिर्गन्तुं न ददाति । निमे-
तावता । गृहस्थिताङ्कोटगन्धेनाप्यहं मरिष्याम्येवेति । 'अङ्कोटे तु निरोचन' इत्यमरः ॥

कस्यचिदभियोगनिरासार्थं दूती दपस्यो परस्परानुरागमाह—

सुहपेनेओ पई से सा वि हु सविसेसदंसणुम्मइआ ।

दोवि कअत्था पुहइं अमहिलपुरिस य मण्णन्ति ॥ ९८ ॥

[मुखप्रेक्ष्य पतिस्तस्या सौमित्रं सविशेषदर्शनोन्मत्ता ।

द्वानपि वृत्तार्थं पृथिवीममहिलापुरुषामिव मन्येते ॥]

शेरितपतिरा काचित्कयापि क्षेमं पृष्ट्वा तामाह—

सेम कन्तो सेमं जो सो खुज्जम्भओ घरदारे ।

तस्स किल मत्थजाओ को वि अणत्थो समुप्पण्णो ॥ ९९ ॥

[क्षेमं श्रुतं क्षेमं योऽमी कुञ्जाग्रको गृहद्वारे ।

तस्य किल मत्सकात्कोऽप्यनर्थं समुत्पन्नः ॥]

अनर्थो मुकुलः । वसन्तरालं सप्राप्त इति भावः ॥

१. 'माता' ग. २. 'वेच्छितो' ग. ३. 'सावि च' ग. ४. 'दर्शनान्मत्ता' ग,
'दर्शनोन्मादित' घ.

प्रवासावसरमधिगम्य वक्ष्यामप्यभियोतुर्जोरस्य निरासार्थं दत्ताह—

आउच्छणविच्छाअं जाआइ मुहं णिअच्छमाणेण ।

पहिण्ण सोअणिअलाविण्ण गन्तुं ठिवअ ण इट्ठम् ॥ १०० ॥

[आपृच्छनविच्छाय जायाया मुख निरीक्षमाणेन ।

पथिकेन शोकनिर्गदितेन गन्तुमेव नेष्टम् ॥]

आपृच्छन गन्तुमनुजानीहीति प्रश्नः ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।

सत्तसअम्मि समत्तं पञ्चमं गाहासअं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुखविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्त पञ्चम गाथाशतकमेतत् ॥]

पठ शतकम् ।

जनापवादभयादप्राप्तयः सल्लोदना कुलट्य सखीमाह—

सूईवेहे सुसलं विच्छहमाणेण दड्डलोएण ।

एक्कगामे वि पिओसमअं अच्छीहिं वि ण दिट्ठो ॥ १ ॥

[सूचीवेधे सुसलं निक्षिपता दग्धलोकेन ।

एकग्रामेऽपि प्रिय समाभ्यामक्षिभ्यामपि न दष्टः ॥]

सूचीवेध इति । अल्पमपि दूषण बहु पुर्वस्तेत्यर्थः । दग्धशब्दो निर्वेदसूचने । स
गाभ्यां सर्वाभ्याम् । 'समं सदृशि सर्वस्मिन्' इति शेषः ॥

कापि पतिगमनम्यात्ममरणहेतुतो प्रतिपादयन्ती पत्युर्गमननिषेधार्थं सखीमाह—

अजं पि ताव ण्णं मां मं वारेहि पिअसहि रअन्तिम् ।

कल्लि उण तम्मि गए जइ ण मुआ ता ण रोदिस्सम् ॥ २ ॥

[अथापि तापदेक मा मां वारय प्रियसखि रुदतीम् ।

कल्ये पुनस्तस्मिन्गते यदि न मृता तदा न रोदिष्यामि ॥]

अपिरवधारणे । अर्धवैल्यर्थः । एक दिनमित्यर्थादः ॥

ऋतुमत्ता सुवत्सा वेदग्ध सुखयन्ती कापि सखी शिषयितुमाह—

एहि त्ति बाहरन्तम्मि पिअअमे उअह ओणअमुहीए ।

विउणावेट्ठिअजहणत्यलाइ लज्जाणअ इसिअम् ॥ ३ ॥

१. 'निगडावितेन' घ. २. 'विच्छुहमाणमि दड्डलोअम्मि' ग. ३. 'विशिष्यमाणे
न, 'प्रक्षिपता' घ. ४. 'मास' ग. ५. 'विये न रोदिष्ये' ग.

[एहीति व्याहरति प्रियतमे पश्यतावनतमुख्या ।

द्विगुणावेष्टितमघनस्यलया लज्जावनतं हसितम् ॥

बोऽपि युवलाः कटाक्षवर्णनेन साभिलाप प्रकाशयन्नाह—

मारेसि कं ण मुद्धे इमेण रैत्तन्ततिक्खविसमेण ।

मुलआचावविणिग्गअतिक्खअरद्धच्छिभहेण ॥ ४ ॥

[मारयसि कं न मुग्धे अनेन रैत्तन्ततीक्ष्णनिपमेण ।

मूलताचापमिनिर्गततीक्ष्णतरुर्धाक्षिभलेन ॥]

भा. काण्डभेदः । 'रैत्तन्ततिक्ख' इति स्थाने 'पेरन्तरत्त' इति क्वचित्पाठः । तत्र 'पर्यन्तरत्त' इत्यर्थः ।

नायिकाया अनुरागातिशय प्रकाशयन्ती दूती जारमाह—

तुह दंसणे सअहा सइं सोऊण णिग्गदा जाइं ।

तइ वोलीणे ताइं पआइं वोढव्विआ जाआ ॥ ५ ॥

[तव दर्शने सतृष्णा शब्द श्रुत्वा निर्गता यानि ।

त्वयि व्यतिक्रान्ते तानि पदानि वोढव्या जाता ॥]

शब्दं तव वचनम् । त्वदर्शनोत्साहेन गमनावसरेऽज्ञातद्वेषा त्वयि नेत्रपथातीते पुनर्ग-

तजीवितेव परसंवाह्या जातेत्यर्थः ॥

मिमित्येव कृशासीति पृष्ट्वा कापि मातुलानीमाह—

ईसामच्छररहिण्हिं णिहिं ^{मार्ग} रेहिं मामि अन्हीहिं ।

एहिं जणो जणम्मिअ णिरिच्छण क्हँ ण छिंजामो ॥ ६ ॥

[ईर्ष्यामत्सररहिताभ्या निर्विकाराभ्या मातुलान्यक्षिभ्याम् ।

इदानीं जनो जनमिव निरीक्षते कथं न क्षीयामहे ॥]

जनः प्रियः । जनमिव साधारणमिव । निरीक्षते अलानिति शेषः । ईर्ष्यामत्सरभू-

भञ्जदिनमनुरागशापकमिति तदभावात्क्षीणस्तीति भावः ॥

दुहितुः किञ्चिदपि सौभाग्यसूचक मातरं तोषयतीति कापि कस्यचिच्छिदशायमाह—

वाउद्धअसिअविहाविओरुदिट्ठेण दन्तमग्गेण ।

वहुमाआ तोसिज्जइं णिहाणकलसस्स व मुहेण ॥ ७ ॥

[वातोद्धतसिचयविभावितोरुद्वेन दन्तमार्गेण ।

वधूमाता तोष्यते निधानकलशस्येव मुखेन ॥]

१. 'पेरन्तरत्त' ख. २. 'पर्यन्तरत्त' घ. ३. 'छिजामो' क. ४. 'मातुलि' घ.

५. 'तुष्यति' ग.

दन्तमार्गेण-दन्तक्षतेन । ऊरुप्रदेशे दन्तनखघातादयः सुरते कर्तव्या इति व
मनुजयेदमुक्तम् ॥

काप्यात्मन इर्ष्यादोष परिहरती स्नेहानुवृत्त्यर्थं वक्तुममाह—

हिअअम्मि वससि ण करेसि मण्णुअ तह वि णेहभरिण्हि
सद्धिज्जसि जुअइसुहावगलिअधीरेहि अम्हेहि ॥ ८ ॥

[हृदये वससि न करोषि मन्यु तथापि स्नेहभृताभि ।

शङ्कसे युजतिस्वभाजगलितधैर्याभिरस्त्राभि ॥]

यद्यपीदानीं क्रियति तथाप्यग्रे विरस्यस इति मनसि संशयो भवतीति भावः
कापि कस्मिन्नपि यूनि जाताभिः शपा तस्य भार्यापारतन्त्र्यं सूचयन्ती
सनिर्वेदमाह—

अण्ण पि किं पि पाविहिसि मूढ मा तम्म दुक्खमेत्तेण ।

हिअअ पराहीणजण मग्गेन्त तुह केत्तिअ एअम् ॥ ९ ॥

[अव्यदपि किमपि प्राप्स्यसि मूढ मा ताम्य दुःखमात्रेण ।

हृदय पराधीनतन सृगयमाण तव विरयमात्रमिदम् ॥]

किमपीति । प्रियविप्रयोगवच्छरीरवियोगमपि प्राप्स्यसीत्यर्थः । मरणस्य पद-
पादानममङ्गलदाप्यस्त्रीलावहमिति किमपीदमुक्तम् ॥

कान्तस्यान्यस्यामनुरागम्, तस्याश्च तस्मिन्द्वेयम्, आत्मनश्च तस्मिन्ननुरागम्
चात्मनि द्वेयं सूचयन्ती कापि नायम्माह—

वेसोसि जीअ पसुल अहिअ ^{वजाणे} ^{वजे} चहभा तुज्ज ।

इअ जाणिऊण वि मए ण ईसिअ दड्डुपेम्मस्स ॥ १० ॥

[द्वेष्ट्योऽसि रैस्या पासुल अधिकतर सा खलु बलम् तव ।

इति ज्ञात्वापि मया न ईर्ष्यित दग्धप्रेम्ण ॥]

चतुर्थैव पद्ये । प्रेम्णे इत्यर्थः । अयमाशयः—अवगतं मया यो यस्त्वा द्वेष्टि
तव प्रियः । यथा मत्तपञ्चो । मया तु त्वप्यनुरक्त्या कथं प्रियया भवितव्यं
प्रेम्णे कथं नेर्ष्या न कृतेति । यद्वा प्रम्ण इति पद्यमी । ईष्यतमिति तुभ्यमिति
प्रेमवशाद्भयो न कृत इत्यर्थः । विस्तीवतापीर्ष्यां प्रेम्णा प्रतिवन्धनात् निष्पन्नेति भा-
अपरां निपुणा प्रेयसीं सुयत्तं वात्तं कापि सेर्ष्यमाह—

सा आम सुहअ गुणरूअसोहिरी आम णिग्गुणा अ अहम् ।

भण सीअ जो ण सरिसो किं सो सव्वो जणो मरउ ॥ ११ ॥

१ 'स्नेहयते' क ख. २ 'धैर्यं' क ख. ३ 'कसयमान तव विरयदेत'
'इच्छन् तव विरयदेत' घ. ४. 'जीव' घ

[सा सैत्वं सुभग गुणरूपशोभनशीला सैत्वं निर्गुणा चाहम् ।

भण तस्या यो न सदृशः किं स सर्वो जनो म्रियताम् ॥]

आमेति सेव्यानुमतौ । सत्यमित्यर्थः । अत्र विपरीतलक्षणया रागान्वस्त्य गुणरूपा-

दिकं विवेक्तुमेव न जानासि । यतोऽधमामपि तां बहु मन्यस इति व्यज्यते ॥

दुर्लभाभिलाषिणीं स्वगृहवधू प्रति वैराग्यजननार्थं कोऽपि पुत्रमाह—

सन्तमसन्तं दुःखं सुहं च जाओ घरस्स जाणन्ति ।

ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओं जरा मनुस्साणम् ॥ १२ ॥

[सदसदुःखं सुखं च या गृहस्य जानन्ति ।

ता पुत्रक महिलाः शेषा जरा मनुष्याणम् ॥]

गृहस्य गृहपते । सद्विद्यमानम् । असदविद्यमानम् । यस्त्विति शेषः । यथा सुखं
दुःखं च या जानन्ति ता महिला गृहिणीपदाधिरारिण्यः । अन्यास्तु जरा क्षयहेतु-
रादित्यर्थः ॥

वापि सग्याः शिक्षार्थं कुलवधूवृत्तमाह—

हसिण्हि उवांलम्भा अणुवचारेहिं रिज्जिअव्वाइं ।

अंसूहिं मण्डणाइं एसो मग्गो सुमहिलाणम् ॥ १३ ॥

[हमितैरुपालम्भा अत्युपचारैः खेदितव्यानि ।

अधुभिः कलहा एव मार्गः सुमहिलाणाम् ॥]

हसितैर्न तु रोदनैः, उपचारैर्न तु गृहकृतपरित्यागेन, अधुभिर्न तु वचोभिरिति भावः ॥

जनापवादभयादकृतसमापणे प्रेयस्यलमुद्वेगेनेति वदन्ती दूरीं कापि रात्रणयरो-

पमाह—

उल्लापो मा दिज्जउ लोअविरुद्ध चि णाम कैऊण ।

सँमुहापडिण को उण वेसें वि दिट्ठि ण पाडेइ ॥ १४ ॥

[उल्लापो ना दीयतां लोकविरुद्ध इति नाम कृत्वा ।

संमुखापत्तिते कः पुनर्द्वेष्टेऽपि दृष्टिं न पातयति ॥]

लोकविरुद्ध इति कृत्वा उल्लापो मा दीयतां नामेत्यन्वयः । नाम कृत्वा नामग्रहण-
पूर्वकमिति वार्थः । यद्वा परपुरुषसमापण लोकविरुद्धमिति मा कियताम्, कथं पुनस्त-
मद्राशीरपि नेति तावती प्रति कृतव्या इत्यमुक्तिः ॥

अतिक्रान्तसमेतसमया प्रिया प्रति कोऽपि सोद्वेगमाह—

साहीणपिअमो दुग्गओ वि मण्णइ कअत्थमप्पाणम् ।

पिअरहिओ उण पुहविं वि पाविउण दुग्गओ वेअ ॥ १५ ॥

[स्वाधीनप्रियतमो दुर्गतोऽपि मन्यते कृतार्थमात्मानम् ।

प्रियैरहित पुन पृथिवीमपि प्राप्य दुर्गत एव ॥]

स्वाधीना प्रियतमा यस्येति बहुओहि । यद्वा किमेव वृक्षोऽसीति पृष्टस्येच्छानुरूपा
प्रियामलभमानस्य कस्यचिदियमुक्तिः ॥

वामप्यप्राप्तप्रियतमा लोभयादृश्यस्थित स्नेह गोपायन्तीं सख्याह—

किं ह्वसि किं अ सोअसि किं कुप्पसि सुअणु एक्कमेक्कस्स ।

पेम्म विस व विसम साहसु को रुन्धिउ तरइ ॥ १६ ॥

[किं रोदिपि किं च शोचसि किं कुप्यसि सुतनु ऐकैकस्मै ।

प्रेम विषमिन् निषम कथय को रोदु शक्नोति ॥]

प्रेमवशादुःखिता भवति, इयास्मा प्रति कोप मा कृया इति भावः ॥

अनभ्युपगच्छतीमभियोज्यामन्नीकारयितुं दूरी स्नानुभूतानामेवार्थानामनिलता
माह—

से अ जुआणा ता गामसपआ त च अम्ह वारुण्णम् ।

अकराणअ व लोओ कहेहि अम्हे वि त सुणिमो ॥ १७ ॥

[ते च युवानस्ता ग्रामसपदस्त्रिधास्माकं तारुण्यम् ।

आख्यानकमिव लोकं कथयति वयमपि तच्छृणुमः ॥]

सदेवमनिले ससारे तथाविधविदग्धवस्त्रभसनागममुख विमिति परिहरसीति भावः ॥

कातेन सशपथमनुनीयमानाया कान्त प्रत्युद्वेगवाद सखीं सखीमाह—

वाहौहभरिअगण्डाहराएँ भणिअ विलकरइसिरीए ।

अज्ज वि किं रुसिज्जइ सवहावस्य गअ पेम्मम् ॥ १८ ॥

[वैष्ण्वौघर्भूतगण्डाधरया मणित विलक्षहसनशीलया ।

अद्यापि किं रूप्यते शपथावस्थां गतं प्रेम ॥]

‘प्रियारहित’ ग २ ‘प्राप्तो’ घ ३ ‘किं ह्वसि’ ग ४. ‘किं कुप्पसि’ ग.
‘एक्कस्स’ घ ६ ‘वादोल्लुफुरित’ ग ७ ‘वाण्णादस्फुरित’ ग ८. ‘मरित’ घ
‘अज्ज हरुस्या’ ग.

‘बाहोळपुरिअगण्डाहराए’ इति पाठे ‘बाष्पाद्रैरुफुरितगण्डाधरया’ इत्यर्थः । दापयेति ।
केवलं शपथेनैव प्रेम वर्तते इति ज्ञायते, न त्वनुभूयत इति भावः ॥

प्रियस्य मन्दब्रेहता सूचयन्ती सखी तनिर्वेदं सखीमाह—

वण्णअघअलिप्पमुहिं जो मं अइआअरेण चुम्बन्तो ।

एहिं सो भूत्तणभूत्तिअं पि अलसाअइ छिचन्तो ॥ १९ ॥

[वर्ण[क]घृतलितमुखी यो मामत्यादरेण चुम्बन् ।

इदानीं स भूषणभूषितामप्यलसायते स्पृशन् ॥]

श्वे पुष्पवतीमपि मामत्यादरेण योऽस्प्राक्षीत्स इदानीं शुद्धामपि मा स्पृशत्यपि
नेत्यर्थः ॥

कस्याधिन्मलिनवस्त्रतादोषं परिहरन्ती दूती वस्त्रस्य रतानुपयोगित्वमाह—

णीलपडवाडअझी त्ति मा हु यं परिहरिज्जासु ।

पट्टंसुअं पि णद्धं रअम्मि अवणिज्जइ शेअ ॥ २० ॥

[नीलपटप्रावृताङ्गीति मा खल्वेना परिहर ।

पट्टांशुकमपि नद्धं रतेऽपनीयत एव ॥]

नद्ध परिहितम् । तद्वजो गुण श्रीणामुपादेशः, न त्वाक्षयं इति भावः ॥

अतिमाने दोषं प्रदर्शयन्ती दूती मानिनीमनुनेतुमाह—

सच्चं कलहे कलहे सुरआरम्भा पुणो णवा होन्ति ।

माणो उण माणंसिणि गरुओ पेम्मं विणासेइ ॥ २१ ॥

[सत्यं कलहे कलहे सुरतारम्भा. पुनर्नवा भवन्ति ।

मानः पुनर्मानस्विनि गुरुक प्रेम विनाशयति ॥]

कलहान्तरभाविति सुरते यद्यपि रसविशेषो लभ्यते तथाप्यतिमानेन प्रेमिणि गते
रसि सुरतेनेति मुष्ट मानमिति भावः ॥

अग्रहीतानुनयविलक्षेण प्रियेणाकपीरिता कलहान्तरिता साधुतां दूतीमाह—

माणुम्मत्ताइ मए अकारणं कारणं गुणन्तीए ।

अहंसणेण पेम्मं विणासिअं पोढवाएण ॥ २२ ॥

[मानोन्मत्तया मया अकारणं कारणं कुर्वत्या ।

अदरनेन प्रेम विनाशितं प्रौढवादेन ॥]

अकारणमिति । अदोषमेव दोषं कल्पयन्त्येत्यर्थः । माननिमित्तं विनिवाद्यहेन निमित्तं
सपाद्य मानं विदधत्वा मयानुनयमपि प्रियो नावलोकितः सप्रत्यक्षनिर्देश एव मतः ।
यथा तद्दर्शनं भवतीति भावः । ग्रीडवाद् सप्रतिश्रुत्याह्वयानम् ॥

वृत्तापराधमनुनयन्त कापि मन्त्राहपालम्भमाह—

अणुऊलं विअ वोत्तु वहु बहह बहहे वि वेसे वि ।

कुविअं अ पसाएउं सिक्खइ लोओ तुमाहित्तो ॥ १३ ॥

[अनुकूलमेव वक्तु बहुबलम् बलभेदपि द्वेष्येऽपि ।

कुपितं च प्रसादयितुं शिक्षिते लोको युष्मत् ॥]

सर्वमिदं तव हृदयवाह्यमित्यर्थः ॥

मन्दब्रह्मस्य शान्तव्याकृतशला सूचयन्ती कापि सखीमाह—

लज्जा चत्ता सील अ खण्डिअं अजसणीसणा दिण्णी ।

जहस कए णं पिअसहि सो खेअ जणो जाओ ॥ १४ ॥

[लज्जा त्यक्त्वा शीघ्रं च खण्डितमयशोघोषणा दत्ता ।

यस्य कृतेन (कृते ननु) प्रियमखि म एव जनो जनी जानः ॥]

जनो वत्तम । जन उदासीनो जातः ॥

कापि सखाः शिक्षार्थं कुलप्रभूषणमाह—

हमिअं अदिट्ठदन्तं भमिअमणिषन्तदेहलीदेसम् ।

दिट्ठमणुक्खित्तमुहं एसो मग्गो कुलप्रभूणम् ॥ १५ ॥

[हसितमदृष्टदन्तं जनिममणिप्रान्तदेहलीदेशम् ।

दृष्टमनुत्क्षिप्तमुखमेव मार्गं कुलप्रभूणाम् ॥]

निषत्तिच्छदतया केनापि विन्दमानस्य नायकस्यान्यापदेशेन गुणातिशयं कृती ना-
दिरामनुकूलयितुमाह—

भूलिमइलो नि पट्टहिओ वि तणरइअदेहभरणो वि ।

तह वि गैहन्धो गरुअत्तणेण टक्क समुव्वहइ ॥ १६ ॥

[भूलिमग्निर्गोऽपि पट्टाद्वितोऽपि कृणरचितदेहभरणोऽपि ।

तथापि गैहन्धो गुरुकृतेन टक्का समुद्रहति ॥]

तस्यैव परं यशोद्विगिम्भ इति भावः । भरणं पोषणम् । गुरुत्वं परिमाणविशेष इ-
त्यर्थः ॥

विपद्यपि महतामुन्नतचित्तत्वमेवेति सर्वा शिक्षयितुं वापि सुभटस्त्रियाद्यौरेण सहो-
क्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

करमरि कीस ण गम्सइ को गळो जेण मसिणगमणासि ।

अहिद्वदन्तहसिरीअ जम्पिअं चोर जाणिहिसि ॥ २७ ॥

[वेन्दि किमिति न गम्यते को गर्वो येन मसृणगमनासि ।

अद्वदन्तहसनशीलया जल्पितं चोर ज्ञात्वासि ॥]

करमरी दृढदृढमहिला । यमनासीत्यनन्तरमिति चौरैणोक्ते सतीति शेषः । शास्त्र-
धीति । मम प्रिय आगच्छति क्षणदेवास्याविनयस्य फलमनुभविष्यतीति भावः । 'अ-
दिद्व' इति स्थाने 'दरदिद्व' इति क्वचित्पाठः । तत्र 'इपद्वदन्तहसनशीलया' इत्यर्थः ॥

कस्याप्यभियोगनिरासार्थं दूती नायिकाया ऋतुकालेऽप्यनवसरमाह—

थोरंसुएहिं रुण्णं सबत्तिवग्गेण पुप्फवइआए ।

भुअसिहरं पइणो पेछिऊण सिरलग्गत्तुप्पलिअम् ॥ २८ ॥

[स्थूलाक्षुगी रुदितं सपत्नीवर्गेण पुष्पवत्याः ।

भुजशिखरमत्युप्रेक्ष्य शिरोलम्बवर्णघृत्तलिप्तम् ॥]

रजसलामपि तामसौ न लज्जतीति भावः । तुप्प वर्णघृत तेन लिप्ते तुप्पलिअम् ॥
अनुतागातिशयात्सोऽपि रजसलामाह—

लोओ जूरइ जूरउ वजणिज्जं होइ होउ तं णाम ।

एहि णिमज्जसु पासे पुप्फवइ ण पइ मे णिदा ॥ २९ ॥

[लोक. खिद्यते खिद्यतु वचनीय भवति भवतु तन्नाम ।

एहि निर्मेज्ज पार्श्वे पुष्पवति नैति मे निद्रा ॥]

वचनीय परीवादः ॥

व्याप्यनुरागातिशयं व्यनयन्ती कमपि युवानमाह—

जं जं पुलएमि दिसं पुरओ लिद्धिअ च्च दीससे तत्तो ।

तुह पडिमापडिवाडिं वहइ व सअलं दिसाजकम् ॥ ३० ॥

[या यां प्रलोकयामि दिशः पुरतो लिखित एव दृश्यते तत्र ।

तव प्रतिमापरिपाटीं वहतीव सकल दिशाचक्रम् ॥]

प्रतिमा प्रतिविम्बम् । परिपाटी परम्परा ॥

एकत्रानुभूतव्यसनस्तरसदृशमन्यदभिलषितमप्युपादातुं विभेतीत्यन्यापदेशेन कोऽप्याह—

ओसरइ धुणइ साहं खोखासुदलो पुणो समुद्धिहइ ।

जम्बूफलं ण गेहइ भमरो त्ति कई पढमडक्को ॥ ३१ ॥

[अपसरति धुनोति शाखा खोखासुखर, पुन, समुल्लिखति ।

जम्बूफलं न गृह्णाति भ्रमर इति कवि, प्रथमदृष्टं ॥]

खोखा ध्वनिविशेषः । डक्को दृष्ट ॥

अभिमतमपि मूढः प्रतिकूलबुद्ध्या परिहरतीत्यन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—

ण छिवइ हत्थेण कई कैण्डूइभएण पत्तलणिउञ्जे ।

दरलंम्बिअगोच्छकइकच्छुसच्छहं वाणरीहत्थम् ॥ ३२ ॥

[न स्पृशति हस्तेन कपि कैण्डूतिमयेन पत्रलनिकुञ्जे ।

ईपेलंम्बितगुच्छकपिकच्छुसच्छसदृश वानरीहत्थम् ॥]

पत्रलः पत्रबहुलः । कपिकच्छुः शूकशिम्भिः । प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्कपिकच्छुगुच्छसदृशमित्यर्थः ॥

नायिकाया विरहदुःखं सूचयन्ती दूती नायकमाह—

सरसा वि सूसइ थिअ जाणइ दुक्खाईं मुद्धहिअआ वि ।

रत्ता वि पण्डुर थिअ जाआ वरईं तुह विओए ॥ ३३ ॥

[सरसापि शुष्यत्येव जानाति दुःखानि मुग्धहृदयापि ।

रत्तापि पाण्डुरैव जाता वराक्री तत्र वियोगे ॥]

रस आर्द्रता इच्छा च । मुग्धत्वमचेतनत्वमिति कर्तव्यतामुद्धिराहित्यं च । रत्तत्वं रक्तवर्णता प्रीतिविशेषश्च । अत्र विरोधालकारेण त्वद्विरहे सर्वमेव सुखसाधनं दुःखसाधनं जातं तस्या इति वस्तु व्यज्यते ॥

कामपि गलितयौवना शीघ्रपानेन जातमन्यविमारा शस्त्रार्थेनच्छलेनोपहतमाग-
रिक्ः सहचरमाह—

आरुहइ जुण्णअं खुज्जअं वि जं उअह वट्ठरी तउसो ।

णीलुप्पलपरिमलवासिअस्त सरअस्त सो दोसो ॥ ३४ ॥

१. 'सुखरः समुल्लसति' घ. २. 'खोखा वानरशब्द' इति कुलशालदेव. ३. 'कण्डू-
अण' ख-भा. ४. 'कण्डूयन' ग-घ. ५. 'दरलंम्बित' ग-घ. ६. 'सच्छवि' घ.

[आरोहति जीर्ण कुञ्जकमपि यत्पश्यत चेह्नशीला नृपुसी ।

नीलोत्पलपरिमलवसिताया शरदः स दोष ॥]

वेह्नशीला वेष्टनशीला । पक्ष वेष्टिताप्यालिङ्गनशीला । नृपुसी कर्कटीविशेष ।
दोषो विकार । कर्कट्या पुनर्नवीकरण जरत्याथ युवतीकरण विकार । शरत्काले व
र्कटीयता यदेव पुर स्थित गुल्फमात्रे सरल वक्त्रं वा सदेवारोहति । तथा लतेव लता
नयिका वृद्ध तरुण वा यद्गच्छते नायमस्या दोष । किंतु सरवस्स सरकस्य इश्रुम-
यस्य । सरवोऽश्री शीघ्रगाने शीघ्रपात्रेषु शीघ्रानो' इति मेदिनी ॥

पुनर्नभूतमधू'सवा कापि प्रियविरहिता पुन प्रवृत्ते मधू'सवे सखीमाह—

उत्पहपहाविहजणो पविजिम्हिअकलअलो पहअतूरो ।

अव्वो सो खेअ छणो तेण विणा गामडाहो व्व ॥ ३५ ॥

[उत्पथप्रधावितजन प्रविजृम्भितकलकल प्रहृततूर्य ।

हुँ ख स एव क्षणस्तेन विना ग्रामदाह इव ॥]

उत्पथेति । उत्सवतरा'तया सभ्रमाचेति भाव । अव्वो इति दुःखाभिनये आ'र्व्ये
या । क्षणो मधू'सव' ॥

सलसन्ननिपधाय कापि सखीमाह—

उल्लावन्तेण ण होइ कस्स पासट्टिएण ठुहेण ।

सद्धा मसाणपाअवलम्बिअचोरेण व खलेण ॥ ३६ ॥

उल्लापयमानेन न भवति कस्य पार्श्वस्थितेन सन्धेन ।

सद्धा श्मशानपादपलम्बितचोरेणैव खलेन ॥]

उल्लापयमानेन सभाषमाणेन पक्षेऽभिभवता । पार्श्वस्थितेन सनिहितेन, पक्षे पास
ट्टिएण पार्श्वस्थितेन । सन्धेन अहकारात्, पक्षे प्राणवायुविरहात् । सद्धा वितर्क,
पक्षे भयम् ॥

नोदितभतुका प्रियतखी समाभासयितु सखी विनृम्भिनीमाह—

असमत्तगुरअवज्जे एहिं परिण घर निअसन्ते ।

णवपाउसो पिउ'छा दसइ व हुइअट्टहासेहिं ॥ ३७ ॥

१ 'जीर्णैस्तनूमपि' स २ 'वेपमाना दु'दुरि' स, 'बहरी नृपुसी' घ. ३ 'वा
तिस्य सरस को दोष' घ ४ 'सूचित स एव' घ ५ 'उल्लापयमानेन' स,
'उत्पहपहा' घ

[अममासगुरुकाये इदानीं पथिके गृहं प्रतिनिवर्तमाने ।

नम्राद् पितृध्वसः हसतीन कुटजाट्टहासैः ॥]

मचिहदर्शनाद्गीत प्रियाविरह सोढुमशनुवन्नकृतकार्य एवाहं गृहं प्रति प्रस्थित इति हसतीवेत्यर्थः । कुटजकुसुमान्येवाट्टहासः ॥

कोऽपि वर्षोपक्रमे गृहगमनाय पथिकं त्वरयितुमाह—

ददृण उण्णामन्ते मेहे आमुक्कजीविआसाए ।

पहिअघरिणीअ डिम्भो ओरण्णमुहीअ सच्चविओ ॥ ३८ ॥

[दृष्ट्वा उत्तमतो मेघानामुक्तजीविताशया ।

पथिकगृहिण्या डिम्भोऽरुदितमुख्या दृष्टः ॥]

अवरुदितेति । का गतिरस्य भवित्री केन वायं पालयितव्यइत्यादि चिन्तयेति भावः ॥ कलहान्तरितया बोधोज्झितभूषण्यापि न त्यक्तानि बलयानीति तस्याः मुहता विरहकृता च सूचयन्ती सखी तत्कान्तमाह—

अविहवलक्खणवलअं ठाणं णेन्तो पुणो पुणो गलिअम् ।

सहिसत्थो च्चिअ माणंसिणीअ बलआरओ जाओ ॥ ३९ ॥

[अविधवालक्षणवलयं स्वानं नैन्यपुन पुनर्गलितम् ।

सखीसार्ध एन मनसिन्या बलयकारको जातः ॥]

बलयकारको बलयपरिधापकः ॥

कोऽपि दुर्गतविरहिषध्वनस्थाप्रकटनेन प्रादुपि पथिकं त्वरयितुमाह—

पहिअबहू विवरन्तरगलिअजलोहे धरे अणोहं पि ।

उहेसं अविरअवाहसल्लिणिवहेण उहेइ ॥ ४० ॥

[पथिकवधूर्विवरान्तरगलितजलाद्रे गृहेऽनाद्रिमपि ।

उद्देशमविरतवाष्पसल्लिलनिवहेनान्द्रयति ॥]

उद्देश स्थानम् ॥

१. 'पीयूषा' घ. २. 'अवनतमुख्या' ग. ३. 'सत्साधित.' ग, 'सस्थापित.' घ. ४. 'अतिप्रसन्न' घ, 'अतिप्रसन्न' घ. ५. 'नीरपमानं' घ. ६. 'गच्छीहस्त.' ग. घ. ७. 'बलया-कारो' ग, 'बलयारओ' घ. ८. 'कुहन्तर' ख-ग. ९. 'कुब्जान्तर' ग-घ. १०. 'प्र-देश' ग.

अनुनेतुमागतं प्रिययादिनं कान्तं कलहान्तरिता सपरितोषमाह—

जीहाइ कुणन्ति पिअं भवन्ति द्विअअम्मि जिच्चुइं काउम् ।

पीडिअन्ता वि रसं जणन्ति उच्छू कुलीणा अ ॥ ४१ ॥

[जिह्वायां (पक्षे-जिह्वा) कुर्वन्ति प्रियं भवन्ति हृदये निर्दृष्टिं कर्तुम् ।

पीड्यमाना अपि रसं जनयन्तीक्ष्वः कुलीनाश्च ॥]

जिह्वायामिति मधुरवात्प्रियंवदत्वाच्च । भवन्ति प्रभवन्ति । निर्दृष्टिं सतापस्रोद्धे-
यस्य च प्रथमम् । पीड्यमाना दन्तेन निष्ठुरवादेन च । रस इव प्रीति च ॥

वसन्तागमं प्रति विप्रतिपद्यमानो श्वधू धधूराह—

दीसइ ण चूअमउलं अत्ता ण अ वाइ मलयगन्धवहो ।

पत्तं वसन्तमासं साहइ उक्कण्ठिअं चेअ ॥ ४२ ॥

[दृश्यते न चूतमुलं श्वधू न च वाति मलयगन्धवहः ।

प्राप्तं वसन्तमासं कथयत्युक्कण्ठितमेव ॥]

उक्कण्ठितमुक्कण्ठा । 'उक्कण्ठिअ चेअ' इति पाठे 'उक्कण्ठित चेत्.' इत्यर्थः ॥

आश्चर्यं हि प्रोषितपतिके न जातो वसन्तारम्भ इति वदन्तीं रत्नीं वसन्तागममुच्यं
शङ्कराङ्कुरोद्गमं प्रतिपादयन्ती मायिका आह—

अम्भवणे भमरउलं ण विणा कजेण ऊसुअं भमइ ।

कत्तो जलणेण विणा धूमस्स सिहाउ दीसन्ति ॥ ४३ ॥

[आश्रवणे भ्रमरकुलं न विना वार्येणोत्सुक भ्रमति ।

कुतो जलनेन विना धूमस्य शिखा दृश्यन्ते ॥]

उसुमेन विना नालिनो भ्रमन्ति । जाते चाश्रुसुमे प्रवृत्त एव वसन्त इति भावः ॥

कथमनलंकृतामेवैवो बहुमन्यस इति वदन्तं सहचरं मिदग्धः कश्चिदाह—

दइअकरगहलुलिओ धम्मिल्लो सीधुगन्धिअं वअणम् ।

मअणम्मि एत्तिअं चिअ पसाहणं हरइ तरुणीणम् ॥ ४४ ॥

[दयितकरगहलुलितो धम्मिल्लः सीधुगन्धितं वैदनम् ।

मदनं एतावदेव प्रसाधनं हरति तरुणीनाम् ॥]

मदने वसन्तोत्सवे । मदन इति निमित्तप्रसङ्गी वा । मदननिमित्तमित्यर्थः । एतावदे-
ति किमन्यैः सुरतानुषागिभिर्भारभूतैरिति भावः । किमलंकारेण । शीघ्रं कान्तमभिस-
'नि दत्तीवचनमिति कश्चिद् ॥

१. 'करेति' ख. ना. २. 'हरन्ति' ख. ३. 'हरन्ति हृदय' घ. ४. 'चेअं' ख.
५. 'आगतं च' ग. ६. 'चेत्.' ग. घ. ७. 'वचनं' घ. ८. 'मदनोऽप्येतावदेव' ग.

ग्राम्यस्त्रियोऽप्यत्र रमणीया भवन्तीति वसन्तं सुबन्कोऽपि सहचरमाह—

गामतरुणीओं हिजअं हरन्ति छेभाणं थणहरिहीओ ।

मअणे कुसुम्भरखिअकच्चु[इ]आहरणमेत्ताओ ॥ ४५ ॥

[ग्रामतरुण्यो हृदयं हरन्ति विदग्धानां स्तनभारवत्य ।

मैदने कुसुम्भरागमुक्तकशुकामरणमानाः ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानेयमात्कञ्जुकमात्राभरणा इत्यर्थः । एतादृशो ग्रामतरुण्योऽपि स्पृहणीया भवन्ति किमुत परार्थ्यभूषणमूषिताः प्रमदा इति भावः ॥

कोऽप्यनभ्यस्तप्रवाससामिनवपधिकस्य विरहवैधुर्यं कथयन्प्रवासनिषेधार्थं तमाह—

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्मन्त गन्त रोअन्त ।

मुच्छन्त पडन्त खलन्त पहिअ किं ते पवत्थेण ॥ ४६ ॥

[आलोक्यन्दिशः श्वसञ्जृम्भमाण गीयन्हृदन् ।

मूर्छन्पतन्खलन्पथिक किं ते प्रैवसितेन ॥]

चरित्वादिशोऽवलोक्यन्, प्रियास्मरणाच्छ्वसन्, मदनायासेन जृम्भमाणः, दुःखविमोदाय गायन्, पुनश्च निर्वेदादुदन्, तदेकासक्तचित्तवान्मूर्च्छादिविकारं प्राप्नुवन् हे पथिक, ते प्रवसितेन प्रवासेन किं फलम् । गतोऽप्यवृत्तृष्य एवागमिष्यसि । यतः संप्रत्येव तवेयमवस्था विचिद्गमने तु कीदृशवस्था भविष्यतीति न जाने । तस्मात्रिवर्तस्वेति भावः ॥

सदृशा रहोदृत्तमनुसधानुं गता कथमियमिरेणगतासीति सहसा दृष्टा सखी तामाह—

दट्ठण तरणसुरअं विविधविलासेहिं करणसोहिलम् ।

दीओ वि तग्गअमणो गअं पि तेहं ण लक्खेइ ॥ ४७ ॥

[दृष्ट्वा तरुणसुरतं विविधविलासैः कैरणशोभितम् ।

दीपोऽपि तद्वत्तमना गतमपि तैल न लक्षयति ॥]

विविधविलासैरालङ्घितमुन्मनादिभिरुलक्षितम् । करणैस्तानकतिर्विगपरीतायासमयनैः कामशास्त्रोक्तैः शोभितम् । तरुणी च तरुणश्च तरुणौ । 'पुमान्निश्या' इत्येकशेषः । तयोः सुरतम् । अचेतनो दीपोऽपि यत्र स्पृहयालुस्तत्र मद्भिधो जनः कथं कीदृशद्विरमतीति भावः ॥

१. 'हरन्ति पीवरपणहरहीउ' ग. २. 'कुसुम्भराह' ग. ३. 'छेघानां' घ. ४. 'प्रौढस्तनभारा.' ग. ५. 'मदवन्ति कुसुम्भरकञ्जुसिमात्राभरणा.' ग. 'मन्वे कुसुम्भरशितकञ्जुकिचाहरणमात्रा' घ. ६. 'आलोक्यमान' ग. ७. 'गच्छन्' ग. ८. 'पृच्छन्' घ. ९. 'किं स्वया' ग. १०. 'प्रैवसितेन' ग-घ. ११. 'करणसोहिलम्' घ.

श्रीटकामिनीमुत्पण्डयितुं दूती सर्वदग्ध्य नायकस्य मुरतमात्ममन्यापदेशेनाह—

पुणरुत्तकरष्फालणउहअतडुह्निहणवडुणसआइ ।

जूहादिवस्स माए पुणो वि जइ णम्मआ सहइ ॥ ४८ ॥

[पुनरुत्तकरष्फालणोभयतदोह्निहणवडुणसआइ ।

यूथापिपस मात पुनरपि यदि नर्मदा सहेते ॥]

पुनरुत्त पुनःपुनर्यत्करेण गुण्डादण्डेन हस्तेन चारुफालन जलादौ पृष्ठादौ च । उभ
वतः कूलद्वय पार्श्वद्वय च यूथापिपस्य गजमुह्यस्य गोष्ठीनायकस्य च । मानरित्या-
धर्यपरे संबोधनम् । नर्मदा नदी नर्म मुरा ददातीति व्युत्पत्त्या कीडातुकूला नायिका
च । यद्वा मुन्दरि, कान्तसमीप गच्छेति वदन्तीं सखीं प्रति नायिकाया इयमुक्ति ।
‘छेयमह यदि तस्य मुरतदुर्विदग्ध्यस्य स्तनतटनखक्षतोरस्ताडनमर्दनशतानि पुनरपि
हेयमिति भावः ॥

पूर्वसंकेतितस्य कार्पासीक्षेत्रस्य सापायतां खगृहस्यैव खच्छन्दप्रचारयोग्यता च
गारं धावयन्ती कुलटा सोद्वेगमाह—

बोडमुणओ विअण्णो अत्ता मत्ता पैई वि अण्णत्थो ।

फलिह व मोडिअ महिसएण को तस्स साहेउ ॥ ४९ ॥

[दुष्टगुणको विपत्रं श्वश्रूर्मत्ता पतिरप्यन्यस्य ।

कार्पासपि मग्ना महिषकेण कस्तस्य कथयतु ॥]

बोडो दुष्टगुणकर्णो वा । ‘बुडुमुणओ’ इति पाठे दृढशूनक इत्यर्थः । अन्यस्थो
देशांतरस्य । कार्पासी कर्पासवाटिका । तस्य निजपत्न्यु । ‘अत्ता मत्ता पैई वि अ-
ण्णत्थो’ इति स्थाने ‘अत्ता मत्तो पइ णवसुराए’ इति कवित्पाठः । तत्र श्वश्रु इति
संबोधनम् । पतिर्नवमुरया मत्त इत्यर्थः ॥

कान्तेन खमुत्तेन दत्ता मदिरा मानिन्या मानमपनयतीति शिक्षयन्नागरिक सहच-
रमाह—

सकअग्गहरहसुत्ताणिआणणा पिअइ पिअमुइविइण्णम् ।

थोअ थोअ रोसोसइ व उअ माणिणी मैइरम् ॥ ५० ॥

[सकचमहरभसोत्तानितानना पिवति प्रियमुखमितीर्णम् ।

श्लोक श्लोक रोपीपधमिव पदस्य मानिनी मदिराम् ॥]

१ ‘कर्पणशतानि’ घ. २ ‘हसते’ घ. ३ ‘पइ णवसुराए’ ख. ४. ‘सरअ’ ख.
ग ५ सकचमहोत्तानितानना पिवत्याननविक्रीर्णम् घ. ६ ‘पदस्य मानिनी सर-
कम्’ घ.

सकचग्रहं रससेनोत्तागितमाननं यस्याः सा । 'सरज' इति पाठे सरकमिश्रमय-
मित्यर्थः ॥

नार्तस्त्वविचारक्षमो भवतीति मध्याह्नवर्णनच्छलेन प्रदर्शयन्नागरिकः सहवरमाह—
गिरसोत्तो त्ति भुजगं महिसो जीहइ लिहइ संतत्तो ।

महिसस्स कहुवत्थरझरो त्ति सप्पो पिअइ लालम् ॥ ५१ ॥

[गिरसोत्त इति भुजगं महिषो जिहया लेटि सतप्तः ।

महिषस्य कृष्णप्रस्तरश्चर इति सर्पः पिबति लालम् ॥]

महिषस्य लालामिति संबन्धः ॥

शारिकाया रहस्याद्यानतः सलज्जा कुलवधूमांतुलानीमाह—

पञ्जरसारिं अत्ता ण णेसि किं एत्थ रहहराहिन्तो ।

वीसम्भजन्पिआइं एसा लोभाणै पअडेइ ॥ ५२ ॥

[पञ्जरशरीं मैतुलानि न नयति किमन रतिगृहात् ।

विसम्भजत्पितान्येषा लोकानां प्रकटयति ॥]

पञ्जरशरीं पञ्जरवदां शारिकाम् । विसम्भजत्पितानि गुरतगमयोदितवचनान् ।
लोकानां लोकेभ्यः । प्रकटयति श्रावयति ॥

दन्तधावनार्थं वरञ्चनिकुञ्जपङ्कवभञ्जकं भिक्षार्थमटन्तं धार्मिकं भीषयन्ती कुलटा
तन्निषेधार्थमाह—

एदहमेत्ते गामे ण पडइ भिक्ख त्ति कीस मं भणसि ।

धम्मिअ करञ्जभञ्जअ जं जीअसि तं पि दे बहुअम् ॥ ५३ ॥

[एतावन्मात्रे ग्रामे न पतति भिक्षेति विमितिं मां भणति ।

धार्मिकं करञ्जभञ्जकं यज्जीरसि तदपि ते बहुकम् ॥]

द्वर्षवचननिन्यासेनानुरागं व्यग्रयन्ती कुलटा दृढगुञ्जवेतनमिषुपीडकमाह—

जन्तिअ गुंलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ वाहसे जन्तम् ।

अणरसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुलो होइ ॥ ५४ ॥

[यान्त्रिकं गुडं विमार्गयते न च ममेच्छया वाहयति यन्नम् ।

आमिकं किं न जानानि न रसेन विना गुडो भवति ॥]

यान्त्रिको यन्त्रकर्मकारकः, यन्त्रं चेष्टुपीडोचितं गुरतोषितं च । रणो द्रवोऽनुग-

गन्ध । अरसिक द्रवस्यानुरागस्य च निधानानभिज्ञ । रसेन द्रव्येगानुरागेण च विना गुडो न भवति नोत्पद्यते न प्राप्यते चेत्यर्थः । अतो मय्यनुरज्यस्वेति भावः ॥

ज्ञानोत्तीर्णा श्यामाङ्गी सानुरागं वर्णयन्कक्षितमहचरमाह—

पत्तणिअम्बण्फंसा क्खणुत्तिण्णाएँ सामलङ्कीए ।

जलविन्दुएहिँ चिहुरा रुअन्ति बन्धस्स व भएण ॥ ५५ ॥

[प्राप्तनितम्बस्पर्शाः ज्ञानोत्तीर्णाया श्यामलाङ्गया ।

जलविन्दुकैश्चिकुरा रुदन्ति बन्धसेव भयेन ॥]

ज्ञानावसरे लम्बमानाधिकुरा. प्राप्तमुन्दरीनितम्बस्पर्समुखा पुनर्वन्धनेन तत्स्पर्श-
मुखविच्छेदं शङ्कमाना गलजलविन्दुच्छलेन रुदन्तीवेति भावः ॥

निर्भयाभिसारयोग्यता जार प्रति सूचयन्ती कुलटा वटप्रशसामाह—

गामङ्गणणिअडिअकङ्कवक्ख वड तुज्झ दूरमणुल्लगो ।

'तित्तिह्वपडिअकभोइओ वि गामो ग उव्विग्गो ॥ ५६ ॥

[ग्रामाङ्गणनिर्गडितकृष्णपक्ष वट तव दूरमणुल्लग ।

दौ साधिकप्रतीक्षकभोगिकोऽपि ग्रामो नोद्विग्नः ॥]

ग्रामाङ्गणे निर्गडितो वटः । सर्वदा स्थापित इति यावत् । तत्कार्यंकरत्वात्कृष्णपक्षो
यनेति वटविशेषणम् । निविडच्छायलेनान्धकारबाहुल्यात् । तव दूरमणुल्लग इति स्व-
याच्छादितत्वादिति भावः । दौ साधिक. प्रतीक्षको यस्य भोगिग्नस्य स दौ साधिकप्र-
तीक्षकः । तादृशो भोगिको भोगासक्तः कामुरूपनो यस्मिन् । एतादृशोऽपि ग्रामो
नोद्विग्नः । अनुपलक्षिताभिसारतया राजभयशून्यत्वात् । तित्तिणे दौ साधिकः । 'त-
न्तिह्वपडिअकभोइओ वि' इति पाठे तु चिन्तापरासहृनभोचृकोऽपि । तन्तिचिन्ता
तत्पक्ष प्रतिपक्षोऽमहानो भोक्ता ग्रामाधिकारी यत्रेत्यर्थः । तथा च यद्यप्येतस्य ग्रा-
मस्य प्रभुरतितीक्ष्णो न्यायान्वेषणतत्परश्च तथापि स्वप्रसादाद्यमस्य कुलटाजनो नो-
द्विग्न इति भावः ॥

वापि पतिं धारयन्ती सपरन्त्या सोपलम्भं दुग्धरितमाह—

सुप्यं ढडुं चणआ ण भज्जिआ सो जुआ अइअन्तो ।

अत्ता वि घरे कुविआ भूआणँ व वाइओ वंसो ॥ ५७ ॥

[सुप्यं दग्धं चणवा न भृष्टा स सुरातिक्रान्तः ।

अधूरवि गृहे कुपिता भूतानामिह वादितो वराः ॥]

१. 'उत्तिण्णतिप्यकरभो इओ वि' ख. २. 'गन्ति' ग, 'निपत्ति' घ. ३. 'तत्त्व-
प्रतिपक्षभोगिकोऽपि' ग; 'उत्तीर्णतीक्ष्णकरभो इतोऽपि' घ. ४. 'दौ साधिके द्वारपट' इति विशदणशेषः. ५. 'सुप्यं दग्ध' ग. ६. 'क' ग.

स इति । यं द्रष्टुं निर्गता सोऽधीत्यर्थः । भूतानां ध्रुतिविकलानाम् । तथा च वधिरा-
णामग्रे वंशवादनवत्सर्वं तस्याधेष्टितं व्यर्थमेव संवृत्तमिति भावः ॥

निहुतमप्यर्थं विदग्धा बुध्यन्त इति बोधयन्नागरिकः सहचरमाह—

पिसुणेन्ति कामिणीणं जललक्ष्मिपिआवऊहणसुहेल्लिम् ।

कण्डइअकबोलुप्फुहणिसलच्छीइं वअणाइं ॥ ५८ ॥

[पिशुनयन्ति कामिनीणां जलनिलीनप्रियावगूहनमुखकेलिम् ।

कण्टकितकपोलोरुहनिश्चलाक्षीणि वदनानि ॥]

पिशुनयन्ति सूचयन्ति जलनिमग्नस्य प्रियस्य यदवगूहनमालिङ्गनं तेन यत्सुखं तद्रूपं
केलिमित्यर्थः । कण्टकितौ संजातपुलकौ कपोलौ येषां तानि । तथा हर्षविशेषादुरुहै-
स्तम्भाख्येन सार्विकभावेन निश्चले चाक्षिणी येषु तानि वदनानि ॥

वनमयूरलसित सञ्जेतितलतागृहमह गता, ल तु न गत इति चारं धावयन्ती पुलटा
वर्षाप्रशंसागाह—

अहिणवपाउसरसिएसु सोंहइ साआइएसु दिअहेसु ।

रहसपसारिअगीवाणं णच्चिअं सौरवुन्दाणम् ॥ ५९ ॥

[अभिनवप्रावृद्धमितेपु शोभते दयामायितेपु दिवसेपु ।

रमसप्रसारितगीराणां मृत्यं मयूरवृन्दानाम् ॥]

अभिनवानि प्रावृषो रक्षितानि मेघगर्जितानि येषु तेषु । मेघान्तरितभास्वरतया
दयामायितेपु रात्रिसदृशेषु दिनेषु मृत्यं शोभत इति संपन्थः । दिवैव संकेतस्थानस्याभि-
सारयोग्यतां प्रतिपादयन्त्या दत्त्वा इयमुक्तिरिति ध्वनिः ॥

महिषशालायां रममाणः कापि जारोत्साहनाय दोषं गुणोक्तमाह—

महिषक्खन्धविलगं घोळइ सिङ्गाहअं सिमिसिमन्तम् ।

आहअवीणासंकारसदमुहलं मसअवुन्दम् ॥ ६० ॥

[महिषक्खन्धविलगं धूर्गने शृङ्गाहतं सिमिसिमायमानम् ।

आहतगीणासंकारसदमुहलं मशक्वृन्दम् ॥]

धूर्गते भ्रमति । सिमिसिमायमानमित्यनुकरणम् । सिमिसिमस्य कुर्यदित्यर्थः । आह-
ताया बीणाया इव यो संकारः शब्दस्तेन सुसरम् ॥

१. 'मूषयन्ति' ग. २. 'जललानोत्कम्पितावरोहणसकीडम्' घ. ३. 'कीड' ग.
४. 'कण्टकितकपोलोरुहनिश्चललक्ष्मीकानि' घ. ५. 'दयामायमानेषु' ग. 'दयामात्रिकेषु'
घ. ६. 'पुत्रते' घ. ७. 'सिमिसिमायन्तम्' ग. 'सिमिसिमन्तम्' घ.

कुमुदसरस्वीरलतागृहे चन्द्रोदयपर्यन्तमह स्थित, त्व तु न गतेति कुलटा धावयन्क-
धिदाह—

रेहन्ति कुमुददलनिधलस्थिता मत्तमहुअरणिहाआ ।

ससिअरणीसेसपणासिअस्स गण्ठि व्व तिमिरस्स ॥ ६१ ॥

• [राजन्ते कुमुददलनिधलस्थिता मत्तमधुकरनिकाया ।

शशिकरनि शेषप्रणाशितस म्रैन्थय इव तिमिरस ॥]

शाशिक्षेत्रे क्षुरपतः शङ्का सूचयतीं शाठिगोपी सुरतसत्वरं जारमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअह तरुकोडराओ णिँकेन्त पुसुवाणं रिञ्छोलिम् ।

सरिए जरिओ व्व दुमो पित्त व्व सलोहिअ वमइ ॥ ६२ ॥

[पश्यत तरुकोटराक्षिका ता पुञ्जुकाना पङ्क्तिम् ।

शरदि ज्वरित इव द्रुम पित्तमिव सलोहित वमति ॥]

रममाणस्य जारस्य भयत्तरापनयनार्थं दुर्दिनाभिसारिका दुर्दिनानुबन्धलिङ्गमाह—

धाराधुव्वन्तमुहा लम्बिअवकरा णिउञ्चिअग्गीवा ।

वइवेढेनेसु काआ सुलाहिणा व्व दीसन्ति ॥ ६३ ॥

[धाराधाव्यमानमुखा लम्बितपक्षा निकुञ्चितग्रीवा ।

वृत्तिवेष्टनेषु काका सुलाभिजा इव दृश्यन्ते ॥]

कथं प्रसारितशलाघाकारचक्षुःवाच्छृङ्गेना समन्ताद्भिन्ना इवेत्यर्थः । एते च दुर्दि-
नस्य विरकालानुवृत्तिसूचका इति भावः ॥

वज्रभतंभापणविमुखीं कलहातरितां शिक्षयतीं कानिदाह—

ण वि तह अणालवन्ती हिअअ दूमेइ माणिणी अहिअम् ।

जह दूरविअम्भिअगरअरोसमज्झत्यभणिएहिं ॥ ६४ ॥

[नापि तथानालपन्ती हृदयं दुर्नोति मानिन्वधिकम् ।

यथा दूरविजृम्भितगुरुकरोपमप्यस्यमणितै ॥]

रोपपूर्वकाणि यानि मध्यस्थमणितान्युदासीनवचनानि तैरित्यर्थः । तदुक्तं मातृगुप्ता
चार्थः—'निष्ठुराणि न वक्तव्यो नातिक्रोधश्च दर्शयेत् । न वाक्यैर्वाप्यसन्निधिरुपात्तभ्यो
मनोरमः ॥' इति ॥

१ 'कुमुद' घ. २. 'निघाता' ग; 'निहरा' घ. ३ 'प्रचमितस' ग. ४ 'प्रवि-
रिव' घ. ५. 'निष्कामति पुष्टतानां' ग. ६. 'श्रोष्ठिताना रिञ्छोलिम्' घ. ७ 'घ-
रापरोन्मुखा' घ. ८. 'न पित्तमनालपन्ती' घ. ९ 'दुर्मनायते' ग.

वर्षासु प्रियतमाविनाशमाशङ्कमानं पथिस्मात्पासयंस्तत्सहचर आह—

गन्धं अगघामन्तअ पक्कलम्बाणं वाहभरिअच्छ ।

आससु पहिअजुआणअ परिणिमुहं मा ण पेच्छहिंसि ॥ ६५ ॥

[गन्धमैत्रिमन्यककदम्बानां बाष्पभृताक्ष ।

आश्वासिहि पैथिकयुगन् गृहिणीमुखं मा न प्रेक्षिष्यसे ॥]

न प्रेक्षिष्यम इति मा । किं तु प्रेक्षिष्यस एवेत्यर्थः ॥

गर्जितध्रुवणशङ्कितप्रियतमाविनाशः पथिको जलधरमाह—

गज्ज महं चिअ उवरिं सव्वत्थामेण लोह्हिअअस्स ।

जलहर लम्बालइअं मा रे मारेहिंसि बराइम् ॥ ६६ ॥

[गर्ज ममैवोपरि सर्वस्याग्रा लोह्महृदयस ।

जलधर लम्बालनिकां मा रे मारयिष्यसि वराकीम् ॥]

सर्वस्याग्रा सर्वकलेन । रे इति संबोधनम् । लोह्वन्कठोरहृदयत्वात्त्वद्वर्जनं सोढुमहं नमर्थः । सा पुनः शिरीषादपि मृदूरी कथं जीविष्यतीति भावः ॥

हेमन्तोपक्रमवर्षनच्छलेन शालिक्षेत्रस्याभिसारयोग्यता धावयन्ती उलट्य का-
चिदाह—

पङ्कमइलेण छीरेकसाइणा दिण्णजाणुवड्ढणेण ।

आनन्दिज्जइ हलिओ पुत्तेण च सालिछेत्तेण ॥ ६७ ॥

[पङ्कमलिनेन क्षीरैकपायिना दत्तजानुवर्धनेन ।

आनन्दते हालिकः पुत्रेणैव शालिक्षेत्रेण ॥]

क्षीरं तण्डुलारम्भकं जलं दुग्धं च । जानु लक्ष्मण उपकारादान्नालम्पयिष्य ॥

प्रातरैवाहं सकेतस्थानं शालिक्षेत्रं गता, एव तु न गत इति जारं धावयन्ती गीर्हासा-
भिसारिका सालेऽपि खलसंबोगदुद्देशमाह—

कहं मे परिणइआले सलसङ्गो होदिइ चि चिन्तन्तो ।

ओणअमुहो ससूओ रुइ य माली सुमारेण ॥ ६८ ॥

[कथं मे परिणतिकाले सलसङ्गो भविष्यतीति चिन्तयम् ।

अनन्तमुगुः ससूओ रोदितीं शालिस्तुषारेण ॥]

१. 'आग्रायन्' घ. २. 'गरिनाश' घ. ३. 'पथिकेदानी' घ. ४. 'छे' ५. 'ए'
शालि' ग. ६. 'मारयति' घ. ७. 'वत्तेन' ख. ८. 'वत्तेन' घ. ९. 'अनन्दयति'
घ. १०. 'मवतीति' घ.

खलस धान्यमर्दनस्थानस्य दुर्जनस्य च सङ्गः । अवततं मुखं शीर्षाग्रं वदनं च यम्य
सः । शूकेन धान्यकण्टकेन सह वर्तत इति सशङ्कः । अथ च समूहो सशोकः ॥

अभिसारस्थानगमनाय प्रदोषाभिसारिका त्वरयन्ती दूती प्रदोषवर्णनमाह—

संसारोत्थङ्गो दीसद् गअणम्मि पड्डिवआचन्दो ।

रत्तदुळलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णववहुए ॥ ६९ ॥

[संध्यारागावस्थगितो दृश्यते गगने प्रतिपच्चन्द्रः ।

रक्तदुकूलान्तरितः सननखलेख इव नववध्वाः ॥]

अर्धचन्द्रावलोकनवर्तुवादाकाशं पश्यन्त देवरे कापि सपरिहासमाह—

अइ दिअर किं ण पेच्छसि आआसं किं मुहा पलोएसि ।

जाआइ बाहुमूलम्मि अद्धअन्दाणं परिवाडिम् ॥ ७० ॥

[अयि देवर किं न प्रेक्षसे आकाश किं मुधा प्रलोकयसि ।

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीं परम्परां किं न प्रेक्षसे इति योजना ॥

वक्ष्यसि मद्बचनेन मत्प्रियनेवमिति प्रोषितभर्तृका प्रियस्वमीपगामिनं पान्थमाह—

वाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व डिकए लेहे ।

तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ॥ ७१ ॥

[वैचया किं मण्यतां वियन्मात्रं वा लिख्यते लेखे ।

तव विरहे यदुखं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥]

बहुत्वाद्दुःखानां किं वक्तव्यं कियद्वा लेख्यमित्यर्थः । गृहीतार्थो ज्ञाता । गृहीतो-
ऽर्थो येनेति व्युत्पत्तेः । मद्भिरहेण त्वया यावद्दुःखमनुभूतमस्ति तेनैवानुमीयता मद्दुःख-
मिति भावः ॥

कोऽपि कस्ताधिः केशपाशप्रशंसां साभिलाषमाह—

मअणगिणो व्व धूमं मोहणविच्छि व लोअदिट्ठीए ।

जोव्वणधअं व मुद्धा वहइ सुअन्धं चिउरभारम् ॥ ७२ ॥

[मदनाग्रेरिव धूमं मोहनविच्छिकामिव लोकेदृष्टे ।

यौवनध्वजमिव सुग्धा वदति सुगन्धं चिकुरभारम् ॥]

मोहनेति । अन्योऽप्येन्द्रजालिकः विच्छिक्त्वा मोहं करोतीति भावः ॥

१. 'रागस्थगितो' घ. २. 'प्रतिपदाचन्द्रः' घ. ३. 'आयास' घ. ४. 'वाचा किं भ-
लिष्यति' घ. ५. 'व' घ. ५. 'गृहीतात्र' घ. ७. 'गिरी' ख. ८. 'लोच्छायाः' ग-घ.

सखि, कथय तस्य रूपमिति पृच्छन्तीं सखीमन्या काचिदाहं—

रूपं सिद्धं चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।

वाहोहेण इमीए अजम्पमाणेण वि मुहेण ॥ ७३ ॥

[रूपं शिष्टमेव तस्मात्पुरुषे निवर्तिताक्षेण ।

वाण्यार्देणासा अजल्पतापि मुखेन ॥]

शिष्टमेव कथितमेव ॥

श्रियेण महू श्रीडारसादविदितनिशावसानां सखी प्रबोधयन्ती सखी प्रभात-
वर्णनमाह—

रुन्दारविन्दमन्दिरमअरन्दाणन्दिआलिरिञ्छोली ।

झणझणइ कसणमणिमेहल व्व महुमासलच्छीए ॥ ७४ ॥

[रुन्दारविन्दमन्दिरमकरन्दानन्दितालिपङ्क्तिः ।

झणझणायते कृष्णमणिमेखलेन मधुमासलक्ष्म्या ॥]

रुन्द वृक्षदरविन्दं तदेव मन्दिरं तत्र मकरन्देन पुष्परसेनानन्दितेक्षयः । उद्गोपन-
विभागेप्रतिपादनेन संकेतस्थानस्तुतिपरं दत्त्वा इदं वचनमिति केचित् ॥

जाताभिलापः कथिद्विलासी कामपि कामिनीमाह—

कस्स करो बहुपुण्यफलेकतरुणो तुहं विसम्मिहइ ।

थणपरिणाहे मम्महणिहानकलसे व्व पारोहो ॥ ७५ ॥

[कस्स करो बहुपुण्यफलेकतरोस्तत्र विप्रमिष्यति ।

स्तनपरिणाहे मन्मथनिधानकलश इव प्ररोहः ॥]

परिणाहो विशालता । विशालस्तन इत्यर्थः । पूर्वनिपातानियमात् । प्ररोहः पर्वव. ।
मन्मथनिधानकलशे तत्र स्तनपरिणाहे बहुपुण्यफलकतरोः कस्य करः प्ररोह इव विप्र-
मिष्यतीत्यन्वयः ॥

यो यच्छीलं यं तापायादधि तन्मात्मनो निवर्तयेत्तुं न शक्नोतीति निदर्शयमाण-
रिक्तः सहचरमाह—

चोरा सभअमैतहं पुणो पुणो पेसअन्ति दिट्ठीओ ।

अहिरकिरअणिहिकलसे व्व पोडवइआयणुच्छन्ने ॥ ७६ ॥

[चोराः समयसमृद्धं पुनः पुनः प्रेषयन्ति दृष्टी ।

अहिरक्षितनिधिकलश इव प्रीर्द्वैतिकान्मनोऽप्यङ्गे ॥]

श्रीः. शूरः पतिर्यस्यां. सा प्रौढरतिका । चोराः परस्त्रीहारकाः परस्वापहारकाश्च ।
तथा च सर्पप्रायोऽस्या पतिरन्मान्घातयिष्यतीति मया रप्रश्रुमसमर्था अपि साभिलाष
पश्यन्तीत्यर्थः ॥

प्रवासोन्मुखस्य कान्तस्य गमनप्रतिषेधाय कापि वर्षावर्णनच्छेदेनाह—

उद्ध्वहइ णवतणङ्कुरोमश्चपसाहिआइ अङ्गाइ ।

पाउसलच्छीअ पओहरेहिं परिपेह्णिओ जिञ्जो ॥ ७७ ॥

[उद्ध्वहनि नप्तृणाङ्कुरोमाश्चपसाधितान्वहानि ।

प्रावृत्लक्ष्म्या पयोधरै. परिप्रेरितो विन्ध्य ॥]

पयोधरैर्भैष्यै । अन्योऽपि कामुक कान्तया पयोधराभ्या स्तनान्यां परिप्रेरित स-
रोमाश्चमुद्ध्वतीनि चवि ॥

कोऽपि प्रियाया साभिलाषमन्यापदेशेन प्रशंतामाह—

आम बहला वणाली मुखला जलरङ्गुणो जल सिसिरम् ।

अण्णणईणं वि नेवाइ तह वि अण्णे गुणा के वि ॥ ७८ ॥

[सित्य बहला वणाली मुखला जलरङ्गुणो जल सिसिरम् ।

अन्यनदीनामपि रेवायास्तथाप्यन्ये गुणा केऽपि ॥]

आमेति स्त्रीकारे । बहला विस्तृता वनपङ्क्तिर्वेद्यादिस्थानीया । मुखला सशब्दा ज-
लरङ्गुण पङ्क्तिविशेषा नूपुरादिस्थानीया । सिसिर अलमङ्गमुखरपक्षस्थानीयम् । गुणा
गाम्भीर्यादय सौभाग्यादयश्च । अन्ये इतरविलक्षणाः । नायकप्ररोचनाय बहूना इयमु-
क्तिरिति वक्षित ॥

कोऽपि कस्याधिरसाभिलाष स्तनौ वर्णयन्सहचरमाह—

एह इमीअ णिअच्छह परिणअमालूरसच्छहे थणए ।

तुङ्गे सत्पुुरिस्समणोरहे व्व हिअए अमाअन्ते ॥ ७९ ॥

[आगच्छतस्मा निरीक्षध्व परिणतमालूरसदृशौ स्तनौ ।

तुङ्गौ सत्पुरुषमनोरैथाविव हृदये अमान्ती ॥]

मालूरो वित्त्व । प्राकृते द्विवचनबहुवचनयोरैक्यान्मनोरथानिवेल्यर्थः । अतएव व-
चनभेदनिबन्धन उपमादोषोऽप्यत्र नेति ध्येयम् । पूर्वबहूला उक्तिर्वा ॥

मेधागमस्य कामोदीपकतां सूचयन्ती कापि कान्तानयनाय सखी त्वरयितुमाह—

हत्थाहत्थि अहमहमिआइ वासागमम्मि मेहेहिम् ।

अव्वो किं पि रहस्स छण्णं पि णहङ्गण गलइ ॥ ८० ॥

१. 'आमबहुला' घ. २. 'एहि' क. ३. 'एतस्मा' ग. ४. 'रथा इव' घ.

विनाशहेतुमपि मुग्धाः सुखहेतुं वलयन्तीत्यन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—

तैम्मिरपसरिअहुअवहजालापलीविण वणाहोए ।

किंसुअवणन्ति कलिऊण मुद्धहरिणो ण णिकमइ ॥ ८८ ॥

[ताम्रवर्णप्रसृतहुतवहज्ज्वालालिप्रदीपिते वनाभोगे ।

किंसुकवनमिति कल्यित्वा मुग्धहरिणो न निष्क्रामति ॥]

अथ स्वतःसमविना भ्रान्तिमदलंकारेण परस्त्रीलम्पटः कथिद्विनाशहेतुमपि परस्त्री-
ससर्गं मुधाप्राप्यं मन्यमानस्तद्ग्रहाम नि.सरतीति वस्तु व्यज्यते ॥

कापि वारं प्रत्यात्मनो वैदग्ध्यं ख्यापयन्ती सखीमाह—

णिहुअणसिप्पं वैह सारिआइ उल्लाविअं म्ह गुरुपुरओ ।

जह तं वेळं माए ण आणिमो कत्थ वच्चामो ॥ ८९ ॥

[निधुवनशिल्पं तैथा शारिक्योल्लापितमस्माकं गुरुपुरतः ।

यथा तां वेलां मातर्न जानीमः कुत्र व्रजाम. ॥]

निधुवनशिल्पं सुस्तवैचिष्यम् । तां वेलां तस्मां वेलायाम् । 'कालकाव्यनोरत्यन्तसं-
योगे' इति सप्तम्यर्थे द्वितीया । न जानीम इति ग्रीशवशादिति भावः ॥

कापि नवयुवत्यनुरक्तचित्तं दान्तमन्यापदेशेनाह—

पच्चगाणुल्लदलुल्लसन्तमअरन्दपाणलेह्लओ ।

तं णत्थि कुन्दकलिआइ जं ण भमरो मइइ काउम् ॥ ९० ॥

[प्रत्यग्लोल्लदलोल्लसन्मकरन्दपाणलैर्ह्लओ ।

तन्नास्ति कुन्दकलिकाया यन्न भ्रमरो धाञ्छति कर्तुम् ॥]

नुम्व्रनादिकं सर्वं कर्तुमिच्छतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याधिकवयुवत्याः सौभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

सो को वि गुणाइसओ ण आणिमो मांमि कुन्दलइआए ।

अच्छोहिं धिअ पाउं अहिहस्सइ जेण भमरेहिम् ॥ ९१ ॥

[स कोऽपि गुणातिशयो न जानीमो भौतुलानि बुन्दलतिवायाः ।

अश्लिम्बामेव पातुमभिलष्यते येन भ्रमरैः ॥]

अन्यासां लतानां पुष्पं मुखैः पीयते, इयं तु स्तैवाश्लिम्बेभ्येत्युत्कर्षः ॥

१. 'अविरल' ग. २. 'अविरत' ग. 'तपनशीलहुतवह' घ. ३. 'तुह' ग. ४. 'तव'
ग घ. ५. 'असह' ग. ६. 'पाउम्' क. ७. 'लोलुपः' ग. 'लम्पटः' घ. ८. 'मइति'
ग. 'इच्छति' घ. ९. 'वातुम्' घ. १०. 'बहिनि कुन्दकलिआए' ग. ११. 'अदित-
जह' क-ग. १२. 'जानामि भगिनि कुन्दकलिवायाः' ग. १३. 'मातुति' घ.

नायरूपलोभनाय दूरी कम्पाधि सौन्दर्यातिशयमाह—

एष चिअ रूअगुणं गामणिधूआ समुव्वहइ ।

अणिमिसणअणो सअलो जीए देवीकओ गामो ॥ ९२ ॥

[एकैव रूपगुणं गामणीदुहिता समुद्रहति ।

अनिमिषनयनं सैरुलो यया देवीकृन्तो ग्रामः ॥]

न निमिषतीत्यनिमिषम् । अनिमिषं नयनं यस्य स । ग्रामस्थो जनोऽवलोकनीयु
धादेवा पर्यन्कोऽपि निमेषं न करोतीति भावः ॥

अधरपानाभिलापं सूचयन्कोऽपि सवैदग्ध्यमभियोज्यमाह—

मण्णे आसाओ चिअ ण पाविओ पिअअमाहररत्तस्स ।

तिअसेहिं जेण रअणाअराहि अमअं समुदरिअम् ॥ ९३ ॥

[मन्ये आस्ताद् एव न प्राप्तं प्रियतमाधरसंगस्य ।

निदर्शयेन रत्नाकरादमृतं समुद्धृतम् ॥]

प्राणालयहेतुरपि न तथा व्यथयति यथा प्रियविरह इत्यन्यापदेशेन स्नेहसिद्धार्थं को
ऽपि प्रियमाह—

आअण्णाअड्ढिअणिसिअभैल्लमम्माहआइ हरिणीए ।

अइसणो पिओ होहिइ त्ति वल्लिउ चिर दिट्ठो ॥ ९४ ॥

[आकर्णाकृष्टनिशितर्भल्लममाहृतया हरिण्या ।

अदर्शनं प्रियो भविष्यतीति वैलित्वा चिरं दृष्ट ॥]

न वियते दर्शनं यस्येयदर्शनं । दर्शनागोचरं इति यावत् । 'दुइसण' इति कवि-
त्पाठः । तत्र दुर्दर्शनो दुर्लभदर्शन इत्यर्थः ॥

कस्यचिदाशं शौर्यं दयापयन्ती सेवाकुशला श्री रात्रानमुद्दिश्याह—

विसमट्ठिअपिकेक्कम्पदसणे तुज्झ सत्तुपरिणोए ।

को को ण पत्थिओ पडिआण डिम्भे रुअन्तम्मि ॥ ९५ ॥

[विषमस्थितपक्केकाअदर्शने तव शत्रुगृहिण्या ।

क्व को न प्रार्थितं पथिकानां डिम्भे रुदति ॥]

डिम्भे बालके रुदति सति तव शत्रुगृहिण्या पथिकानां मन्ये क को न प्रार्थितः ।

१ 'सूआ गहवडणो अहिलत्तण' ग २ 'सुतागृहपतेर्महिलात्वं' ग, 'रूपगुणा' घ.
३. 'सर्वो' ग. ४. 'भद्रसमुदाहयाइ' ग ५ 'दुइसणो' ग. ६. 'भद्रसेमुदाहृतया' ग.
७ 'वलित' घ. ८ 'बालके' ग

अपि तु सर्व एवेत्यर्थः । अथमाशयः — वदाममनशश्चासत्तत्वेपधुस्तत्तितचरणसंचारम
शपपरिवारे विहाय बालकमादाय तव शत्रुविलासिनी महारण्य प्राविशत् । तत्र च घन
घनायमानघनच्छदच्छायतदनिकरनिराकृतदिनकरोत्करदशामाश्रिते बर्त्मनि गच्छती
शुपीडितस्य बालकस्याकन्दितमौकल्य निपुणतरं निरीक्षमाणा विषमशायाः तगतम
वमाघफलमद्राक्षीत् । तत्पातनार्थं च पा धानयाचतेति ॥

कोऽपि सौन्दर्यादिगुणयुक्ता मालाकारस्त्रिय साभिलाप पर्यसहचरमाह—

मालारी ललितलुलिअवाहुमूलेहि तरुणहिअआइ ।

उड्डरइ सज्जुद्धरिआइ कुसुमाइ दवेन्ती ॥ ९६ ॥

[मालाकारी ललितोललितबाहुमूलाभ्या तरुणहृदयानि ।

उड्डुनाति सैधोऽवलुनानि कुसुमानि दर्शयन्ती ॥]

मालाकारी मालाकारस्त्री । ललितान्ध्या सुन्दरान्ध्यामुल्लिखितान्ध्या चक्षुरान्ध्या बाहुमू
लाभ्यामुपलक्षिता । उड्डुनाति व्याकुलीकरोति ॥

कोऽपि व्याधस्त्रिया स्वनोद्वम साभिलाप वणयसहचरमाह—

मज्झो पिओ कुअण्डो पड्डिनुआणा सवत्तीओ ।

जह जह वड्डन्ति थणा तह तह झिज्जन्ति पञ्च वाहीए ॥ ९७ ॥

[मध्य प्रिय कुटुम्ब पत्नीयुवान सपत्न्य ।

यथा यथा वर्धते सभौ तथा तथा क्षीयन्ते पञ्च व्याध्या ॥]

व्याध्या व्याधस्त्रिया ॥

यो वदमिलायुक्तः स च्छलेनापि स(तत्)कार्यं साधयतीति निदर्शय-कोऽपि सह
चरमाह—

मालारीए वेह्णहलवाहुमूलावल्लोअणसअहो ।

अलिअ पि भमइ कुसुमगघपुच्छिरो पमुल्लुआणो ॥ ९८ ॥

[मालाकार्या सुन्दरबाहुमूलावल्लोकनसवृण ।

अलीकमपि भ्रमति कुसुमार्घप्रपन्नशील पामुल्लयुवा ॥]

पामुल्ल परस्त्रीरम्पट । अर्घो मूल्यम् । वेह्णहल इति सुन्दरार्थे देशी ॥

खस्मृतपूर्ववृत्तमुरतसंवेतस्यानादिक तवाह न कोऽपीति वदत नायक कापि सोप
लम्भमाह—

अकअण्णुअ घणवण्ण घणवण्णन्तरिअतरणिअरणिअरम् ।

जइ रे रे वाणीर रेवाणीर पि णो भरसि ॥ ९९ ॥

१ मालाकारस्त्री ग २ 'व्याकु'यति ग ३ 'मध्यस्थितानि घ. ४ 'ददती
ग ५ कुसुममूल्यप्रपन्नशील' ग, कुसुमार्घपृच्छाशील घ.

[अवृत्तञ्च घनवर्णं घनवर्णान्तरिततरणिकरनिकरम् ।

यदि रे रे वानर रेवानीरमपि न स्मरति ॥]

घनवर्णं मेघश्यामम् । घनैर्निविडैः परैरन्तरित आच्छादितस्तरणिकरनिकरः सूत्र-
रितिसमूहो येनेति वानीरविशेषणम् । रे रे इति साक्षेपसंज्ञाधनम् । वानीर वेतसकुञ्ज यदि
न स्मरति तर्हि वा स्मर । रेवाया नर्मदाया नीरं जलमपि कथं न स्मरसीत्यर्थः ॥

कापि गृहपतिमुना हलिकमुतानुरागं विरहवैधुर्यं च प्रतिपादयन्ती हलिकमुतोपाल-
म्भपुर सरमाह—

मन्दं पि ण आणइ हलिअणन्दणो इह हि उड्डुगामम्मि ।

गहवइमुआ विघज्जइ अवेज्जए कम्म साहामो ॥ १०० ॥

[मन्दमपि न जानाति हलिकनन्दन इह हि दाघयामे ।

गृहपतिमुता विपद्यतेऽन्यथैव कस्य कथयाम् ॥]

मन्दमन्वल्पमपि । अवैद्यके वैद्यरहिते । हलिकपुत्रनिमित्तममन्दपञ्चरात्राणप्रहारज-
नैरितहृदया प्राणनीकुता विपद्यते । इतिरपुत्रश्च पशुकृत्पः । अतः कस्य कथयामी-
त्यर्थः ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहमुकइणिम्मइए ।

सत्तसअम्मि समत्तं सट्ट माहासहं एअम् ॥

[रसिअजनहृदयदयिते कमिस्सल्लप्पमुहमुकविनिमित्ते ।

सप्तशतके समस्त पञ्च माहाशतकमेतत् ॥]

सप्तमं शतकम् ।

पशुइन्द्रस्याप्येवमन्योन्यानुरागो न पुनस्त्यजेति वृत्ती मन्दस्नेह नाशरमुपालम्भमन्या-
पदेनेनाह—

एक्कमपरिरक्खणपहारसमुहे कुरङ्गमिहुणम्मि ।

वाहेण मण्णुविअलन्तवाहधोअं धणुं मुक्कम् ॥ १ ॥

[अन्योन्यपरिरक्षणप्रहारसमुहे कुरङ्गमिशुने ।

ध्याधेन मन्थुनिर्गोलद्वाणधौत धनुर्मुक्कम् ॥]

प्रहारसमयेऽन्योन्यस्य परिरक्षणार्थं कुरङ्गमिशुने समुहे स्थिते सति मन्थुना दैन्येन
निर्गोलन्यो बाणस्तेन धौत प्रक्षालित धनुर्व्याधेन मुक्कम् । त्यक्तमित्यर्थः । 'मन्थुर्दैन्ये
वृत्ती वृत्ति' इति हेमचन्द्रः ॥

१ 'सुत' ग. २. 'अवैद्ये' ग. ३. 'एककम्' ग. घ. ४. 'प्रसङ्गात्' ग.

मन्दभेद नायकमनुकूलयितुं दत्ती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

ता सुहृअ विलम्ब खण भणामि कीअ वि कएण अलमह वा ।

अविआरिअकज्जारम्मआरिणी मरउ ण भणिस्सम् ॥ २ ॥

[तत्सुभग विलम्बस्व क्षण भणामि कस्या अपि कृतेनालमथ वा ।

अविचारितकार्यारम्भकारिणी त्रियता न भणिष्यामि ॥]

तेषां काचिद्भूतुं प्रामव्यापारिकमद्विलानुरागं सूचयन्ती सखीमाह—

भोइणिदिण्णपहेणअचक्खिअदुस्सिक्खिअओ हलिअउत्तो ।

एत्ताहे अण्णपहेणआणँ छीवोहअ देई ॥ ३ ॥

[भोगिनीदत्तप्रहेणकास्वादनदुःशिक्षितो हलिकपुन ।

इदानीमन्यप्रहेणकानां छी इति वचनं ददाति ॥]

भोगिनी प्रामव्यापारिकस्त्री । तया दत्तानि यानि प्रहेणकानि मोदकादिवायनकानि तेषां चवखणमास्वादनेन तेन दुःशिक्षित । 'प्रहेणकं वायनकम्' इति शारावली । छी इति निन्दानुकरणं लोके प्रसिद्धम् ॥

अज्ञातरत्नविरामा क्रीडाप्रसक्ता सखीं प्रबोधयितुं कापि प्रभातं वर्णयति—

पञ्चूसमऊहावलिपरिमलणसमूससन्तवत्ताणम् ।

कमलाणँ रअणिविरमे चिअलोअसिरी महम्महइ ॥ ४ ॥

[प्रत्युषमयूखावलिपरिमलनसमुच्चुसत्पत्राणाम् ।

कमलानां रत्नविरामे जितेश्लोकश्रीर्महमहायते ॥]

प्रयूषे या मयूखावलिर्थादादित्यस्य । पञ्चूहशब्द आदित्यवचनो देशीति कश्चिद् । जिता लोका यया सा तया । जीवलोकश्रीरिति वाच्यं । महमहायतेऽतिमुरभिर्भवतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याधिपरिहासव्याजेन सौभाग्यस्तुतिमाह—

वाउठ्वेलिअसाउलि थएसु पुडदन्तमण्डल जहणम् ।

चडुआरअ पइ मा हु पुत्ति जणहासिअ वुणसु ॥ ५ ॥

[वातोद्वेलितवस्त्रे स्वगयं स्पृष्टदन्तमण्डलं जघनम् ।

चटुकारकं पतिं मां सल्लु पुनर्जनहासं कुरु ॥]

जनैर्हस्यत इति जनहासः । जनहासास्तदमित्यर्थः । माउलीति वस्त्रवाचको देशी ॥

१ 'भणिष्ये' ग घ. २ 'मोदकभक्षण' घ. ३ 'एतावताशेषप्रहेणकानां मुखं विधूतनं ददाति' ग, 'इदानीमन्यमोदकानामक्षि विकारं ददाति' घ. ४ 'छीवोक्त्वा मुखविकारं' इति कुलवाल्देव. ५. 'जीवलोकश्री' ग, 'आमोदश्री' घ. ६ 'प्रिय' ग. ७ 'जनहसितं' ग.

कामुक्जवावकाशनिरासाय दूती वक्त्रा पूर्ववृत्तान्यथाभावमाह—

वीसत्यहसिअपरिसक्किआण पढम जलखली दिण्णो ।

पच्छा वहुअ गहिओ खुडम्बमारो णिमज्जन्तो ॥ ६ ॥

[विषम्वहसितपरिक्रमाणा प्रथम जलाञ्जलिर्दत्त ।

पश्चाद्वक्त्रा गृहीत कुटुम्बमारो निमज्जन् ॥]

परिशक्ति परिक्रमणम् । कुटुम्बमारानुरोधाद्विषम्वहसितादिरूप चायत्नं त्यक्त-
मिति भावः ॥

कापि सख्या सपरिहास सौन्दर्यप्रशस्त्रामाह—

गम्मिहिसि तस्स पास सुन्दरि मा तुरअ वहुउ मिअक्को ।

हुद्धे हुद्ध मिअ चन्दिआइ को पेच्छइ सुह दे ॥ ७ ॥

[गमिष्यति तस्य पार्श्वं सुन्दरि मा त्वरस्य वर्धतां मृगाङ्ग ।

दुग्धे दुग्धमिव चन्द्रिकाया क प्रेक्षते शुभ ते ॥]

कापि ग्रामणीपुत्र प्रलसुरागातिशय सूचयन्ती समानशीलां मातुलानीमाह—

जइ जूरइ जूरउ णान मामि परलोअवसणिओ लोओ ।

तह वि बला गामणिणन्दणस्स वअणे बलइ दिट्ठी ॥ ८ ॥

[यदि खिद्यते खिद्यता नाम मातुलानि परलोकव्यसनिको लोकः ।

तथापि बलाद्ग्रामणीन दनस्य वदने बलते दृष्टिः ॥]

नायिकाया वनुरागातिशय प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

गेह व वित्तरहिअ णिज्जरकुहर व सलिलसुण्णविअम् ।

गोहणरहिअ गोट्ट व तीअ वअण तुह विओए ॥ ९ ॥

[गृहमिव वित्तरहित निर्जरकुहरमिव सैलिलशून्यम् ।

गोधनरहित गोष्ठमिव तस्या वदनं तत्र वियोगे ॥]

न शोभत इति शेषः ॥

कस्याधिलब्धवापारतन्त्र्यमनुरागातिशय च प्रतिपादयती दूती नायकमाह—

तुह दसणेण जणिओ हमीअ लज्जाउलाइ अणुराओ ।

दुग्गअमणोरहो बिअ हिअअ थिअ जाइ परिणामम् ॥ १० ॥

१ 'विषम्वहसितपरिक्रिस्तावा' ग, 'विभस्तहसितपरिशक्तितावा' घ. २ 'खि-
द्यति खिद्यतु नाम भविनि' ग, 'कुप्यति कुप्यतु नाम मातुलि' घ. ३ 'सलिलशून्य-
कृतम्' ग.

[तव दर्शनेन जनितोऽस्या लज्जातुकाया अनुरागः ।

दुर्गतमनोरथ इव हृदय एव याति परिणामम् ॥]

लज्जावशात्कुत्रापि न वदतीत्यर्थः ॥

किमिति कृशासीति विदेशादागत्य हासपूर्वकं पृच्छन्तं कान्तं प्रति नायिकाया उक्ति-
दोशालं कापि सखीशिक्षार्थमाह—

जं तणुजाअइ सा तुह कएण किं जेण मुच्छसि हसन्तो ।

अह गिम्हे मह पअई एव्वं भणिऊण ओरुण्णा ॥ ११ ॥

[या तन्नूयते सा तव कृतेन किं येन पृच्छसि हसन् ।

असौ ग्रीष्मे मम प्रवृत्तिरिति भणित्वारुदिता ॥]

या महिला तन्वी भवति सा सर्वा त्वन्निमित्तमिति नियमो नास्तीत्यर्थः । किन्तिमितं
तर्हि तव कारणं तत्राह—असाविति । अह इत्यसावित्यर्थे देशी ॥

अविच्छिन्नप्रियाल्लिङ्गनाभिलाषमहमनः प्रकाशयन्ती काप्यन्यापदेशेन वदन्नमाह—

वण्णवमरदिअस्स वि एस गुणो णवरि चित्तकम्मस्स ।

णिमिस्स पि जं ण मुञ्चइ पिओ जणो गाढमुवऊढो ॥ १२ ॥

[वर्णक्रमरहितस्याप्येष गुणः केवलं चित्तकर्मणः ।

निमिषमपि यत्र मुञ्चति प्रियो जनो गाढमुपगूढः ॥]

वर्णक्रमो हरितपीतादिवर्णविन्यासः । चित्रकर्मण आलेह्यस्य । चित्रे प्रिययोपगूढः

प्रियः प्रियां क्षणमपि न मुञ्चतीत्यर्थः । यद्वा वर्णक्रमो गुणविशुद्धिपरम्परा तद्वदितस्य ।

चित्रस्य विचित्रस्य कर्मणः । धर्माधर्मादिरूपस्येत्यर्थः । आत्मा धर्माधर्मादिक क्षणमपि

न मुञ्चतीत्यर्थः । केचित्तु प्राज्ञाणादिवर्णक्रमरहितस्यापि चित्तभग्मणो चित्तजन्मनो

मन्मथस्यायं कोऽपि गुणो येन प्रियः प्रियो क्षणमपि न त्यजतीत्यर्थ इति व्याचक्षते ॥

कोमलं नवोदामविदग्धः कोऽपि रमयतीत्यन्यापदेशेन कापि सखीमाह—

अविहत्तसंधिवन्धं पदमरमुब्भेअपाणलोहिहो ।

उब्भेलिउं ण आणह खण्डइ कलिआमुहं भमरो ॥ १३ ॥

[अविमत्तसंधिवन्धं प्रथमरसोद्रेदपानर्तुब्धः ।

उद्वेलितुं न जानाति खण्डयति कलिकामुखं भ्रमरः ॥]

अत्र कलिकाममुपवृत्तान्तव्याजेनामुद्विन्नवय-संधि नायिकामविदग्धः कोऽप्युपनो-

१. 'लज्जालो.' ग, 'लज्जावल्या.' घ. २. 'तन्वीभवति' ग. ३. 'कृते' ग-घ.
४. 'अय' ग, 'एया' घ. ५. 'एव्वं भणित्वा रोदितुं तस्मा' ग. ६. 'चित्तभग्मस्त'
ग. ७. 'चित्तजन्मनः' ग. ८. 'ओनिष्ठ.' ग, 'ओपदान्' घ. ९. 'उद्वेलयितु' ग.

कुमिच्छन्ति । न च जानाति केवलं पीडयतीति वस्तु व्यन्यते । उद्वेहितुं विक्षापयि-
शम्, पक्षे संसुखीकर्तुम् ॥

विपरीतरताय प्रियामुत्साहयितुं कथिदाह—

दरवेविरोरुजुअलासु मउलिअच्छीसु लुलिअचिहुरासु ।

पुरिसाइरीसु कामो पिआसु सज्जाउहो वसइ ॥ १४ ॥

[ईषेद्वेपनशीलोरुजुगलासु मुकुलिताक्षीषु ललितचिहुरासु ।

पुरुषायितशीलासु कामः प्रियासु सज्जायुषो वसति ॥]

ममाप्रियं कर्तुं नाईसीति वदन्तं वान्तं मानिनी तोदयमाह—

जं जं ते ण सुहाअइ तं तं ण करेमि जं ममाअत्तम् ।

अहअं चिअ जं ण सुहामि सुहअ त किं ममाअत्तम् ॥ १५ ॥

[यद्यत्ते न मुखायते तत्तन्न करोमि यन्ममायत्तम् ।

अहमेव यत्त मुखाये सुगम तत्किं ममायत्तम् ॥]

न मुखाये न मुखायामि ॥

कथालापय प्रियं समुत्साहयितुं कुलटा लज्जास्वभावमाह—

वावारविसंवाअं सअलावअवाणं कुणइ हअलज्जा ।

सवणाणं उणो गुरुसंणिहे वि ण निरुब्झइ गिओअम् ॥ १६ ॥

[व्यापारविसंवाद सवलावयवाना करोति हतलज्जा ।

श्रवणयो पुनर्गुरुसंनिधावपि न निरुब्ध निर्योगम् ॥]

विसंवादो व्यापातः । नियोगो व्यापारः । त्वदासक्ततया नेत्रादिव्यापारः सर्व ए
विसंवादं प्राप्तः । केवलं श्रुश्रुदिसनिधावपि त्वत्कथाश्रवणे श्रवणी व्यापारयतीति ना
यक प्रति दूतीवचनमिदमिति कथितम् ॥

आगतप्रायस्ते प्रेयानिति सखीभिराश्वासिता प्रेषितमर्तुका सनिर्वेदमाह—

किं भणह मं सहीओ मा मर दीसिइइ सो जिअन्तीए ।

कज्जालाओ एसो सिणेहमग्गो ऐण ण होइ ॥ १७ ॥

[किं भणथ मा सख्यो मा म्रियस्व द्रक्ष्यते स जीवन्त्या ।

कार्यालाप एष खेदमार्गं पुनर्न भवति ॥]

भवतीभिर्वदुच्यते तत्कार्यपर्यालोचनयानुष्ठातुं शक्यते । न च क्षेत्रः कार्यं पर्यालोच-
यतीत्यर्थः ॥

मन्दस्नेहं निष्करणं च नायकमुपालब्धुमन्यापदेशेन काचिशह—

एकलमओ दिट्ठीअ मइअ तह पुलइओ सअहाए ।

पिअजाअस्स जह, धणुं पडिअं वाहस्स हत्थाओ ॥ १८ ॥

[एकाकी मृगो दृष्ट्वा मृग्या तथा प्रलोकितः सतृष्णया ।

प्रियंजायस्य यथा धनुः पतितं व्याधस्य हस्तात् ॥]

मृग्याश्चधुर्निभालनेनाभीयप्रियाविलोचनमनुस्मरतो व्याधस्य हस्तप्रकरणया धनुः
पतितमित्यर्थः । अतिपामरस्य द्विषस्य व्याधस्याप्येवं कष्टा स्नेह, ननु तवेति
भावः ॥

नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती चलदृत्तं नक्षत्रमन्यापदेशेन सोपा-
लम्भमाह—

पैलिणीमु भमसि परिमलसि सत्तलं मालई पि णो मुअसि ।

तरलत्तणं तुह अहो महुअर जइ पौडला हरइ ॥ १९ ॥

[नैलिनीपु भ्रमसि परिमृद्वासि सत्तलां मालतीमपि नो मुषसि ।

तरलत्वं तनाहो मधुकर यदि पौडला हरति ॥]

‘सत्तला नवमालिका’ इत्यमरः । कस्याचिच्छिष्टे भ्रमस्येव काचित्पीडयत्येव का-
चिद्वचनमात्रेण संभावयति । एतच्च तत्र चाश्लयं पाटलवर्णा सैवापहर्तुं समर्था ना-
न्येति भावः ॥

कामुक्जनप्रलोकनाय दूती नायिकायाः स्तनौ वर्णयति—

दोअहुलअरुवालअविणद्धसविसेसणीलरुअइआ ।

दावेइ थणात्थलवणिअं व तरुणी जुअजणाणम् ॥ २० ॥

[द्विषहुलककपाटकपिनद्धसविशेषनीलकण्ठशुक्रिका ।

दर्शयति स्तनस्थलवर्णिकामिव तरुणी युवजनेभ्यः ॥]

बहुलपरिमितं रुचिबन्धस्थले कपाटवत्कार्यद्वये यद्ववति तत्कपाटकम् । तेन पि-
नद्धो नीलकण्ठो यस्याः सा । तथा च तत्र स्तनैकदेशदर्शनाद्वर्णिकामिव दर्शयतीत्यु-
त्प्रेक्षा । वस्तुपरीक्षार्थं यद्वस्त्वैकदेशप्रदर्शनं तद्वर्णिकेत्युच्यते ॥

१. ‘एकाकिमृगो’ घ. २. ‘प्रियजानेतिव्युचितम्’. ३. ‘कमलेषु’ ग. ४. ‘इ-
त्यपाडला’ ख. ५. ‘कमलेषु’ ग. ६. ‘कपित्थपाटला’ घ. ७. ‘बहुलकृतजालक’
घ. ८. ‘कमुका’ ग. ९. ‘यून.’ ग, ‘यूनाम्’ घ.

प्रतीकारोऽपि क्वचिदपकाशय मवतीति विदर्शयन्काधितस्यायमाह—

रक्तेऽ पुत्तअं मत्थएण ओच्छोअअं पडिच्छन्ती ।

अंसुहिं पडिअपरिणी ओद्धिज्जन्तं ण लक्खेइ ॥ २१ ॥

[रक्षति पुनकं मस्तकेन पैटलप्रान्तोदकं प्रैतीच्छन्ती ।

अथुभिः पथिकगृहिणी आर्द्राभवन्त न लक्षयति ॥]

ओच्छोअअ इति च्छदिप्रान्तजलार्धको देशीशब्दः । प्रतीच्छन्ती गृह्णती ॥

सरस्तीरस्य पथिकाकान्तरदेन सचेतस्थानमहं जारं श्रावयन्ती वापि शरद्वर्णनच्छे-
नाह—

सरए सरम्मि पडिआ जलाइँ कन्दोदसुरदिगन्धाइँ ।

धवलच्छाइँ सअक्का पिअन्ति दइआणँ व मुहाइँ ॥ २२ ॥

[शरदि सरसि पथिका जलानि नीलोत्पलसुरभिगन्धीनि ।

ध्वलाच्छानि सतृष्णा विदन्ति दयितानामिव सुखानि ॥]

कन्दोद नीलोत्पलम् । तेन सुगन्धीनि । पक्षे तद्वासुगन्धीनि । धवलानि च तान्य-
च्छानि च । पक्षे धवलाक्षाणि । धवलनयनानीत्यर्थः । सतृष्णा. सपिपासा । पक्षे सा-
भिलाषा ॥

षट्समयादनागच्छन्तं नायकं प्रति द्यूतीमार्गस्य शुभमलप्रतिपादनच्छेतेन नायि-
काया अतुरागातिशय प्रतिपादयन्ती आह—

अवभन्तरसरसाओ लवहिं पक्खाअवद्धपक्काओ ।

चङ्कम्मन्तम्मि जणे समुस्ससन्ति व्व रच्छाओ ॥ २३ ॥

[अभ्यन्तरसरसा उपरि प्रवातवद्धपक्का ।

चङ्कममाणे जने समुच्छसन्तीव रैथा ॥]

प्रवातेन प्रवृद्धवातेन बद्धः पक्षो वायु ताः । अत्र समासोपलब्धकारेण प्रवातप्रायशु-
दजनमभयेनोपरि हृष्टत्वेऽभ्यन्तरतुरक्तत्वं नायिकाया व्यज्यते ॥

पिष्टवक्त्रणावकीर्णौ कस्याबिलसूनी साभिलाषं वर्णयन्नागरिकः सहचरमाह—

मुहपुण्डरीअछाआइ संठिआ उअह राअहंसे व्व ।

छणपिट्ठुसुट्ठुण्णच्छलिअधूलिधवले धणे बहइ ॥ २४ ॥

१. 'अच्छोदकं' ग घ. २. 'प्रतीक्षमाणा' घ. ३. 'वमल' घ. ४. 'धवलानि'
५. ६. 'आज्ज्वाअवद्धपक्का' ग, 'पिष्टवक्त्रदण्डा' घ. ७. 'चङ्कमसि' ग. ८. 'प-
णन' ग. .

[मुखपुण्डरीकच्छायाया सस्थितौ पश्यत राजहंसाविव ।
क्षणपिष्टकुट्टनोच्छलितधूलिधवलौ स्वनौ वहति ॥]

क्षण उत्सवः ॥

कयोश्चिदन्योन्यासुरागं प्रकटयन्नागरिकः स्ववैदग्ध्यव्यापनार्थमाह—

तह तेणवि सा दिट्ठा तीज वि तह तरुस पेसिआ दिट्ठी ।

जह दोण्ह वि समअं चिअ णिव्वुत्तरआइं जाआइं ॥ २५ ॥

[तथा तेनापि सा दृष्टा तथापि तथा तैस्त्रै प्रेषिता दृष्टिः ।

यथा द्वौवपि सममेव निर्बृत्तरतौ जातौ ॥]

सममेव एककालमेव ॥

जारं प्रत्यभिसाररक्षिकता सूचयन्ती बुलटा ग्रीष्मवर्णनमाह—

चाउलिभापरिसोसण कुंडलपत्तलणसुलहसंकेअ ।

सोहृगगकणअकसवट्ट गिम्ह मा कह वि झिजिहिसि ॥ २६ ॥

[स्वल्पस्वातिदापरिशोषण निकुञ्जपत्रवरणसुलभसवेत ।

सौमान्यकनकवपट्ट ग्रीष्म मा कथमपि क्षीणो भविष्यसि ॥]

चाउलिआशब्द स्वल्पस्वातिकाया देशी । स्वल्पस्वातिकाना परिशोषणेन निकुञ्जानां
पत्रसपत्न्या च सुलभ* संकेतो यत्र स तथेति ग्रीष्मसंबोधनम् ॥

दुर्जनसंसर्गादुद्दिग्गं गुणशालिनं विदग्धा काप्यन्यापदेशेन प्रवृत्तिपाटवार्थमाह—

दुसिसक्खिअरअणपरिक्खएहिं चिट्ठोसि पत्थरे तावा ।

जा तिलमेत्त वट्टसि मरगअ का तुज्झ मुल्लकहा ॥ २७ ॥

[द्वि शिक्षितरत्नपरीक्षकैर्धृष्टोऽसि प्रस्तरे तावत् ।

यावत्तिलमात्र वर्तसे मरकत का तत्र मूलकया ॥]

द्वि शिक्षितो अतत्त्वज्ञा दुर्बिदग्धाश्च । अहं स्वविशयितव्युत्पन्ना सर्वे तत्त्व जानामीति
भावः ॥

पल्लीनिवासिन्या विलासिन्या दूती पल्लीमहशब्दयानागच्छन्तं तत्त्वान्तं तत्समीपगम-
नायोत्साहयितुमाह—

जैह चिन्तेइ परिअणो आसक्कुइ जह अ वस्म पडिवक्खो ।

घालेण वि गामणिणन्दणेण सैह रक्खिआ पल्ली ॥ २८ ॥

१. 'वन' घ. २. 'तरु' घ. ३. 'द्वयोरपि सममेव निर्बृत्तरतानि जातानि' घ.

४. 'णिउज्ज' ख. ५. 'वापिका' घ. ६. 'क्षयिष्यसि' घ. ७. 'तह' ग. ८. 'तह'

नास्ति.

[यथा चिन्तयति परिजन आशङ्कते यथा च तस्य प्रतिपद्यः ।

मालेनापि ग्रामणीनन्दनेन तेषां रक्षिता पत्नी ॥]

कथमनेन बालेन रक्षा कर्तव्येति परिजनचिन्तयति । बालोऽयमस्माभिर्प्राङ् इति प्रतिपद्यन्ति यतीत्यर्थः ॥

पतुर्विक्रमशुण व्यापयन्ती व्याधवधू पृषतचर्मं पृच्छन्त पथिकमाह—

अण्णेषु पदिअ पुच्छसु वैहअपुच्छेषु पुसिअचन्माइ ।

अम्ह वाइजुआणो हरिणेषु घणुं ण णामेइ ॥ २९ ॥

[अन्येषु पथिक पृच्छ व्याधकपुत्रेषु पृषतचर्मणि ।

अस्माक व्याधयुवा हरिणेषु घनूर्न नामयति ॥]

पृषतो मृगविशेषः । 'गोवर्णपृषतैष्यरोहिताश्वमरो मृगाः' इत्यमरः । प्रचण्डदोर्दण्ड-
यलमदोहोऽय कथयथा मृगाश्च इन्ति । किंतु मत्तमातङ्गानिति भावः ॥

वधू प्रति वामुया व्याधमाता वन्धुजनमाह—

गजवहुवेह्वअरो पुत्तो मे एककण्डविणिघाई ।

तह सोह्माइ पुँछइओ जह कण्डवरण्डअ वहइ ॥ ३० ॥

[गजवधूवैधव्यकर पुत्रो मे एककाण्डविनिपाती ।

तथा क्षुपया प्रैलेरितो यथा बाण्डसमूह वहति ॥]

'विण्डिओ' इति कचित्पाठः । तत्र विलङ्घित शोषित इत्यर्थः । वरण्डक समूहः ।
अयमर्थः—पूयमसौ मत्पुत्र एवैवैव शरेण मत्तमातङ्गाहरवा तद्वधूना वैधव्य कृतवान् ।
सप्रति वधूतक्त शरसमूहमेव वहति, नतु किमपि कर्तुं क्षम इत्यर्थः ॥

ग्रामणीभार्या शत्रु विजित्य सङ्ग्रामादागतस्य शत्रुभित्तस्य भर्तुर्मनस्विनो मानवला-
निध्रवणाभरणमाशङ्कमाना तन्निवारणाय परिजनमाह—

विब्बहारुहणालाव पत्ती मा कुणउ ग्रामणी ससइ ।

पच्चजिविओ जइ कह वि सुणइ ता जीविअ मुअइ ॥ ३१ ॥

[विन्ध्यारोहणालाप पत्नी मा करोतु ग्रामणी अस्मिति ।

प्रत्युज्जीवितो चेदि कथमपि शृणोति तज्जीवित शुचति ॥]

पत्नीनिवर्तितो भयादिभ्यारोहणकथां मा करोतु । अस्मिन्जीवति कुतो भयमिति

१ 'तथा' घ. २ 'तथा' घ पुस्तक नास्ति ३ 'वाइकुडम्बेसु' घ ४ 'व्याधकु-
डम्बेसु' घ ५ 'विल्लिओ' घ ६ 'विनिपाती' घ. ७ 'विल्लितो' घ, विक-
तो घ. ८ 'काण्डक' घ. ९ 'यथा' घ.

भाव । श्रुतिरिति जीवति । प्रत्युज्जीवितः प्रत्यागतप्राणो यदि शृणोति तदा पक्षीनिवासि-
जनपलायनश्रवणजातमानभक्तो जीवितमेव जह्यादित्यर्थः ॥

यो यस्य स्निग्धः स म्रियमाणोऽपि तस्य हितमेवोपदिशतीति निदर्शयन् कोऽपि सह-
चरमाह—

अप्याहेह मरन्तो पुच्छं पल्लीवई पअत्तेण ।

मह णामेण जह तुमं ण लज्जसे तह करेज्जासु ॥ ३२ ॥

[शिक्षयति म्रियमाणः पुत्रः पल्लीपतिः प्रयत्नेन ।

मम नाम्ना यथा त्वं न लज्जसे तथा करिष्यमि ॥]

अप्याहेह शिक्षयति सदृशतीति वार्थः । यः खलु निर्गुणो भवति सोऽयुक्तस्य पुत्रो-
ऽयमिति व्यपदिश्यते पूज्यते चेति नाम्नो लज्जाहेतुत्वम् । गुणवास्तु स्वपौरुषेणैव ह्यतो
भवतीति भावः ॥

धनुकुले विधावमङ्गलान्यपि मङ्गलानि भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सखायमाह—

अणुमरणपत्तिआए पञ्चागअजीविए पिअअमम्मि ।

वेहव्वमण्डणं कुलवहूअ सोहग्गअं जाअम् ॥ ३३ ॥

[अनुमरणप्रसितायाः प्रत्यागतजीविते म्रियतमे ।

वैद्यव्यमण्डनः कुलवधूः सौभाग्यकः जातम् ॥]

दन्तचिह्नं दृष्ट्वा परासीसङ्गशङ्काः पशुकल्पानां पामरीणामपीर्ष्या भवति निरपराधे
पत्नौ, किं पुनरस्या महाकुलीनायाः शीलादार्योद्दिगुणसंपन्नायाः सापराधे त्वयि । अत्र
पादयोः पतित्वेना प्रसादयेत्तनुनयविमुखः नायकः प्रति दृष्ट्वाह—

महुमच्छिआइ दट्ठं दट्ठूण सुहं पिअस्स सूणोठ्ठम् ।

ईसाळुई पुलिन्दी रुक्खच्छाअं गआ अण्णाम् ॥ ३४ ॥

[मधुमक्षिकया दष्टं दृष्ट्वा मुखं शिथिलोच्छूनोष्ठम् ।

ईर्ष्यालुः पुलिन्दी वृक्षच्छायां गतान्याम् ॥]

पत्न्या सह कृतकल्हा सा त्वत्समागमाभिवापिणी तिष्ठतीति जारं प्रति दृष्ट्वा इयमु-
क्तिरिति वक्षितः ॥

गिरिग्रामप्रवेशाच्छेनासती जारं प्रति खच्छन्दाभिसारस्पृहामाह—

धण्णा वसन्ति णीसङ्गमोहणे बहलपत्तलवैइम्मि ।

वाअन्दोलणओणविअवेणुगहणे गिरिग्गामे ॥ ३५ ॥

[धन्या वसन्ति नि शङ्कमोहने बहलपत्रलघुर्तौ ।

वैतान्दोलनावनामितवेणुगहने गिरिप्रामे ॥]

नि'शङ्क मोहन मुरत यन स । तथा बहलैरुचतरै पत्रलै पत्रबहुलैरर्थादुक्षैरितिर्बध्नं यत्र ॥

गिरिप्रामगमनाय नायकमुत्साहयती दूती वर्षागमनकृत तेषां रामणीयकातिशयमाह—

पप्फुल्लघनकलम्बा णिद्धोभसिलाभला मुद्गमोरा ।

पसरन्तोज्झरमुहला ओसैहन्ते गिरिगामा ॥ ३६ ॥

[प्रोत्फुल्लघनकदम्बा निर्घोतशिलातला मुदितमयूरा ।

प्रेसरन्निर्झरमुखरा उत्साहयन्ति गिरिगामा ॥]

अत्र प्रथमविशेषणेन सभोगोद्दीपनविभाव, द्वितीयेन शयनस्थलम्, तृतीयेन संभोगानन्तरं विनोदसभारं, चतुर्थेन स्तनितमणितादिध्वनिनिबन्ध प्रतिपाद्यते ॥

गीरसायामपि रसोत्पादकत्वमन्यापदेशेन कथयन्ती दूती नायकस्य सुरतोपचारचासुर्यं कामिनीजनानुरञ्जनायमाह—

तद् परिमलिता गोत्रेण तेण हृत्थ पि जा ण ओल्लेइ ।

स चिअ धेणू एहि पेच्छसु कुडदोहिणी जाआ ॥ ३७ ॥

[तथा परिमलिता गोत्रेण तेन हस्तमपि यार्द्रयति ।

सैव धेनुरिदानीं प्रेक्ष्य कुटदोहिनी जाता ॥]

तथा तेन प्रकारेण स्तनपृष्ठादिपरामर्शेन, पक्षे वरिद्धतादिविभ्यासेन । कुणो पट । पटपूर्णं दुग्धं ददातीत्यर्थः । पक्षे बहुतरं स्मरन्तु क्षरतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याचित्तौभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

धवलो जिअइ तुह कए धवलस्स कए जिअन्ति गिट्ठीओ ।

जिअ तन्वे अम्ह वि जीविण्ण गोठ तुमाअत्तम् ॥ ३८ ॥

[धरलो जीरति तत्र वृत्रे धरलस कृते जीरति गृष्टय ।

जीव हे गौ अस्माकमपि जीरितेन गोष्ठं त्वदायत्तम् ॥]

तम्बा गौ, धवलो वृषभेष्ट । 'धवला गवि । वृषभेष्टे पुमान्' इति मेदिनीकोषः । गृष्टिरैकवारप्रसूता गौ । 'अथ गृष्टिं सकृत्प्रसूतगवि' इति मेदिनीकोषः ॥

१. 'वने' ग घ. २. 'वातादोलनचन्द्रेषु' ग. ३. 'उभगाहन्त', ग ४. 'प्रसरन्तो सर' घ. ५. 'गृष्टय' ग.

यो यस्य प्रियस्तस्य तदवयवानुकारिणि प्रीतिर्भवतीति निदर्शयन्कोऽपि ।
माह—

अगघाइ छिवइ चुम्बइ ठेवइ हिअअम्मि जणिअरोमञ्चो ।

जाआकबोलसरिसं पेच्छइ पहिओ महुअउप्पम् ॥ ३९ ॥

[आजिप्रति स्पृशति चुम्बति स्थापयति हृदये जनितरोमाशः ।

जायाकपोलसदृशं पश्यत पथिको मधूकपुष्पम् ॥]

नातैस्त्वविवचनरक्षणो भवतीति दर्शयन्कोऽपि मध्याह्नवर्णनमाह—

उअ ओल्लिज्जइ मोहं भुअंगकित्तीअ कढअलग्गाइ ।

ओज्जरधारासद्मालुएण सीसं वणगएण ॥ ४० ॥

[पश्योर्द्राकियते मोघं भुजंगकृत्तौ कटकलमायाम् ।

निर्झरधारासद्मालुकेन शीर्षं वनगजेन ॥]

‘अप्पिज्जइ’ इति पाठे अप्र्यत इत्यर्थः । मोघं निरर्थकम् । कृत्तौ कवुके । क-
नार्थात्प्रचण्डातपततेन । आरस्थान्यमनस्कतासपादनार्थं मध्याह्नाभिगारिकाया उचि-
पूर्वनायिकां विहाय गुणान्तरलोभेन नायिकान्तररगामिनं नायक काव्यन्य-
शेनाह—

कमलं भुअन्त महुअर पिक्कइत्थ्याण गन्धलोहेण ।

आलेक्खलहुअं पामरो व्व छिविऊण जागिहिसि ॥ ४१ ॥

[कमलं मुच्यन्मधुकर पक्कपित्थानां गन्धलोभेन ।

आलेख्यलङ्घुकं पामर इव स्पृष्टा ज्ञासति ॥]

यथा ह्यनभिज्ञः पामरविश्रुत्यं मोदकादिकमालोक्यन्मोदमानः करस्यं अश्वम-
सन्निपृष्टया गतः स्पृष्ट्वा तत्स्वरूपमवधार्य खिद्यते, एवं त्वमपि नीरसवर्कशस्पर्श-
स्यस्य गन्धेनाकृष्टचेताः कमलं मुच्यन्स्पर्शनसमनन्तरमेतयोन्तरं ज्ञाससीति भावः
काव्यासप्तविवाहाया सखीजनं सपरिहासमाह—

गिज्जन्ते मङ्गलगाइआहिं वरगोत्तदिण्णअण्णाए ।

सोउं व णिग्गओ उअह होन्तवहुआइ रोमञ्चो ॥ ४२ ॥

[गीयमाने मङ्गलगौयिकाभिर्वरगोत्रदत्तकर्णयाः ।

भोतुमिव निर्गर्तः पश्यत सविष्यद्वधूकाया रोमाशः ॥]

गोत्रं नाम ॥

आमस्यविवाहा व्यभिचारशीला काचित्पुष्पितं संकेतवेतसनिकुञ्जमालोकयोत्तेश्वरे—

मण्णे आअण्णन्ता आसण्णविआहमङ्गलुग्गाइम् ।

तेहिं जुआणेहिं समं हसन्ति मं वेअसकुडङ्गा ॥ ४३ ॥

[मैन्ये आकर्णयन्त आसन्नविआहमङ्गलोद्गीतम् ।

तैर्युवभिः समं हसन्ति मां वेतसनिकुञ्जाः ॥]

यैः समं पूर्वं सुरतसौख्यमनुभूतं तैः सममित्यर्थः ॥

बन्धुजनप्रीतये काचिदचिरवृत्तविवाहयोर्दैन्योरन्योन्यानुरागमाह—

उअगअचउत्थिमङ्गलहोन्तविओअसविसेसलग्गेहिं ।

तीअ वरस्स अ सेअंसुएहिं रुण्णं व हएयेहिं ॥ ४४ ॥

[उपगतचतुर्थीमङ्गलमविष्यद्वियोगसविशेषलप्ताभ्याम् ।

तस्मा वरस्य च स्नेदाशुभी रुदितमिव हस्ताभ्याम् ॥]

उपगते चतुर्थीमङ्गले वियोगो भविष्यतीति भयेन सविशेष लप्ताभ्यामित्यर्थः । चतुर्थी

कृत्वा जामाता स्वगृह गच्छतीति लोकव्यवहारः ॥

नववधूसंगमस्थालौकिकचमरकारित्वं प्रतिपादयन्कोऽपि सहचरमाह—

ण अ दिट्ठिं णेइ मुणं ण अ छिविउं वेइ णालयइ किं पि ।

तह वि हु किं पि रहस्सं णववट्ठसण्णे पिओ होइ ॥ ४५ ॥

[न च दृष्टिं नयति मुणं न च स्पर्शं ददाति नालपति विमपि ।

तथापि खलु विमपि रहस्यं नववधूगृहं प्रियो भवति ॥]

अत्र प्रियत्वहेतुमन्तरेणापि प्रियत्वमिति विभावनालंकारः । 'मियावा. प्रतिरेपेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना' इति सङ्ग्रहणम् ॥

बालाया वाम्नेन कुपितं परं प्रगादयितुं कापि नववधूः स्वभावमाह—

अलिअपमुत्तयलन्तम्मि णवयरे णययइअ येवन्तो ।

संवेद्धिओरुसंजमिअवन्त्रगण्ठि गओ हएयो ॥ ४६ ॥

[अलीकप्रसुप्तवधूमानं नववधूः नववधूः योमानः ।

संवेष्टितोरुगंयवितवन्त्रप्रति गतो हसः ॥]

अलीकप्रसुप्तवधूः वधूमानस्य स्वभावे गतीत्यर्थः । संवेष्टिताभ्यामन्येनैव संवेष्टिते

१. 'चेअलि' म. ग. २. 'जामाति' ग. ३. 'जावे' ग. ४. 'केहि' ग. ५. 'न
चतुर्थी' घ. ६. 'गामे' ग. ७. 'प्रसुप्ते वरसि' ग. ८. 'हस्सि' ग.

भ्यामूहभ्या सयमितस्य वधस्य प्रन्थि नववध्वा हस्तो गत इति सुवन्थ । स्वभाव एवार्थं
शालानाम् । ननु कोपेनेति भावः ॥

नववधूविस्मभणानमिहेन कान्तेन कोपिताया वस्याधिदवस्थां कापि सखीमाह—
पुच्छिजन्ती ण भणइ गहिआ पप्फुरइ चुम्बिआ रुअइ ।
तुल्लिका णववहुआ वआवराहेण उवउढा ॥ ४७ ॥

[पृच्छयमाना न भणति गृहीता प्रस्फुरति चुम्बिता रोदिति ।
तूष्णीका नववधू वृतापरधेनोपगृह्णा ॥]

समलभावेऽपि नववधूर्बलादुपभोक्तव्येति नायक प्रति दूत्या लक्षिर्वा ॥
पुन पुन वस्यचित्कथा कुर्वती वामप्युपहसती कापि मातृभगिनीमाह—
तत्तो चिअ होन्ति कहा विअसन्ति तहिं तहिं सम्पन्ति ।
किं मण्णे माउच्छा एकजुआणो इमो गामो ॥ ४८ ॥

[तेत एव भवति कथा विकसन्ति तत्र तत्र समाप्यन्ते ।
किं मन्ये मातृपुत्रस एकयुवकोऽयं ग्रामः ॥]

किमन्यो युवा नास्ति येन तदुक्तैकमुखरो लोक इत्याक्षय ॥
विरहोत्पण्डिता वाचिद्वलभवनस्य वचनात्तराद्विशेषमनुभवसिद्ध प्रदर्शयति—
जाणि वआणाणि अम्हे वि जम्पिओ ताई जम्पइ जणो वि ।
ताइ चिअ तेण पजम्पिआइ हिअअ सुहावेन्ति ॥ ४९ ॥
[यानि वचनानि वैयमपि जल्पामस्तौनि जल्पति जनोऽपि ।
तान्येव तेन प्रजल्पितानि हृदयं मुँखयन्ति ॥]

जारसगनायोसाहयन्ती इती पत्न्या सह कृतकलङ्का नायिकामाह—
सब्बाअरेण मग्गह पिअ जण जइ सुहेण चो कजम् ।
ज जस्स हिअअदइअ सं ण सुह ज तहिं णत्थि ॥ ५० ॥
[सर्वोदरेण मूर्धन्यध्वं प्रिय जन यदि मुखेन व कार्यम् ।
यद्यस्य हृदयदयितं तन्न मुखं र्यत्तत्र नास्ति ॥]
तथा च यत्रानुरागं स एव नायकं मुखहेतुरिति भावः ॥

१ 'तत्रैव निगच्छति' ग. २ 'तत्रैव तत्रैव ग, 'तस्मिन्सिन्धुमर्ष्ये' घ.
३ 'वयं जल्पामहे' ग ४ 'तान्येव' ग ५ 'मुखारयति' घ ६ 'सर्वोदरेण ज
ल्पत' घ. ७ 'मार्गयत' ग ८ 'यत्र तत्र' ग, 'यत्तस्मिन्' घ

तथैवापरगायामाह—यद्वा प्रसाधन विनैव कान्तदर्शनायागता दुहितरं प्रति कुच्यन्ती
स्य कचिदाह—

दीसन्तो दिट्टिसुओ चिन्तिज्जन्तो मणवह्हो अत्ता ।

उल्लावन्तो मुइसुहो पिओ जणो णिच्चरमणिज्जो ॥ ५१ ॥

[दृश्यमानो दृष्टिसुखश्चिन्त्यमानो मनोबलम् श्वश्रु ।

उल्लप्यमान श्रुतिसुख प्रियो जनो नित्यरमणीय ॥]

उल्लप्यमान कीर्त्यमान । नित्यति । तथाचाल प्रसाधनावासेनति भाव ॥

क्षीणघनत्वात्पूर्वं निष्कासित पुनरुपार्जितवन्तो दुहितृस्त्रेहमुपदर्शय त्वा कुटुम्बानुनीय
मानो भुनक्तु सोपाक्रम्यप्रसूत्यानमात्मनिन्दाव्याचेनाह—

ठाणव्वट्ठा परिगलिअपीणआ उण्णईअ परिचत्ता ।

अम्हे उण ठेरपओहर व्व उअरे चिअ णिसण्णा ॥ ५२ ॥

[स्थानन्नष्टा परिगलितपीनत्वा उन्नत्या परित्यक्ता ।

वय पुन स्वविरापर्योधरा इवोदर एव निषण्णा ॥]

धनवन्त एव युष्माकमनुरूपा । वय तु हारितधनत्वादुदरभरणमात्रव्यापृता । तर्हि
मन्याभिर्युष्माक प्रयोजनमिति भाव ॥

खण्डिता अचिसूर्यनमस्कारच्छलेन वा तमुपालभवे—

पच्चूसागअ रजितदेह पिआलोअ लोअणाणन्द ।

अण्णत्तखविअसव्वरि णहभूण दिणवइ णमो दे ॥ ५३ ॥

[प्रत्यूषागत रैक्तदेह प्रियालोक लोचनानन्द ।

अन्यत्रक्षपितशरीरं नमोभूषण दिनपते नमस्ते ॥]

प्रत्यूषे प्रभाते आगतो द्वीपात्तरात्, पक्ष महिनात्तरगृह्यति । रक्त आरक्त, पक्षे
ऽनुरक्त । अन्यमहिलादामित्थर्यात् । देहो यस्य स । तथा प्रिय आलोको यस्य स ।
पक्षे प्रियालोकस्य महिलाजनस्य रोचनानन्दो यस्मात् स । अन्यत्र द्वीपात्तरे, पक्षे अ
न्यस्वार्थे क्षपिता शरीरी येन । नभसो भूषण, पक्ष परस्त्रीदत्तनखभूषण । दिनपते नमस्ते ।
भास्वानिव दूरादेवाभिव दनीयस्त्व न स्वभिगम्य इत्यर्थः । अत्र सूर्यनायकयोऽपमानोप
नेयभावो व्यङ्ग्यः ॥

किं गर्भवती भवती इति प्रियेण पृष्टा कचिदाह—

विवरीअसुरअलेह्ल पुच्छसि मह कीस गभसभूम् ।

ओअत्ते कुम्भमुदे जल्लवकणिआ वि किं ठाइ ॥ ५४ ॥

[विपरीतसुरतलम्पट पृच्छसि भम किमिति गर्भसमूतिम् ।

अपटुत्ते कुम्भमुखे जललवकणिवापि किं तिष्ठति ॥]

अपटुत्तेऽधोमुखीकृते ॥

चामातां स्वाजन्यमप्यपलपन्तीति निदर्शयन्कविदाह—

अद्यासण्णविवाहे समं जसोमाइ तरुणगोवीहिं ।

वड्ढन्ते महुमहणे संचन्धा णिहुविज्झन्ति ॥ ५५ ॥

[अत्यासक्तविवाहे समं यशोदया तरुणगोपीभि ।

वर्धमाने मधुमधने सवन्धा निहूयन्ते ॥]

यशोदया सम ये सवन्धास्ते निहूयन्त इत्यवयव ॥

अनुरूपनायकालाभेन निर्विण्णा कापि सोपालम्भ विधिमाह—

ज ज आलिहइ मणो आसावट्टीहिं हिअअफण्णअम्मि ।

त त चालो व्व विही णिहुअ हसिऊण पण्हुसइ ॥ ५६ ॥

[यद्यदालिखति मन आसावर्तिकाभिर्हृदयकलके ।

तत्तद्गोल इव विधिर्निभूत हसित्वा प्रोञ्छति ॥]

रागिण्यो काप्यन्यापदेशेन कान्त सचमत्कारमाह—

अणुहुत्तो करफसो सअलअलापुण्ण पुण्णदिअहम्मि ।

वीआसङ्गकिसङ्गअ एहिं तुह वन्दिमो चळणे ॥ ५७ ॥

[अनुभूत करस्पर्श सकलकलापूर्ण पूर्णदिवसे ।

द्वितीयासङ्गकृशाङ्ग इदानीं तव वन्दामहे चरणौ ॥]

करा विरणा, पक्षे करो हस्त । सकलकलाभि योऽशकलाभि पूर्ण, पक्षे चतुःपट्टिकलाभि पूर्ण । पूर्णदिवसे पूर्णमादिवसे, पक्षे पुष्पदिवसे । द्वितीया तिथि, पक्षे द्वितीया स्त्री । तस्या सङ्गेन कृशाङ्ग । 'द्वितीया सहधर्मिणी' इत्यमर । अत्र समासो-
पल्लवकारेण च द्वेकात्तयोर्व्यमानोपमेयभावो व्यङ्ग्य ॥

विरहोत्कण्ठिता द्वितीमाह—

दूरन्तरिए वि पिण कह वि गिजत्ताई मज्झ णअणाई ।

हिअअ उण तेण सम अज्ज वि अणिचारिअ भमइ ॥ ५८ ॥

१ 'दूरन्त' ग. २ 'अज्ज' ग. ३ 'अणिचारि' ग. ४ 'अण' ग.

४ 'चालक इव' ग. ५ 'प्रमुपति' घ.

[दूरान्तरितेऽपि प्रिये कथमपि निर्घर्तिते मम नयने ।

हृदयं पुनस्तेन सममद्याप्यनिवारितं भ्रमति ॥]

मानं कर्तुमसमर्थो नायिका प्रति दूती सप्रणयकोपमाह—

तस्स कदाकण्टइए सहाअण्णणसमोसरिअकोवे ।

समुहालोअणकैम्पिरि उवऊडा किं पेवज्जिहिसि ॥ ५९ ॥

[तस कथाकण्टकिते शब्दाकर्णनसमपसृतकोपे ।

समुखालोवनकम्पनशीले उपगूढा किं प्रपत्ससे ॥]

संभ्यासमयसूचनव्याजेन दूती काचिदभिसारेका एरयितुमाह—

भरणमिअणीलसाहग्गखलिअर्चलणद्वविहुअवक्खसडडा ।

तरुसिहरेसु विहंगा कह कद वि लहन्ति संठाणम् ॥ ६० ॥

[भरनमितनीलशाखाप्रखलितचरणार्धविधुतपक्षपुटा ।

तरुशिखरेषु विहगा कथं कथमपि लभन्ते सख्यानम् ॥]

नीलेलनेनार्द्रतया स्निग्धत्वम् । तत्र पदस्थलने हेतुरिति सूचितम् ॥

अद्यतीं प्रशसता केनापि सगता काचिदसती समाह—

अहरमहुपाणधारिअइ जं च रमिओ सि सविसेसम् ।

असइ अलज्जिरि बहुसिक्खिरि त्ति मा णाह मण्णुहिसि ॥ ६१ ॥

[अधरमधुपानलात्सया यच्च रमितोऽस्ति सविशेषम् ।

असती अलज्जाशीला बहुशिक्षितेति मा नाथ मस्या ॥]

असतीरक्षणस्य दुःशक्तामसती पतिं श्रावयन्ती काचिदाह—

खाणेण अ पाणेण अ तह गहिओ मण्डलो अडअणाए ।

जह जारं अहिणन्दइ भुक्कइ घरसामिए एन्ते ॥ ६२ ॥

[खंदिनेन च पानेन च तथा गृहीतो मण्डलोऽसौत्या ।

यथा जारमभिनन्दति भुङ्कति गृहस्वामिन्येति ॥]

गृहीतो बशीकृतः । मण्डलः कुकुरः । 'मण्डलपरिधौ कुष्ठे देशे द्वादशराजसु । स्त्री-

१ 'निवृत्तेऽस्याक' ग. 'निवृत्तानि मम नयनानि' घ. २. 'वदति' ग. ३. 'विवरि'
ग. ४. 'विलिज्जिहिसि' ग. ५. 'शब्दायनाने' ग. ६. 'वेपिते' ग. 'वेपनशीले' घ.
७. 'विलायिष्यति' ग. ८. 'चरणग' ग. ९. 'चरणप्र' ग. १०. 'भक्षणे' ग.
११. 'खीरिण्या' घ. १२. 'अभिनन्दयति शब्दायति स्वामिन्यागच्छमाने' ग.

वेऽय निवहे विम्ये त्रिषु पुति तु कुक्षुरे ॥' इति मेदिनीकोषः । भुक्ते शब्दायत्वे । एति आगच्छति । सतिसप्तमी ॥

नायिकान्तरानुरक्तजामातृदर्शनेन स्वदुहितरमनुसोचन्ती व्याधश्च दृष्ट्वा काचिदाह—

कण्डन्तेण अकण्डं पल्लीमञ्जम्मि विअडकोअण्डम् ।

पइमरणाहिं वि अहिअं वाहेण रआविआ अत्ता ॥ ६३ ॥

[कण्डूयता अकण्डे पल्लीमध्ये विकटकोदण्डम् ।

पतिमरणादप्यधिक व्याधेन रोदिता श्वैश्च ॥]

कण्डूयता तक्षणेन सूक्ष्म कुर्वता ॥

किमेति रोदिपीति सरया पृष्ट्वा काचिदाह—

अन्हे उज्जुअसीला पिओ वि पिअसहि विआरपरिओसो ।

ण हु अण्णा का वि गई वाहोहा कह पुसिज्जन्तु ॥ ६४ ॥

[वय ऋजुकशीला प्रियोऽपि प्रियसखि विकारपरितोष ।

न खल्वन्या कापि गतिर्बाष्पोघा कथ प्रोक्ष्यताम् ॥]

विकारेषु हावभावादियु परितोषो यस्य स । हावभावयमिश्रभिर्नायिकाभिरपहतहृदयोऽयम् । मया तु किमपि न ज्ञायत इत्यतो रुद्यत इति भावः ॥

अनुरक्तायामपि मयि नानुरक्तोऽसीति कापि नायक सोपालम्भमाह—

धवलो सि जइ वि सुन्दर वह वि तुए मञ्ज रञ्जिअं हिअअम् ।

राअभरिए वि हिअए सुहअ णिहितो ण रत्तो सि ॥ ६५ ॥

[धवलोऽसि यद्यपि सुन्दर तथापि त्वया मम रञ्जित हृदयम् ।

रागभृतेऽपि हृदये मुमग निहितो न रक्तोऽसि ॥]

धवल शुभ्र श्रेष्ठ । रागो लौहित्यमनुरागश्च ॥

उज्ज्वलकुङ्कुमादिपरिमलसमुज्ज्वलनेपथ्या गुणहीना कामध्वनुवर्तमान कामिजनमुपहसन्ती काचिदाह—

चञ्चुपुडाहअविअलिअसहआरसेण सित्तदेहस्स ।

कीरस्स मंगलग गन्धन्धं भमइ भमरउलम् ॥ ६६ ॥

१. 'कर्षता च कष्ट' ग. २. 'वाष्पेण रुदिता' घ. ३. 'माता' ग. ४. 'उज्ज्वल शीला' ग. ५. 'विकारदेशी' ग. 'विहारपरितोष' घ. ६. 'प्रसार्यते' घ. ७. 'भरिते' घ.

[चमुपुटाहृतविगेलितसहकाररसेन सिक्तदेहस्य ।

कीरस्य मार्गलग्नं गन्धान्धं भ्रमति भ्रमरकुलम् ॥]

आतानुरागा गृहिणी विदिताभिप्रायं प्रवासिजनमाह—

एत्थ णिमज्जइ अत्ता एत्थ अह एत्थ परिअणो सअल्लो ।

पैन्यिअ रत्तीअन्धअ मा मह सअणे णिमज्जिहिसि ॥ ६७ ॥

[अत्र निर्मज्जति श्वश्रूराहमनं परिजनं सकल ।

पथिकं रात्र्यन्ध[क]ं मा मम शयने निर्मज्जयामि ॥]

निमज्जति स्वपिति ॥

विरहानलस्य दुःसाहस्यं प्रतिपादयन्ती विरहिणी काचिदाह—

परिओससुन्दराइ मुरएसु लहन्ति जाई सोक्खराइ ।

ताइं छिअ उण विरहे खोउग्गिण्णाई कीरन्ति ॥ ६८ ॥

[परितोषसुन्दराणि सुरतेषु लभन्ते यानि सौरयानि ।

तान्येव पुनर्विरहे खोदितोद्गीर्णानि कुर्वन्ति ॥]

लभन्ते । यामिन्य इति शेषः । तान्येवेति । तथा च नेमानि विरहदुःखानि किंतु पूर्वं भुक्तानि सुखान्येवोद्गीर्णानि । एतद्रूपेण परिणतानीत्यपद्रुत्यलंकारो व्यङ्ग्यः ॥

कीडपि साभिलाषः कस्याऽपि नोन्नतपयोधरायाः द्वारं वर्णयति—

मग्गं चिअ अलहन्तो हारो पीणुण्णआणैं थणआणम् ।

उव्विअगो भमइ उरे जमुणाणइपेणपुत्तो रुव ॥ ६९ ॥

[मार्गमिश्रलभमानो हारः पीनोन्नतयोः स्नयः ।

उद्विग्नो भ्रमत्युरग्निं यमुनानदीकेनैर्धुष इव ॥]

अत्र यमुनाकेन तादृशेन स्ननमुखदयामना व्यङ्ग्यतः । तथा च सारवाधानम्, तेन चानुपभोग्यवेति स्वयमूढनीयम् ॥

रात्रसंनिधौ विद्यता तेन मम मित्रेण किं उपार्जितमिति केनापि पृष्टं कश्चिदन्याप-
देशेनाह—

एपेण वि वडवीअङ्कुरेण सअल्लवणराइमज्जन्मि ।

तह तेण कओ अप्पा जह सेसदुमा तले तरस ॥ ७० ॥

१. 'प्रकटित' ग. २. 'वक्षिण' घ. ३. 'हे परिअ रत्तिअ' घ. ४. 'निरीदति श्वश्रूराहं' ग. ५. 'निरीदयति' ग. 'निनलो भू' घ. ६. 'मरिग्गिण्णाति' ग. ७. 'मरितोद्गीर्णानि कीरन्ते' ग. 'उपार्जितमिति केनापि पृष्टं कश्चिदन्याप-
देशेनाह' घ. ८. 'एव' ग. घ. ९. 'पीनोन्नतानां स्ननायां' ग. घ. १०. 'पृथुत्र' घ.

[एकेनापि वटवीनाङ्कुरेण सकलवनराजिमध्ये ।

तथा तेन कृत आत्मा यथा शेषद्रुमास्तले तस्य ॥]

एकाकिनापि तेन सकलविषक्ष्ममध्ये तद्योत्कर्षं संपादितो यथा तत्प्रभावेण सवऽपि
विपक्षास्तिरस्त्वता इति भावः । मूढेनापि तरुणा उत्कर्षाय चेष्टितं त्वं पुनर्महावशप्रभव-
यथ न यतसे इति निरुपयोगं कवित्प्रशुपदेशो व्यङ्ग्य इति कथितम् ॥

गुणिनः प्रायो दरिद्रा भवन्तीति प्रतिपादयन्कविद्वारिह्यं सवोभ्याह—

जे जे गुणिणो जे जे अ चाइणो जे विड्डहुविण्णाणा ।

दारिद्र्य रे विअकरण ताण तुम साणुराओ सि ॥ ७१ ॥

[ये ये गुणिनो ये ये च त्यागिनो ये विदग्धविज्ञाना ।

दारिद्र्य रे विचक्षण तेषां त्वं सानुरागमसि ॥]

कोऽपि साभिलाषं कस्याजि-मुखचन्द्रं वर्णयति—

जइ कोत्तिओ सि सुन्दरं सहलतिहीचन्ददसनसुहाणम् ।

ता मसिण मोइज्जन्तकमुअ पेक्खसु मुहं से ॥ ७२ ॥

[यदि कौतुकिकोऽसि सुन्दरं सकलतिथिचन्द्रदर्शनमुखानाम् ।

तन्मैसुण मोच्यमानकमुक् प्रेक्षस्व मुखं तैसा ॥]

सखायं प्रति सरयुरुक्षि । दूला वा नायकं प्रत्युक्षि ॥

ग्रीष्मालयेऽपि नायकस्यानागमने समाश्वासयन्तीं सरयीं प्रति समुत्सुका नायिके
दमाह—

समविसमणिठ्विसेसा समन्तओ मन्दमन्दसचारा ।

अइरा होदिन्ति पद्दा मनोरहाण पि दुल्लहा ॥ ७३ ॥

[समविषमनिर्विशेषा समन्ततो मन्दमन्दसचारा ।

अचिराद्गविध्यन्ति पन्थानो मनोरथानामपि दुर्लभा ॥]

अथवा संकेतस्थलान्तराभावेन मार्गासनकुशादौ दत्तसंकेतां ययां विना जनसंस्कारेण
तत्स्थलं सप्रति न संकेतयोग्यमिति बोधयन्ती कविदिदमाह ॥

१ 'विड्ड' ख. २ 'अवाचका ये ये विस्तसज्जावा' घ. ३ 'कौतुकोऽसि' ग.
४ 'मसिणोमुअ' ग. ५ 'असा' ग. ६ 'अइरीहा होन्ति' ग. ७ 'अतिदीर्घा
भवन्तीव' ग.

पञ्चकुक्षे दत्तचक्रेताया पुत्रवन्धस्त्रय गत्वा प्रिय समुज्य परावृत्तौ तत्पञ्चादिसन्धेन
स्फुटेऽपराधे तामुपहसत्वा श्वश्रु प्रति वन्दिमुखेन (२) वधूरिदमाह—

अइदीहराँइ बहुए सीसे दीसन्ति वसवत्ताइ ।

भणिप भगामि अत्ता तुम्हाणँ वि पण्डुरा पुढी ॥ ७४ ॥

[अतिदीर्घाणि वध्ना शीर्षे दृश्यन्ते वशापत्राणि ।

मणिते मणामि श्वश्रु युष्माकमपि पाण्डुरं पृष्ठम् ॥]

अत्ता इति श्वश्रुसन्धने देशी । पृष्ठशब्दस्य स्त्रीलिङ्गत्वमनुशासनात् ॥

मानवत्वा नायिकाया विरक्ता सेति विरज्यन्त नायक बोधयती इतीदमाह—

अत्यक्कुरुसण रणपसिज्जण अलिअवअणणिअन्धो ।

उम्मच्छरसंतावो पुत्तअ पअवी सिणेहस्स ॥ ७५ ॥

[आवक्षिकरोपकरणं क्षणप्रसादनमलीकवचननिर्वन्ध ।

उन्मत्सरयताप पुनक पदवी जेहस्स ॥]

अत्यक्केति आवक्षिके अद्भुते वा देशी । उन्मत्सरेति बहुल्ले । ‘उन्मूर्छनं प्रतिकूल-
बाधा प्रकोपनम्’ इति प्राचीनटीका । तथा च जेहबहुल्लतया त्वयि सा नानाविधान्ना
नमार्णानाचरताति न तद्विरक्तिसम्भावनापीति यथापूर्वं त्वया तस्या व्यवहर्तव्यमिति
दृष्ट्वा उक्ति ॥

जनसमर्द्धे जातदशना कटाक्षादिमविक्षिपन्ती नायिकामनुरक्तेतिसदिहान नायक
प्रोत्साहयन्ती सखी इती चेदमाह—

पिज्जइ कण्णअलिहिँ जणरवमिलिअ वि तुज्झ सलावम् ।

दुद्ध जलसमिलिअं सा बाला राजहसि व्व ॥ ७६ ॥

[पिबति कर्णाञ्जलिभिर्जनरवमिलितमपि तव सलापम् ।

दुग्ध जलसमिलितं सा बाला राजहंसीन ॥]

अत्र पिबतीति कर्त्रर्थे पीयत इति कर्मप्रत्यय । प्रावृते िङ्गवचनमात्रमिलितानु-
शासनात् । अथ वा सा बाला राजहंसी वेति प्रथमा तथा राजहस्येवेति तृतीयार्थे ।
तथा च पीयत इति यथाश्रुतमेव व्याख्येयम् । तथा च कोलाहलप्रविट्स्यापि भवद्-
वसो वैताल्य प्रेमातिशयेन युभुत्सया गृहीत्वा त्वदुक्तशब्दार्थं मन्त्रिकटे वर्णयामासेति
स्वयं सात्प्रन्तमनुरक्तेति यथापूर्वं श्रेष्ठो विधेय इति सहयुक्ति ॥

प्रियगुणविशेषादूर्त्ता प्रति पृच्छन्ती नायिका प्रति काचित्सखी वदति—

अइ उज्जुए ण लज्जसि पुच्छिज्जन्ती पिअस्स चरिआइ ।

सखवङ्गसुरहिणो मरुवअस्स किं कुसुमरिद्धीहिं ॥ ७७ ॥

[अयि ऋजुके न लज्जसे पृच्छन्ती प्रियस्य चरितानि ।

सर्पाङ्गसुरभेर्मरुवकस्य किं कुसुमर्द्धिभिः ॥]

‘पिण्डीतको मरुवक प्रस्थपुष्प पणिज्जक’ इत्यमरः । तथा च सहजसौ गुणगणालङ्कृतस्य किं गुणान्तरं पृच्छतीति भावः ॥

स्वाभाविकलौहिलयन्तौ करो धातुरागेण रक्षाविति विभ्रमेण वारं वारं प्रश्नमुग्धा निवारयन्ती दूषाह—

मुद्धे अपत्तिअन्ती पवालअङ्कुरअवण्णलोहिअए ।

णिद्धोअघाउराए कीस महत्थे पुणो धुअसि ॥ ७८ ॥

[मुग्धेऽपत्ययती प्रवालङ्कुरवर्णलोहितौ ।

निर्घोतधातुरागौ किमिति स्वहस्तौ पुनर्घावयसि ॥]

अप्रत्ययन्ती प्रत्यय विश्वासमकुर्वाणा । धावयसि प्रक्षालयसि । नायिकामुग्धस्तयो साहजिकरागवत्त्व तटस्थ नायक प्रति ख्यापयत्वा दूष्या सत्या वा उर्ध्वपार्श्वगमनेन दुःखिता नायिका शरत्कालोपगमेन स शीघ्रमायास्यतीति समाश्वासयतीति दूषाह—

उअ सिन्धवपव्वअसच्छहाई धुअतूलपुज्जसरिसाइ ।

सोहंन्ति सुअणु मुफोअआई सरए सिअम्भाइ ॥ ७९ ॥

[पश्य सैन्धवपर्पतसदृशानि धुततूलपुञ्जसदृशानि ।

शोभन्ते सुतनु मुक्तोदकानि शरदि मिताभ्राणि ॥]

‘सुअण’ इति पाठे सुप्तेति पान्थसमुद्धिः । वर्षाकालोपगमेन यथा यात्रात्प्रेगातरगमनेन द्रव्यादिस्मर्जनीय गृहे न स्वेयमिलादि भङ्ग्या बन्धिताहेति १० ॥

सकेनस्थानकुञ्जाना महिषसानिधेन दुरासदत्वात्खिद्यत नायक शिष्यन्ती यिका प्रोत्साहयन्ती काचिदाह—

आउच्छन्ति सिरेहिं विवलिएहिं उअ रैडिएहिं णिज्जन्ता ।

णिप्पच्छिमवलिअपलोइएहिं महिसा कुडङ्गाइ ॥ ८० ॥

१. ‘अतिक्रुके’ ग. घ. २. ‘अप्रतियन्ती’ घ. ३. ‘किमलोहितौ’ घ. ४. ‘इति व’ ग. ५. ‘धौततूलादिगमानानि’ ग. ६. ‘पुण्यन्तीव मुफो’ ग. ७. ‘एहिं’ ग.

[आपृच्छन्ति शिरोभिर्विलितैः पश्य [खङ्गिकैः] नीयमानाः ।

निःपश्चिमविलितप्रलोकितैर्महिषाः कुञ्जान् ॥]

महिषापगमेन कुञ्जा इदानीं निराबाधसंकेतस्थानतामुपगताः । पशवोऽपि महिषा
भीमादौ यत्र स्थित्वा छायामुपलभ्य सुखमासादितवन्तस्तत्परित्यागे तेषामपि दुःखं
पवति परानृत्य पुनस्तत्पश्यन्तीति सदयमाना (सहृदयानां) सुखसन्निधानस्थलमवश्यं वि-
श्लोकनीयमत्याज्यं चेति भावः । निःपश्चिमानि चरमाणि यानि विलितानि परावर्तनानि
प्रलोकितानि च तैः ॥

निजदारिद्रेणाशु विमुञ्चन्ती नायिकां समाश्वासयन्ती दत्त्याह—

पुसउ मुहं ता पुत्ति अ वाहोअरणं विसेसरमणिज्जम् ।

मा एअं चिअ मुहमण्डणं ति सो काहिइ पुणो वि ॥ ८१ ॥

[प्रोच्छस्व मुखं तैत्पुनि च (पुनिके) बाष्पोपकरणं विशेषरमणीयम् ।

आ इदमेव मुखमण्डनमिति करिष्यसि पुनरपि ॥]

मण्डनाभावेन त्वमशु विमुञ्चसि किंतु सहजसौन्दर्यशालिन्यास्तव अश्रु एव मण्डनं
भवतीति किं मण्डनान्तरेण । अथवा दरिद्रेयं मण्डनमिच्छतीति धनिनो मण्डनादिदानेन
सुखसाध्येति तटस्थ प्रति दत्त्या उक्तिः ॥

पश्चिमविलितप्रलोकितैर्महिषा इत्येव कथमागन्तव्यमिति जिज्ञासु नायकं नायिका वा बोध-
यन्ती काचिदाह—

मज्झे पअणुअपङ्कं अवहोवासेसु साणचिक्खिरहम् ।

गामस्स सीससीमन्तअं व रच्छामुहं जाअम् ॥ ८२ ॥

[मध्ये प्रतनु[क]पङ्कमुभयोः पार्श्वयोः श्यानकर्दमम् ।

ग्रामस्य शीर्षसीमन्तमिव रथ्यामुखं जातम् ॥]

प्रतनु स्वरूपं कं जलं यस्मिन्नेतादशः पङ्क्तौ यत्र तादृशम् । तथा च रथ्योभयपार्श्वयोः
श्यानकर्दमत्वम् । दिवा निरीक्षितेन पथा रात्रावागन्तव्यमिति काचिद्वोधयति ॥

काचन नायिका पितृगृहे स्थिता कचिदासक्ता । तद्भर्तारि समागते व्याकुलचित्तं
नायकं समादधती दत्त्याह—

अवरहागअजामाउअस्स बिउणेइ मोहणुकण्ठम् ।

बहुआइ घरपलोहरमज्जणपिसुणो बलअसहो ॥ ८३ ॥

१. 'खङ्गिकैः' ग. २. 'निजपश्चिम' ग. ३. 'तावत्सुन्दरि बाष्पाचरणपरिशेष' ग,
'तावत्पुनरुक्त बाष्पावतरण' घ. ४. 'मातस्त्वैव' घ. ५. 'उभयपार्श्वयोः सरस' घ.
६. 'सीमन्तकमिव' घ.

[अपराङ्गागतजामातुर्द्विगुणयति मोहनोत्कण्ठाम् ।

वध्वा गृहपश्चाद्भागमज्जनपिशुनो वलयशब्दः ॥]

मोहनं गुरतम् । मज्जनं शयनमद्रुचंमार्जनं वा । तस्य पिशुनः सूचकः । अपराङ्गागते
स्वनेन दिनसत्त्वे जामाता श्वश्र्वारिसान्निध्येन यथागृहे न गमिष्यति । सा तु दिनशे
एव तत्र स्वपिति त्वया तत्र गन्तव्यं तत्र सा मुलभेति भावः ॥

कृतकर्मण आरभटीदर्शनेनैव परे पलायन्ते तत्र भीरवस्तु सुतरां पलायन्त इ
भीरता न कर्तव्येति कथितकविद्वोधयति—

जुञ्जचवेडामोडिअजज्जरक्कणस्स जुण्णमहस्स ।

कच्छावन्धो चिअ भीरुमहह्मिअं समुत्तरणइ ॥ ८४ ॥

[युद्धचपेटामोटितजर्जरकर्णस जीर्णमहम् ।

कक्षावन्ध एव भीरुमहद्दयं समुत्स्रनति ॥]

पूर्वं तत्पतिरतिशूरः समर्थश्च स्थितः । सप्रति वार्धकेन क्षीणशक्तिरिति यथापूर्वं तद्वे
धारणमात्रेण तस्मात् भेतव्यम् । क्षीणशक्तिरिव तस्या एव स न रोचते । सर्वत्र
कारणमर्थं त्वयि सा जेहमापरिप्यतीति भीरतामपहाय तस्या तया प्रवर्तितव्यमि
भावः ॥

काचन गृहजमुन्दरी ह्यातगुणवती च प्रियापमानितापि न लज्जिता दीर्माग्यस्य
चिरकालानवस्थायित्वेन हर्षितैव तां बोधयन्ती सग्याह—

आणत्तं सेण तुमं पइणो पइएण पइहसइएण ।

महि ण उज्जसि णवसि दोहग्गे पाअडिजन्ते ॥ ८५ ॥

[आज्ञप्तं तेन त्वां पत्या प्रहतेन पटहसब्देन ।

महि न उज्जसे नृत्यसि दीर्माग्ये प्रकटीक्रियमाने ॥]

पत्या भर्ता पटहसब्देन जिह्वोरवेण यदीर्माग्यमाज्ञप्तं तेन त्वं लज्जिता न भवति, गृह-
हयेवेति क्षमापति त्वमसि । अथवा प-युर्विरक्षापि नृलघील्लनेन परममुन्दरीयं नदीन्द-
येर्गदिता मुदसाध्येति तदस्यं वामुकं प्रति प्रलोनोकिर्द्वजाः ॥

सलम्ब वाद्याधुर्यमात्रेण विश्वासो न विधेय इति कथिराह—

मा ववह वीसम्भं इमाणं बहुचाडुक्कम्मणिउण्णाम् ।

णिब्बत्तिअक्कपरम्मुहाणं मुणआणं व सलाम् ॥ ८६ ॥

१. 'भीरुमहानां हृदयं समुत्पन्नयति' ग. 'पलायमानानामुद्दिश्यं समुत्पन्नयति' घ.
२. 'आनन्दयन्ती त्वं पशुः' ग-घ. ४. 'प्रकटावस्थाने' ग.

[मा व्रजत विसम्भमेधो बहुचाटुकर्मनिपुणानाम् ।
निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखाणां शुनकानामिव खलानाम् ॥]

सलखभावोक्तिरियम् ॥

ग्रामान्तरं गच्छन्तीमसतीमनु व्याजेन सह प्रस्थितान्वहून्कामुक्तान्दया कापि परि-
सपूर्वमिदमाह—

अण्णगामपत्तथा कडुन्ती मण्डलान् रिञ्जोलिम् ।

अकरण्डिअसोहग्गा वरिससअं जिअउ मे सुणिआ ॥ ८७ ॥

[अन्यग्रामप्रस्थिता कर्षयन्ती मण्डलानां पङ्क्तिम् ।

अखण्डितसौभाग्या वर्षशतं जीयतु मे शुनी ॥]

मण्डला कुचुरा । रिञ्जोलीति पङ्क्त्या देशी ॥

वाचनं देवरेऽनासक्त्या, तेन च प्रियवाक्यशरी प्रलोभ्य वशीकृता । ततश्च कु-
तश्चिन्मिताद्विरज्यति तस्मिन्नुपालब्धमिदमाह—

सखं साहसु देअर तह तह चडुआरण सुणएण ।

णिञ्जत्तिअकजपरम्मुहत्तणं सिक्खिअं कत्तो ॥ ८८ ॥

[सत्यं वक्ष्य देवर तथा तथा चाटुकारकेण शुनकेन ।

निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखतः शिक्षितं वैसात् ॥]

तथा च त्वत्त एवेदं तेन शिक्षितमिति मत्पराङ्मुखत्वं सर्वथा हेयमिति भावः ॥
तस्या गृहेऽग्रादिसमृद्ध्या रात्रौ च तत्पतिर्गौरवतुल्येन तत्पतिसान्निध्येन चन्द्रि-
शोभिचेन च रात्रेरप्य सा न मुखसाध्येति वाचित्वचिदोपपत्तिरिति—

णिप्पण्णसस्सरिद्धी सच्छन्दं गाइ पामरो सरए ।

दलिअणवसालितण्डुलधवलमिअङ्कामु राईसु ॥ ८९ ॥

[निष्पन्नमसकृदि सच्छन्दं गायति पामरः शरदि ।

दलितनयशान्तिण्डुलधवलमृगाङ्गुलिं शनिपु ॥]

शरत्काले शालीनां पार्श्वे दृष्टिः सगृहे दृष्टिः, तदपार्श्वे तदधार्थं सखं क्षेपादी
प्रेरयतीति दृष्टिर्नयः, शरत्कालानिरिषकाले गुलभेति वधिः चिदोपपत्तीति वा ॥

१. 'इमान्—खलान्' ग. २. 'इदन्ती' ग घ. ३. 'मवतु मण्डलिका' ग.

४. 'शुना' ग घ. ५. 'कुल' ग घ.

वर्षाकाले पूर्ववत्सरीयकलमगोपीपशङ्कितक्षेत्रकर्मणं दृष्ट्वा कथित्पान्य आह—

अलिहिज्जइ पङ्कअले हलालिचलणेण कलमगोवीए ।

केआरसोअरुम्भणतंसट्टिअ कोमलो चलणो ॥ ९० ॥

[अलिख्यते पङ्कतले हलालिचलनेन कलमगोप्याः ।

केदारस्रोतोर्वोरोधतिर्यक् (त्र्यंश) स्थित कोमलश्ररणः ॥]

द्वितीयपाठे 'अभिलष्यते पङ्कजलुब्धालिवलयेन' ॥

अथेन भागत्रयेण स्थितः । असंपूर्ण इति यावत् । यदा पूर्ववत्सरे क्षेत्रमध्यस्थितजलस्य शोष आरब्धस्तदा कलमगोप्याः शालिपात्रेण सचेतस्य लाभावबोधेन दुःखोपचये संपूर्णशरणो न पङ्कमध्ये प्रतिविम्बितः । स च वर्षान्तरे वर्षणावसरे दृष्ट । तेनाक्षेत्रे कलमोत्पत्तिमारभ्य तत्पारम्पर्यन्तं कलमगोपी पान्यादिमुलभा स्थास्यतीति तत्प्राप्त्याशा पान्यो निवेदयति स्मरति वा पूर्वानुभूतमर्थमिति भावः ॥

दिअहे दिअहे सूसइ सकेअअभङ्कवट्ठिआसङ्का ।

आवण्डुरोणअमुही कलमेण समं कलमगोवी ॥ ९१ ॥

[दिवसे दिवसे शुष्यति संकेतकभङ्गवर्धिताशङ्का ।

आपाण्डुरावनतमुखी कलमेन समं कलमगोपी ॥]

यथा यथा कलमक्षेत्रमापाण्डुर भवति, तथा तथा कलमगोपी सचेतस्यलापगमनिन्तयावनतमुखी भवतीति कलमक्षेत्रकाले मुखसाध्येति तटस्थ प्रति कस्याधिदुःखिः ॥

णवर्कम्पिण्ण हंअपामरेण दट्टूण पौउहारीओ ।

मोत्तव्वे जोत्तअपग्गहम्मि अवहासिणी मुक्का ॥ ९२ ॥

[नवर्कम्पितेन हतपामरेण दृष्ट्वा पौंदपङ्की ।

मोक्तुं वै एतावद्वसित्वा व्याक्रोशिनी मुक्ता ॥] (१)

विचार्यमेतत् ॥

१. 'अलिहिज्जइ' ग. २. 'वलण' ग. ३. 'रुन्धण' ग. ४. 'अभिलष्यते' ग. 'अभिलीयते' घ. ५. 'पङ्कजलुब्धालिवलयेन' ग घ. ६. 'स्रोतोन्तरोधनतिर्यक्' ग. 'स्रोतोरोधनतिर्यक्' घ. ७. 'स्थितकोमलौ चरणौ' ग. ८. 'कर्मिण' ख. ९. 'उअ' ग. १०. 'पाणिहारीओ' ग. ११. 'नेविअपग्ग' ग. १२. 'कर्मणा पश्य' ग. 'कर्मि' घ. १३. 'पानीयभक्तहारिकाम्' ग. 'अकायाहारी' घ. १४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. १५. 'पानीयभक्तहारिकाम्' ग. 'अकायाहारी' घ. १६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. १७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. १८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. १९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २०. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २१. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २२. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २३. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २५. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. २९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३०. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३१. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३२. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३३. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३५. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ३९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४०. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४१. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४२. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४३. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४५. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ४९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५०. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५१. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५२. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५३. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५५. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ५९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६०. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६१. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६२. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६३. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६५. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ६९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७०. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७१. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७२. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७३. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७५. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ७९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८०. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८१. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८२. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८३. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८५. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ८९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९०. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९१. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९२. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९३. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९४. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९५. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९६. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९७. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९८. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. ९९. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ. १००. 'मोक्तुं' ग. 'मोक्तुं' घ.

[धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।

न शृण्वन्ति पिशुनवचन खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥]

असह्यया कस्याचिदात्तकः बधिरुत्तम एव सह्यया वार्यमाणः सासूयं त
दति—

एहिं वारेइ जणो तइआ मूइलओ व्व गओ ।

जाहे विसं व जाअं सब्बङ्गपहोलिरं पेम्म ॥ ९६ ॥

[इदानीं वारयति अनस्तदा मूलकः कुनापि वा गतः (आसीत्) ।

यदा विपमित्र जातं सर्वाङ्गधूर्णित प्रेम ॥]

कस्याधितसखी सदया अनुरागातिशयं नायकविषये सूचयन्ती नायकाग्रे कथयति—

कह तंपि तुइ ण णाअं जह सा आसन्दिआणं बहुआणम् ।

काऊण उच्चवचिअं तुह दंसणडेहत्ता पडिआ. ॥ ९७ ॥

[कथ तदपि त्वया न ज्ञातं यथा सा आसन्दिकानां बहूनाम् ।

कुर्या उच्चावचिका तव दर्शनलाटसा पतिता ॥]

रात्रिसेवे कुट्टः शब्दं करोतीति कुकुटानां खान्नायिक रूपम् । तच्छ्रुत्वा तस्य
भजनमुत्प्रेष्य विवृणोति कथितम्—

चोराणं कामुआणं अ पामरपडिआणं कुकुडो वअइ ।

रे रमह वहइ वाइयह एत्थ तणुआअए रअणी ॥ ९८ ॥

[चौरान्कामुकांश्च पामरपथिकाश्च कुकुटो वदति ।

रे रमत वहत वाइयत अत्र तन्वी भवति रजनी ॥]

यथायोगमन्वयः, न तु यथासंक्षेपम् ॥

कयोधिप्रायिक्योरन्योन्यं कतहं कृतकतो कटाक्षान्तरेण निरीक्षणं कुर्वतोऽनन्तरं
नन्योन्यं कटाक्षयोः संनिपाते सम प्रहसितबोधेष्टितमेका परम्याः कथयति—

अण्णोण्णकडक्खन्तरपेसिअमेलीणविट्ठिपसराणम् ।

दो, चिअ मण्णे कअभण्णण्णइं समअं पडिआइं ॥ ९९ ॥

[अन्योन्यकटाक्षान्तरेपिनिमित्तितद्विष्टिपरी ।

द्रावणि मन्ये कृतकटहौ समक प्रहसितौ ॥]

मण्डनशब्दः कनकविशेषे वर्तते ॥

७ शतकम्]

गाथासप्तशती ।

२०७

अथ समाप्ता हरनमस्काररूप मङ्गलमाचरति—

संज्ञागहिजलज्जलिपडिमासंकन्तगोरिमुहकमलम् ।

अलिअं चिअ फुरिओठुं विअलिअमैन्वं हरं णमह ॥ २०० ॥

[सध्यागृहीतजलाज्जलिप्रतिमासङ्कान्तगौरीमुखकमलम् ।

अलीकमेव स्फुरितोष्ठं विगलितमेघं हरं नमत ॥]

हरस्यापि गौरीमुखकमलप्रतिबिम्बं दृष्ट्वा सध्यारूपनित्यकर्माहमन्त्रलोपो भवति, किं नरस्मदादेर्लोकस्य प्रियात्तानिध्ये व्याकुलचित्ततेति सर्वथा स्त्रीसङ्गः परिहरणीय इति ज्ञातव्यार्थः ॥

इअ सिरिहालविरइए पाउअकव्वम्मि सत्तसए ।

सत्तमसअं समत्तं गाहाणँ सहावरमणिज्जम् ॥

[इति श्रीहालविरचिते प्राकृतवाक्ये सप्तशते ।

सप्तमशतं समाप्त गाथानां स्वभावरमणीयम् ॥]^३

हाल इति राज्ञः शालिवाहनस्य सहान्तरम् । गाथेति च्छन्दः । इतिशब्दो प्रवचनसमाप्ता ॥

इति गङ्गाधरभट्टविरचिता प्राकृतगाथासप्तशतीटीका समाप्ता ।